UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186160

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83/S53Ind Accession No G.H.2185

Author ३१२०T, अजाबिहारी |

Title ३न्द्र; |, 2008 V.S.

This book should be returned on or before the date last marked below.

समर्पण

मेरी
सहधर्म्मिनी श्रीमती मनेसरी भवानी देवी
को
सप्रेम समर्पित

इन्दु

लेखक :—

नन्द-पतन, दलित कुसुम, पियदशी
अशोक आदि नाटकों के रचयिता

ब्रजबिहारी शरण

एम. ए. बी एल.

सर्व्वाधिकार सुरक्षित

(भगवती शिवनन्दनेश्वरी मन्दिर के लिये प्रकाशित)

प्रकाशक :-

अनिल बिहारी शरण

एम. बी ई. (मिलिटरी)

बक्सर।

G H. 2185
H 2
S 5 : I

मूल्य दो रुपये

Checked 1965

Checked 1969

मुद्रक :—

आर० बी० अग्रवाल,

राधा प्रिंटिंग वर्क्स, मुजफ्फरपुर।

प्रकाशकीय

प्रस्तुत उपन्यास के लेखक मेरे पूज्य पिता हैं। खड़ी बोली के विकास के प्रारम्भिक दिनों से ही वह साहित्य के विविध अङ्गों—कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध आदि—की सेवा करते आ रहे हैं। ई० सन् १९११ से अब तक उन्होंने उपर्युक्त विषय की दर्जनों पुस्तकें लिख डाली हैं; किन्तु शासन-सम्बन्धी राजकीय कार्य्यों में व्यस्त रहने के कारण आज से पहले उनमें से एक का भी प्रकाशन संभव न हुआ। सर्वप्रथम यह सौभाग्य मुझे ही प्राप्त हुआ है।

'इन्दु' की रचना जिन दिनों हुई थी, तब से आज तक न जाने कितने परिवर्त्तन हो चुके हैं। भाव, भाषा, वातावरण और प्रभाव की दृष्टि से प्रस्तुत कृति उसी समय का प्रतिनिधित्व करती है; किन्तु इतने पर भी यह प्रकाशन लेखक की प्रतिभा के प्रथम प्रकाश का परिचय ही नहीं देता,—औपन्यासिक विकास के इतिहास को भी एक कड़ी सिद्ध होता है।

मुझे विश्वास है, उपन्यास के प्रेमियों द्वारा 'इन्दु' को स्नेह और सम्मान प्राप्त होगा, इसके साथ ही, मुझे लेखक की मूक साधना के अन्यान्य बहुमूल्य प्रतीकों को पुनः पुनः प्रकाशित करने का भी सुअवसर प्राप्त होता रहेगा। तथास्तु।

निवेदक—

अनिल विहारी शरण

परिचय

श्री व्रजबिहारी शरण जी हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्यसेवी हैं। बिहार के पुराने लेखकों में एकमात्र आप ही ऐसे उत्साही दीख पड़ते हैं जो वृद्धावस्था में भी नवयुकोचित उल्लास के साथ साहित्य की सृष्टि करते जा रहे हैं। साहित्य रचना ही आपका व्यसन है। आपकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। आपने उपन्यास, कहानी, नाटक आदि तो लिखे ही हैं, मौलिक निबन्ध भी बड़े सुन्दर लिखे हैं। आपके कई निबन्ध मासिक बिहार में छपे हैं, जो ज्ञानवर्द्धक और मनोरञ्जन के अच्छे साधन प्रतीत होते हैं। आपके लिखे नाटक भी अपने ढङ्ग के अनूठे ही हैं।

मैं आपकी लिखी 'इन्दु' नामक पुस्तक जहाँ-तहाँ पढ़ कर बहुत प्रसन्न हुआ; क्योंकि हिन्दी में आत्मकथात्मक उपन्यास बहुत ही कम हैं और इस तरह के उपन्यास को मैं बहुत पसन्द करता हूँ। इसकी स्वाभाविकता प्रभावशालिनी है। कृत्रिमता का अभाव ही रचना की सुन्दरता और लेखक की सफलता है। इस दृष्टि से लेखक बहुत दूर तक सफल हुए हैं।

हमारे देश का दुर्भाग्य है कि साहित्यसृष्टि करने में पूर्ण समर्थ लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित करने वाले उत्तम पत्र या प्रकाशक बहुत ही कम हैं। इस पुस्तक के लेखक ने लगभग एक दर्जन पुस्तकें लिख डाली हैं; पर उनके न छपने से आपकी उमंग नहीं बढ़ती और आगे लिखते जाने की प्रेरणा नहीं मिलती। अच्छी से अच्छी प्रतिभा बिना प्रोत्साहन के ही कुण्ठित हो रहती है। यदि आपमें

साहित्य सेवा करते रहने का उत्कट अनुराग न रहता तो घोर निराशा की दशा में भी आप निरन्तर साहित्य रचना में तल्लीन न रहते।

इस 'इन्दु' उपन्यास में लेखक ने अपने अनुभवों को कथात्मक शैली में लिपिबद्ध किया है। शैली में रोचकता की मात्रा काफी है। पढ़ने लगने पर क्षण-क्षण उत्सुकता बढ़ती जाती है। यह प्रवाह भी बड़ा मनोहर है। वर्णन शैली में आकर्षण और कथोपकथन में चमत्कार उत्पन्न करके लेखक ने सराहनीय सफलता पाई है। मुझे आशा है कि भाषा-भाव के पारखी पाठक और शिक्षाप्रद कथानक के स्रष्टा लेखक तथा चरित्रोत्कर्षकारी साहित्य के चाहक समीक्षक तीनों ही इसे पढ़ कर सन्तुष्ट होंगे।

पटना,
वैशाखी पूर्णिमा २००८

शिवपूजन सहाय
मन्त्री, बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद्।

प्रस्तावना

सरस वसन्त का प्रभात था। भ्रमरों के गुञ्जार, और पक्षियों के मधुर गान से दिशायें बह चली थीं। मेरी आफिस की कोठरी के खुले जंगले के सामने का बड़ा लॉन अपनी हरियाली से नयनों को शीतल कर रहा था। उसके किनारों पर लगे विकसित फूलों का धीमा सुगन्ध मेरे कमरे को भर रहा था, और वे दूर पर खड़ी पुष्पित वनस्पतियों की दीवारें, इस मेरे अन्तःपुर के एक प्राङ्गण पर स्वप्नलोकों की चमक-दमक बरसा रही थीं।

आज मैं पाँच वर्षों के बाद इस मेरे काम करने वाले कमरे में बैठा था। वे पाँच वर्ष, जो एक सुख स्वप्न की तरह व्यतीत होते थे, आज इन्दु के महीनो के आग्रह से समाप्त हो गये, और मैं जमीन्दारी और व्यापार के कागजों से भरे इस कमरे में फिर से पदार्पण किया, किन्तु इन्दु और मेरे बच्चे विजय और सुधा में लगा हुआ मेरा चित्त सहसा इन सूखे हिसाब-किताब के परचों पर लगने में असमर्थ था। हिसाब की बही खुली की खुली रह गई और मेरी आँखें बाहर के सौन्दर्य्य को पीने और मन अपने अभ्यस्त सुख-स्वप्नों को दुहराने में लग गये। इसी समय मेरा बेटा विजय मेरे ध्यान को भग्न करता हुआ द्वार पर से बोला—

"पापा जी! क्या मैं आऊँ?"

मैंने कागजों को बन्द करते हुये कहा, "आओ बेटा! क्या है?

विजय आया और मैंने उसे उठा कर गोद में बिठलाया और सर पर हाथ फेरते हुये कहा, "क्या है विजय?"

विजय बोला, "अम्मा ने कहा है न, की पापा जी से जाकर

कहना की गोपाल चाचा आये हैं, आप आइये।"

मैंने, उसे गोद में उठाते हुए कहा, "अच्छा! भला गोपाल चाचा तुम्हें पसन्द हैं?"

• विजय ने सर हिलाते कहा, "हाँ, हाँ! उन्होंने इतनी मिठाई और इतने खिलौने लाये हैं"

मैंने चलते-चलते पूछा, "सब तुम्हीं खा जाओगे?"

उसने कहा, "नहीं, नहीं! इत्ता अम्मा को दूँगा, इत्ता आपको दूँगा और सुधा को भी एक-दो दूँगा।"

मैंने हँस कर कहा, "सुधा को दो ही?"

उसने कहा, "छोटी जो है"

मैं परदा हटा कर ड्राइङ्ग-रूम में घुसा तो देखा की इन्दु दो वर्ष की सुधा को गोद में लिए सोफा पर बैठी है और गोपाल पास ही एक कुरसी पर बैठे कुछ कागज उलट-पुलट रहे हैं।

मैंने कहा, "हल्लो गोपाल! बहुत दिनों पर कृपा की!" और हाथ मिलाया।

इन्दु ने कहा, "पूषण! एक खुश खबरी है! इतने दिनों पर इन्होंने विवाह करना स्वीकार किया है और हमें निमन्त्रण करने आये हैं।"

मैंने कहा, "भाइ, बधाई! भगवान युगल-जोड़ो को सुखी बनावें" इन्दु से पूछा, "भला वह सौभाग्यवती हमारी जानी हुई है?"

इन्दु ने कहा, "हाँ, हाँ—वही उषारानी"

मैंने कहा, "वाह, सोना में सुगन्ध।"

गोपाल कुछ लज्जित-सा बोला, "भइया और भाभी! तुम मेरे हृदय को जानते हो—तुम्हें thanks कैसे दूँ। यद्यपि सभी को

इन्दुरानी तो मिलती नहीं, परन्तु मैं संतुष्ट हूं ।"

इन्दु ने कहा, "भइया; मेरी उषा किसी से कम नहीं है।

गोपाल ने बात बदलते हुय कहा, 'भइया, भाभी कीएक आज्ञा है।"

मैंने इन्दु की ओर देख कर कहा, "वह क्या ? और यह कैसे कागज हैं जो उलट-पुलट रहे हो ?

"ये तुम्हारी आत्म-कथा और रोजनामचा है। इन्हीं की तो बात है।"

मैं—"इनकी अब कौन बात है ? लाओ; जला दें"

इन्दु ने जल्दी से कागजों को समेटते हुए कहा, "पूषण ! कैसी बाते करते हो ! ये तो मेरे अतीव प्रिय हैं—इन्हें मैं जलाने दूँगी ?"

मैं—भला, मेरी मूर्खताओं को देख कर तुम्हें क्या सुख होता है, इन्दु ! "

इन्दु—"मूर्खता ? वह तो वही भोलापन है जिसने मुझे मोह लिया था। हाय ! मेरी कमजोरी से, मेरी भूलों से तुम्हें कितना दुःख झेलना पड़ा।"

गोपाल—"भाभी की इच्छा है कि इसे उपन्यास का रूप देकर, और नामों को बदल कर छपवा दिया जाय !"

मैं—"अरे भाई ! मेरा लिखा कौन पढ़ेगा ? और संसार को किसी के हृदय की पीर में कौनसी रोचकता मिलेगी ? और अपने को संसार के सामने नंगा करके खड़ा कर देना क्या भला है"

गोपाल "तुम अपनी व्यर्थ निन्दा कर रहे हो। मैंने इसके कुछ अंश अपने लेखक मित्रों को दिखाया है ! वे कहते हैं कि यह

छापने योग्य तो अवश्य है ।"

इन्दु ने कहा, "पूषण, यहां मेरी बगल में बैठो । मैं इसे छपवाने पर तुली हूँ । अब अड़चने न लगाओ । चाहे और कोई पढ़े वा ना पढ़े, मैं तो पढ़ूँगी । अब यह निश्चय किया जाय कि यह किस रूप में छापी जाय ।"

मैं जाकर इन्दु के पास बैठा । उसके आग्रह को देखकर मुझे तो राजी होनाही पड़ा क्योंकि इन्दु का पुजारी उसकी रुचि को कैसे उल्लङ्घन कर सकता ?

पाठको इस रीति से और इन्हीं कारणों मैं आपके सामने एक लेखक के रूप में उपस्थित होने की धृष्टता की है । यद्यपि लेख-वेख तो कुछ है नहीं, मुझे इसीसे सन्तोष होता है कि मैंने उस अद्वितीय रत्न, अर्द्धाङ्गिनी इन्दु को यथार्थ चित्रण करने के प्रयत्न में कोर कसर नहीं रखा है यद्यपि इसे पढ़ने पर मुझे यथार्थता में और इस लेखनी-बद्ध इन्दु में वही अन्तर मालूम होता है जो सौन्दर्य्य के सर्व्वोत्तम नमूने की यथार्थता में और उसके निर्जीव चित्रण में । अनेक दिनों के बादबिवाद के बाद इस उपन्यास के लिये एक शैली ठीक की गई । वह अच्छी हो वा बुरी, पाठकों के सामने रखी जाती है ।

प्रथम अध्याय

मेरी आत्मकथा

मैं अपने पिता का एक ही पुत्र था— तथापि दो एक बातों को छोड़ कर, मुझे उनका कुछ भी स्मरण नहीं है । एक विशाल, तथापि, मधुर मूर्त्ति की गोद में इधर-उधर घूमना मुझे याद आती है । इसका भी मुझे भ्रम होता है कि वे मुझे कभी-कभी क्रोध में, कभी-कभी प्रेम में, "बिजली" कहा करते थे । मैं उनकी उङ्गलियों के सहारे उद्यानों की सैर को जाया करता था, और चित्र-विचित्र पुष्पों और फूलों को प्राप्त कर अपने बाल्य हृदय को महदानन्द से भर कर खेला करता था । मुझे याद आती है कि उन दिनों मेरा हृदय उड़ती हुई चिड़ियों के समान शोक रहित नाचा करता था। मेरे हृदय-आकाश पर दुःख रूपी मेघों का लव लेश भी नहीं था। तथापि मुझे अपने पिता के स्वरूप आदि विषयों का कुछ भी स्मरण नहीं है।

कारण यह है कि मेरे पाँचवें वर्ष में पिता का स्वर्गलाभ हो गया। यदि जो कुछ मैंने सुना है वह सच हो, तो निश्चय मेरे पिता स्वर्ग को गये होंगे—हाँ, स्वर्ग यदि कोई जगह है।

मेरी माता कहती थीं कि उस दुःख की घड़ी में मैंने अपने अल्प-वयस की दृष्टि से अत्यधिक शोक प्रकाशित किया था! मैं भी इसे ठीक ही समझता हूँ क्योंकि उस दिन के वृत्तान्त मेरे स्मृति पर मानों लाल लोहे से अंकित किये गये हैं।

उस दिन प्रातःकाल मेरे पिता घोड़े पर बाहर गये। यह बात मुझे भली भाँती याद है, क्यों कि उनको बाहर जाते देख कर, मैंने

भी बहुत आग्रह किया था कि मैं घोड़े पर चढ़ूंगा। पिता जी मुझे अपने आगे घोड़े पर बैठा कर कुछ दूर ले गये और फिर कुछ सुन्दर पुष्पों को थमा और अनेक खेलौनों का वादा कर, मुझे वापस किया था! किन्तु यह आशा आशा ही रह गई, ये वादे वादे ही रह गये। कौन जानता था कि पिता से मेरी अन्तिम भेट यही थी? कौन जानता था कि उनके प्रेमोपहारों का यही वादा अन्त था?—सूर्य्य प्रतिदिन के समान उस दिन भी आकाश में विहस रहे थे; ओस से नहाये, सुन्दर पुष्पों की छवि उस दिन भी नवीन और मधुर थी; वृक्षों के और लताओं के पत्तों से लटकते जल-बिन्दु उस दिन भी मोतियों को मात कर रहे थे। आकाश के स्वतन्त्र गवैयों का गीत मूक नहीं था; पवनदेव का स्पर्श कर्कश नहीं था; चतुर्दिक में शोक का नाम नहीं था। कौन जानता था कि यह दिन जो ऐसी मधुर आशाओं को लिये आरम्भ हुआ वह अन्त होते-होते दो मानव हृदयों को घोर निराशा ही उपहार दे जायगा? कौन जानता है कि पर्वत के भीतर अग्नि धधक रही है? कौन जानता है कि सुन्दर नारुन में विष भरा हुआ है?

तथापि ये बातें सच्ची हैं; और उस सुन्दर दिन का भी परिणाम उलटा ही हुआ।

आकाश में सूर्य्यदेव अपने शयनागार की ओर लटक चले थे। मध्याह्न का सुनसान फिर भी छिन्नभिन्न होने लगा था। मेरी माता व्यग्र हो रहीं थीं क्योंकि मेरे पिता इतनी देर तक कभी बाहर नहीं रहा करते थे। मध्याह्न भोजन के समय वे निश्चय लौट आया करते थे। आज दिन का तीसरा पहर हो चला तथापि उनके लौटने का कोई भी चिह्न नहीं दृष्ट होता। माता मुझे बुला कर बार २ पूछतीं थीं "तुम्हारे पिता आये"? और मुझे भी बार २ यही उत्तर देना पड़ता था "नहीं"।

हठात् मेरे घर की ओर बड़े वेग से आते हुए घोड़े का टाप सुन पड़ा। मेरा हृदय फड़क उठा—निश्चय पिता आगये! इसी आनन्द विचार में मैं कुछ आगे बढ़ा कि जल्दी समागम हो जाय। घोड़ा भी भीषण वेग से मेरे सामने हो कर निकल गया। मेरा हृदय अनिर्वचनीय सन्देह से कांप उठा। क्योंकि इसी घोड़े पर मेरे पिता बाहर गये थे। और अब घोड़ा आया पर वे कहाँ थे?

इस संक्षिप्त संदेश को सुनाने मैं माता के पास दौड़ गया। यद्यपि मेरा वयस अत्यन्त अल्प था और हृदय की अन्तर्दशाओं को मैं भलीभांति नहीं समझ सकता था, तथापि इस संदेश का प्रभाव जोकुछ मेरे माता पर पड़ा, वह मैं आजीवन नहीं भूल सकता। उनका मुख पीला पड़ गया; उनकी आखें अव्यक्त भय से तन गईं। यह देख मैं भी कांपने लगा। मेरी आंखों में आंसू भी भर आया।

तब मेरी माता ने कहा "बेटा आदमी भेजो"।

मैं दौड़ कर बाहर गया। किन्तु विपत्ति ढूँढ़नी नहीं पड़ती और दुःख आने में विलम्ब नहीं करता। ज्योंहीं मैंने बाहर पैर रक्खा त्योंही देखा कि ४/५ आदमी पिता के शरीर को लेते आ रहे हैं। सर फूट गया था और अभी तक रुधिर बह रहा था।

मैं बहुत रोया। किन्तु दुःख और बाल्यावस्था चिर सहचर नहीं बनते। उस समय तक यह जीव संसार के हाथ बिल्कुल बिक नहीं जाता। इसकी विकसित होती बुद्धि पर दुःखों का चिह्न जल्दी अङ्कित नहीं होता।

मैं अपनी माता की दशा कैसे वर्णन करूँ? मैं नहीं कह सकता कि इस संसार कर्ता का यह कौन न्याय है कि जीवन के

मेरी भी इच्छा हुई कि इस अद्वितीय रात्रि की शोभा को मन्दिरों में घूम २ कर देखूँ और पश्चात् दो चार साथियों को लेकर किश्ती पर गङ्गा का सैर करूँ । विद्यार्थियों की रुचि प्रायः इन विषयों में एक ही होती है । मेरे मित्रों ने इस विषय पर बड़ेचाव से अनुमति दी और "सुपरडन्ट" साहब से आज्ञा लेकर हमलोग चार जन "होस्टल" से बाहर हुए ।

"होस्टल" के फाटक पर एक व्यक्ति खड़ा था । लांबा शरीर गठीला था । वृहत् ललाट के नीचे विशद आंखे असीम तेज से ज्योतिर्मय थीं । श्वेत लांबी दाढ़ी नाभि तक लटक रही थी । वस्त्र सन्न्यासियों का सा, चेष्टा सज्जनों की सी, और आकृति उदार थी ।

हमलोगों के वहां आते ही वह व्यक्ति हंस पड़ा और मेरी ओर देख कर कहा—"चन्द्रिका सिंह यदि तुम अपना भलाई चाहते हो तो आज बाहर न जाओ । तुम मेरी बात नहो मानोगे, मैं जानता हूँ, तथापि मैं तुम्हें चेता देता हूँ, चन्द्रिका सिंह ।"

इससे पहले कि हमलोग कुछ पूछें, वह सन्न्यासी बड़े वेग से चला गया। इसके अनन्तर हमलोग क्षण भर चुपचाप एक दूसरे का मुख देखते रहे और तब, अफसोस, मैंने अपने चढ़ते हुए यौवन के घमण्ड में उस सन्न्यासी को पागल कह कर हँस दिया । हाय ! कैसे क्षुद्र वृत्तान्तों से और क्षुद्र विचारों से हम-लोगों के जीवन का पहा इधर से उधर घूम जाता है ।

अनन्तर हमलोग बाहर चले और एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर में जाने में इस विषय को भुला दिया । कहीं नृत्य का सामान हो रहा था, कहीं बाजे बज रहे थे, और प्रति मन्दिर में उस प्रेम

मूर्ति की बन्दना हो रही थी जिसने वृन्दावन के चेतनहीन पत्थरों में भी एक बार प्रेम का प्रमोद लहरा दिया था !

यो ही घूमते-घूमते हमलोग एक मन्दिर में पहुँचे जहाँ और मन्दिरों से बहुत ही अधिक भीड़ थी । उस भीढ़ में घुसने के साथ ही हमारे मित्रों का साथ छूट गया । बहुत कठिनाइयों से जब मैं दर्शन करके बाहर आया तो, उन भले आदमियों का पता न पाया । भीड़ घटने के बदले बढ़ती ही जा रही थी और मैं इसी आग-पीछ में खड़ा रह गया कि उन्हें कहाँ ढूढूँ । इतने में उस चलायमान मानव समुद्र में एक अपूर्व छटा का विकाश हुआ, उस तरङ्गमाला के तार पर एक अद्वितीय मुक्ता आ निकला। उस मानव मेघ के किनारों पर विद्युत् प्रभा नाच उठी।

सुन्दरी का वयस अल्प ही था किन्तु मदन यही निवास करना निश्चय स्थिर कर चुका था ।

बालिका क्षण भर इधर-उधर देख कर सीधे मेरी ओर चली आई। उसके मुख से आनन्दों की वर्षा बरस चली।

"आपने मेरी आया को देखा है? मेरी आया जिसका पेट फुट बौल (foot ball) के एसा फूला रहता है और जो अपने शिर पर लाल ओढ़नी बाँधे रहती है।"

मैं इस सहज वर्णन पर हँस पड़ा। किन्तु इस बालिका के वेश और वयस को देख कर इसकी हिन्दी भाषा में निपुणता पर मैं चकित हुआ । यह सुन्दरी निश्चय हिन्दुस्तानी नहीं थी तथापि उसकी हिन्दी केवल शुद्ध ही नहीं थी किन्तु स्वर भी शुद्ध थे।

मैंने कहा "तुम्हारा वर्णन अत्यन्त सजीव है। मैंने तुम्हारे प्रतिष्ठित आया को देखा तो नही है किन्तु अब पहिचान जाऊँगा।

आवो खोजें ! किन्तु इस भीड़ में तुम्हें तकलीफ होगी, इससे तुम्हें बाहर कर के तब खोजूँगा।"

मैंने उसके हाथों को थामा और भीड़ से बचा-बचा कर, बाहर किया। बालिका मेरी ओर घूम कर बोली "तुम्हारा क्या नाम है ? जानते हो मैं सोच रही थी कि इसका क्या कारण है कि तुम परिचित से मालूम होते हो ?"

मुझे इस बात पर और भी आश्चर्य हुआ क्योंकि इस अनार्य्य ललना से पूर्व्व परिचय का मुझे कुछ भी स्मरण नहीं था। एक यूरोपियन बालिका और मेरे सामान देहाती युवक का समागम असम्भव था। मैंने कहा "यह तुम्हारा भ्रम है। भला इस देहाती का कहाँ सौभाग्य है कि तुम्हारे समान अप्सराओं से मिले"

"मैं तो देहाती ही आदमियों को पसन्द करती हूँ। किन्तु तुमने तो अभी अपना नाम न बताया ? मेरे नाम तो बहुत हैं—पिता मुझे होप (Hope) कहते हैं। मेरी माता—थियोसोफिस्ट (Theosophist) हैं इससे वे मुझे इन्दु कहा करतीं हैं। मेरी हिन्दी पर तुम्हें आश्चर्य हुआ होगा किन्तु मेरी माँ बहुत ही अच्छी हिन्दी जानती हैं और इसी से मुझे भी हिन्दी पढ़ने में अधिक प्रवृत्त रखती हैं। मैं अपनी आया के साथ घण्टों हिन्दी बोला करती हूँ। जानते हो मेरी आया भी पढ़ी-लिखी है—कम से कम, दिखाना चाहती है कि मैं पढ़ी हूँ। किन्तु भगवान् ! तुम उच्चारण को सुनना।" यहाँ उसने अपने हास्यपूर्ण आँखों को मेरी ओर फेरा और मैं हँस पड़ा। उसका चित्त दूसरी ओर फिर गया "तुम निश्चय मेरे साथ मेरे घर पर आवोगे ?"

मैं इस प्रश्न के उत्तर देने में कुछ हिचका। मैंने सोचा इस विदेशी बालिका से मुझ [illegible] हिन्दू को क्या सम्बन्ध हो सकता है ?

यह शिशु है—इसके हृदय में अभी जातीय घमण्ड ने घर नहीं किया है—किन्तु इसकी माता है और इसका पिता हैं—वे कब मुझे बराबरी की दृष्टि से देखेंगे ?

इन्दु का होप कुछ उत्तर न पाकर बोल उठी "बोलते नहीं ? क्या समझते हो मैं तुम्हें छोड़ूँगी ? नहीं अब तुम्हें निश्चय मेरे साथ चलना पड़ेगा।"

मैं इस शैशव योग्य वाक्य पर हँस पड़ा और बात बदल कर बोल उठा "इन बातों में तुम अपनी सुयोग्य आया को भूल रही हो। ठहरो मैं उसे ढूँढ़ लाऊँ।"

यह कह कर मैं उस आया की खोज में पुनः भीड़ में घुसा। मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। आज की घटना प्रणाली को मैं बार २ निरूपण कर रहा था और यद्यपि मुझे मानना पड़ता था कि इस समय तक कोई ऐसी घटना नहीं हुई थी जिससे कोई आपत्ति का भय हो, तथापि मेरा हृदय हृष्ट के उलटा ही हो रहा था। निश्चय मैं इस बालिका की अपूर्व रमणीयता से मोहित होकर, उसकी ओर आकर्षित हो रहा था। किन्तु उस अज्ञात सन्न्यासी का अकस्मात आकर उन वाक्यों का कहना, पुनः मित्रों से मेरा साथ छूटना और पुनः इस अनार्य्य ललना का अलौकिक व्यवहार देख कर मेरे हृदय में सन्देह सा उत्पन्न होने लगा। मेरा हृदय चाहने लगा कि मैं इसके साथ न जाऊँ और इसके निमित्त मैं अत्यन्त परिश्रम से उसकी आया को खोजने लगा। किन्तु हाय विधि वाम था। मुझे निराश होकर कुछ देर के बाद वैरङ्ग वापस आना पड़ा।

मुझे देख कर उस बालिका का मुख सच्चे हर्ष से खिल उठा। और उसे देख कर मेरे सन्देह भी हवा में मिल गये। मैंने हँस कर कहा।

"मेरा प्रयत्न निष्फल हुआ—तुम्हारी आया न मिली"

इन्दु भी हँसते २ बोली

"मैंने क्या कहा था? तुम्हें मेरे साथ चलना ही पड़ेगा। मैं अपने घरकी राह भली भांति जानती हूँ—चलो"

मैं उस बालिका को उस रात्रि में अकेला छोड़ नहीं सकता था—अतः अपने ललाट को ठोक कर उसका अनुसरण किया।

इस रीति से, हाय; मेरा जीवन मेरे हाथों से बाहर चला गया। उस दिन मैंने उस पथ पर पैर रक्खा जो केवल शून्य में लेजाने वाला था, जिससे फिरना प्रति दिन असम्भव ही होता गया।

यह लोक सोने का मृग है—मकरे का जाल है। मनुष्य इससे आकर्षित भी होता है—भीत भी होता है। किन्तु जिस जीव ने इसे एक बार देखा, वह कदापि इससे उन्मुक्त नहीं हो सकता। वह भले ही कूदा करे, भले ही पर फड़फड़ाया करे किन्तु वह निश्चय धीरे धीरे इस मोह फांस में फस जाता है—अपने विवेक के विरुद्ध भी इसी मृग के पीछे दौड़ पड़ता है और घटना प्रणाली में बद्ध होकर प्राण और धन दोनों ही खो बैठता है।

भीड़ से बाहर होने पर उस बालिका ने मेरे हाथ में हाथ लगा कर और अपने मधुर स्वर को और भी मधुर बना कर कहा।

"तुमने अपना नाम अभी तक न बताया?"

मैंने हँस कर कहा "चन्द्रिका सिंह"

इन्दु ने गम्भीर भाव से कहा "नहीं; यह तुम्हारे योग्य नाम नहीं है। मैं तुम्हें पूषण कहूँगी क्योंकि तुमने आज मेरी सहायता पूषण के ही समान किया है।"

मैंने तो पूषण का नाम आज तक नहीं सुना था—मैं कुछ समझ न सका। किन्तु नाम तो संस्कृत मालूम होता था और इसी कारण मुझ हिन्दू को इस अनार्य्य ललना के सामने अपनी ज्ञानन्यूनता दिखाना कब पसन्द था? मैं यह छिपाने के लिये हँस पड़ा।

किन्तु उस कुमारी ने, जैसे मेरे मानसिक सञ्चारों को भली-भाँति जानती हो, यों कहा "तुम पूषण को नहीं जानते? हमारे वैदिक ऋषियों पर जब राह-बाट में आपत्ति आती थी तो वे पूषण ही को पुकारते थे। पूषण सूर्य को कहते हैं। मेरे कठिन समय में मदद देने वाले तुम मेरे पूषण हो।"

इस प्रशंसा से जो कुछ हर्ष हुआ वह आश्चर्य से मिला था। यह बालिका कैसे मेरे हृदयज भावों को जान जाती है? मेरे चित्त में बड़ा कोलाहल मच गया। एक बार मेरे मन में भयानक स्वप्न का भ्रम हो आया और मैंने अपने हाथों को अचानक झार दिया इन्दु के "आह" सुनने पर मुझे ज्ञान हुआ और तब उसे सड़क पर छाती थामे बैठी हुई देख कर मैं अपने को गालियाँ देता, हाथ जोड़ कर जमीन पर बैठ गया।

"क्षमा करो इन्दु, मैं आपे से बाहर हो गया था। तुम्हारे गुणों से मुग्ध होकर मै स्वप्नलोक में पहुँच गया था।"

इन्दु हँस कर खड़ी हो गई और बोली "मेरे पूषण, तुम मुझसे रञ्ज हो, मैं तुम से कैसे रञ्ज रहूँगी? तुम मुझे क्षमा करो, मैं तुम्हें क्या क्षमा करूँ।"

यह कह कर उसने मुझे हठात् चूम लिया मेरा रहा सहा भी धैर्य्य कूच कर गया और मैं उसे गोद में उठाकर, ललाट को,

आँखों को, गालों को और होठों को कबतक चूमता रहा, मुझे याद नहीं किन्तु अन्त में इन्दु मेरे गोद से कुद कर सड़क पर खड़ी होकर बोली।

"अब ठीक है—अब तुम रञ्ज नहीं हो—मुझे सभी प्यार करते हैं और तुम्हें रञ्ज देख कर मुझे बहुत दुःख हुआ था। अब चलो, देर हुई।"

इस बात पर मुझे अत्यन्त खेद हुआ। मैंने तो अपना हृदय खो दिया किन्तु इस बालिका को इन बातों का क्या ज्ञान था यह भी प्रत्यक्ष हो गया। हाय, एक तो यूरोपियन होने से निष्फलता ही की आशा थी पुनः अल्प बयस के कारण उसका इस हृदय के भावों से अपरिचित रह जाना ही सम्भव हो गया। इसी दुःख में मैंने कहा "हाँ इन्दु, यह कहना अत्यन्त आसान है। दीपक में कीड़ों का पङ्ख जलता है; दीपक का क्या होता है? मैं जल मरूँगा तुम मुझे भूल ही जाओगी।"

इन्दु की बड़ी आँखें आश्चर्य और दुःख से तन गईं "क्यों मेरे पूषण, यह क्या कहते हो, मैंने तुम्हें कैसे दुखाया है? जो कहो सो करूँ।"

मैंने देखा कि ऐसी बातें करना निरर्थक है। मैंने कहा।

"नहीं, नहीं, इन्दु, मैंने हँसी किया था; मुझे तो तुम कभी नहीं भूलोगी।"

"जिसे प्यार करता है, उसे भी कोई भूलता है? और फिर तुम्हें तो रोज मेरे यहाँ आना होगा।"

मेरा बन्धन पद-पद पर जटिल हुआ जाता था किन्तु इन्दु के जाल से निकलने में मैं असमर्थ था और अब वह भवन दीखने लगा जिसमें मैं सचमुच पूषण के सुखों और दुःखों को भोगने वाला था।

तीसरा परिच्छेद

मेरी आत्मकथा

इन्दु ने घर दिखा कर कहा 'हमलोग अब घर आ गये' ।

गृह की छवि इस शरत् रात्रि में अद्वितीय थी। पुष्पित लताओं से बङ्गले का अग्रभाग मणिमुक्ता खचित मालूम हो रहा था। बङ्गले की चारों ओर अगणित और भिन्न २ पुष्पों की क्यारियां थी। इनमें से गुलाबों को छोड़ औरों को तो पहिचानता नहीं था किन्तु उनकी धीमी सुगन्ध से और उन पर चन्द्रकिरणों के विहार करने से मेरा हृदय आनन्दमय हो गया। और बातों की सुधि जाती रही। मैंने कहा,

"इन्दु, तुम देवी हो और यह स्वर्ग तुम्हारा निवास है"

इन्दु प्रसन्न स्वर से बोली, "मेरे पुषण, तुम्हें मेरा घर पसन्द है ?—मुझे बहुत आनन्द होता है। ये सब पुष्प मेरे लगाये हैं।"

यह कह कर इन्दु फाटक के भीतर गई, और मुझे कुछ हिचकते देख कर मेरे हाथ को पकड़ कर भीतर खींच ले गई। भीतर जाते ही किसी के कुपित स्वरों की भनक कानों में पड़ी और तदनन्तर किसी के रोने गिड़गिड़ाने की आवाज भी आई। इन्दु का मुख कुछ उदास सा हो गया और वह बोली

"पिता मेरी आया को डांट रहे हैं। मेरे अपराध के लिये वह बातें सुन रही है। मैं बहुत दुष्टा हूँ।"

इन बातों पर मेरे हृदय में ईर्ष्या भयानक वेग से जल उठी और मैंने कहा

"यह सब अपराध मेरा है—मुझे जाने दो।"

इन्दु की आंखों में इस बार अश्रु भर आया उसने अपने को बहुत सम्भाल कर कहा

"पूषण, पूषण, तुम मुझे क्यों तिरस्कार करते हो? उधर मैंने अपराध किया, इधर तुम भी मुझे छोड़ कर भागते हो!"

अश्रु देख कर मैं पुनः पिघल गया। मैंने अपने को बहुत कुछ भला बुरा कहा, और अनेक प्यार की बातें कह कर, इन्दु को चुप कराया और वादा किया कि जो कुछ वह अपने पिता को कहेगी उसे मैं भी कबूल करूँगा। इस पर इन्दु के मुख पर फिर हँसी आई और वह मुझे घसीटती दौड़ी बङ्गले की बरसाती में पहुंची। वहां उसकी आया, उसकी मा और उसके पिता अभी तक खड़े थे। इन्दु मुझे छोड़ कर झट अपनी माता की गोद में दौड़ गई और अपने पिता से कहने लगी।

"पिता आया पर रंज न होइये, क्योंकि सब अपराध मेरा है। यह सब ये, पूषण, जानते हैं (यहाँ उसने मेरी ओर संकेत किया) जिनके वहां न होने पर न जाने मुझे कौन-कौन-सी आफतें झेलनी पड़ती। इन्ही से सब बातें पूछ न लीजिये।"

इन्दु के पिता ने मुझे गहरी दृष्टि से देखा और पूछा, "Who are you?" (आप कौन हैं)?

मैं उत्तर देने ही वाला था, कि इन्दु, विनय-नम्र स्वरों में फिर बोली, "पिता! यह कोई क्यों न हों, इन्होंने आज मेरी ऐसी सहायता की है कि मैंने इन्हें पुनः आने का निमन्त्रण दिया है। पिताजी! आप भी मेरा समर्थन कर दीजिये। ये धन्यवाद के योग्य हैं।"

इस आग्रह से हो, अथवा असली कृतज्ञता से हो, इन्दु के पिता ने मुझे अपने पास बुलाया।

"लड़के ! इधर आओ।"

और उन्होंने अपना हाथ बढ़ा कर मेरे हाथ को ले लिया और हिलाते हुये बोले,

"तुम भले और सज्जन लड़के हो। मैं तुम्हारी मित्रता चाहता हूँ। आज जो सहायता तुमने दी है उसके लिये तुम्हें अनेक धन्यवाद और आशिष देता हूँ।"

मैंने कहा "सर (Sir) मैं तो एक साधारण विद्यार्थी हूँ और मैंने केवल मनुष्यत्व के नाते एक आवश्यक कर्त्तव्य का पालन किया है; यह आपकी और मिस होप की कृपा है कि आप इस साधारण सेवा को ऐसा रूप दे रहें हैं।"

मिसेज वेस्ट ने कहा, "लड़के ! तुम्हें इसी छोटी उम्र में बहुत बुद्धि है। भगवान तुम्हारा भला करें।"

मिस्टर वेस्ट ने कहा, "लड़के ! तुम्हारा नाम क्या है ?"

मैंने कहा, "जी, मुझे चन्द्रिका सिंह कहते हैं।"

मि० वे०—चन्द्रिका, आज की सब घटनाओं का वर्णन हम सभी तुम्हारे मुख से सुनना चाहते हैं। और तुम्हारा विशेष परिचय भी जानकर हमें तृप्ति होगी। इससे चलो ड्राइङ्ग रूम (Drawing room) में।"

मैं तो चला जाना चाहता था, किन्तु अब कहता ही क्या ?

मैं दाँत से ऊँगली काट कर भीतर गया।

मैं आज तक किसी बड़े अङ्गरेज के मकान में तो गया नहीं था। बस उस ड्राइङ्ग रूम (Drawing Room)की सजावट से मैं प्रसन्न एवं चकित भी हुआ। बहुतेरी चित्रकार शिरोमणियों की बनाई तसवीरें, दिवालों से लटक रही थी। प्रत्येक दरवाजे के

सुन्दर अमूल्य परदे इस समय एकत्रित किये हुये और किनारों से लटक रहे थे। कमरे में अत्यन्त सुन्दर सोफे (Sofas) और अनेक ढङ्ग की गद्दोदार कुर्सियां सजी हुई थीं, बीच में एक गोल टेबुल जिस पर एक सोनहरे रङ्ग का काम किया हुआ कपड़ा बड़े खूबी से लटक रहा था,गुलदस्ता लगे हुए फूलदान (Vase) से सजोला था। फिर मैंने देखा कि ऐसे टेबुल और गुलदस्ते चारों कोने में और जगह जगह पर बड़ी रसिकता से सजे हुये थे।

इन बातों को देखने का मुझे अधिक अवसर नहीं मिला क्योंकि इन्दु के पिता मुझे कुर्सी देकर स्वयं बैठ गये और यों बोले

"अब आप अपना परिचय और आजकी बातों का वर्णन सुनाइये।"

मैं प्रारम्भ ही करना चाहता था कि एक ओर के दरवाजे से एक अट्ठारह वर्ष का युवा आ पहुंचा। उसके गौर चमड़े से उसकी जाति स्पष्ट थी। किन्तु सफेद चमड़े ही से सौन्दर्य्य नहीं होता इसका प्रमाण मुझे प्रत्यक्ष मिल गया। इसका शरीर मुझ से लांबा था पर तिनके के समान पतला था। भुजायें लांबी थीं किन्तु दुबला होने के कारण हाथों की हड्डियां घृणित रीति से निकली हुई दीख पड़तीं थीं। उसके मुख पर मुर्दनी सी छाई हुई थी और यहां भी हड्डियों के निकलने से आकृति भूतों को हो गई थी। केवल उसका बड़ा ललाट और उसकी बड़ी आंखें उसके मुर्दे मुख को सजीव बना देते थे। किन्तु इन दोनों का उस सूखे पके मुख से वैषम्य, देखनेवाले के हृदय में भय पैदा करने वाला था। जिस पर उसकी आंखें एक बार बद्ध होती थीं उसको उनके मार्ग से भागने ही की इच्छा होती थी। मैंने केवल इन्दु के माता को ही देखा जो भलीभांति उसकी ओर देख सके।

उसे देखकर इन्दु के पिता ने उसे अपने पास बिठाया और मुझ से कहा "यह मेरे मृत मित्र के पुत्र लीओ कार्टर है। लीओ, ये अभी होप (Hope) को यहां तक पहुंचाने आये थे और हमलोग सब बातें सुनने के लिये बैठे हैं।"

लीओ ने अपनी दुष्ट आंखों को मेरे ऊपर बद्ध कर मुझ से चुप चाप हाथ मिलाया।

इस रीति से और इस घटना क्रम से हाय! जिनका कारण स्वयं मैं ही था, मैं उस भयङ्कर जीव से मिला जो मेरे जीवन के रस को ही सुखाने वाला था और जिसकी क्रूर ज्वाला मेरे सुखों को भस्म करने वाली थी। जीवों का हृदय अपने शत्रुओं को और मित्रों को भली भांति पहिचानता है। यही कारण है कि बेचारा पक्षि बाज को देखते ही चीत्कार करने लगता है और पशु मात्र व्याघ्रों के गर्ज्जन से ही कांपने लगते हैं। मेरा हृदय भी इस लीओ के दर्शन ही पर उसे अपना शत्रु मान बैठा

अनन्तर मैंने अपनी कहानी आद्योपान्त वर्णन की। अपने माता पिता का मुझ में प्रेम, पिता का स्वर्गवास, अपना विद्योपार्ज्जन के लिये काशी आना,—आज रात्रि की सैर, इन्दु से मिलना इत्यादि मैंने सब वर्णन किया। मैंने देखा कि इन्दु और उसकी माता मेरी आत्म कथा से सकरुण हो गईं। मेरी कथा समाप्त हुई। इन्दु के पिता ने कहा

"लड़के, तुम मुझे बहुत पसन्द हो। तुम सच्चे हो और सत्य बातों को कहते हो। जब कभी तुम्हें किसी सहायता की आवश्यकता हो, तुम निःसंकोच मेरे पास आना।"

मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और वादा किया कि मैं इस कृपा को कभी नहीं भूलूंगा

इन्दु धीरे से मेरे पास आई और दोनों हाथ मेरे हाथों में देकर बोली—

"मेरे पूषण, दुखी न हो; मेरी माता कहती है कि जिनका कर्म्म समाप्त हो जाता है वे पृथ्वी को जल्दी ही छोड़ चलते हैं।"

मैं देख रहा था कि इन्दु के माता पिता की आंखें बड़े चाव से उसपर बद्ध थीं और यह स्पष्ट था कि इसकी सहजता पर उनका हृदय आनंदित हो रहा था।

इन्दु के पिताने कहा "बेटी, अब तुम्हारे सोने का समय हुआ सोने जाओ।"

इन्दु के मुख पर कुछ आशा भंग होने की छाया आ गई। किन्तु उसने कहा

"मेरे पूषण, आने का वादा भूलोगे तो नहीं? मैंने कहा 'नहीं'"

तब वह मुझ से और लीओ से हाथ मिला कर, माता पिता से चुम्बित हो कर चली गई। मेरे लिये क्या सभी के लिये कमरा अन्धेरा हो गया। उसके पिता ने दीर्घश्वांस लेकर कहा "Hope is a blessing" (होप सुख रूप है)

मैं इस बात का अनुमोदन कर के उठा और सब लोगों से हाथ मिलाया। चलती वार इन्दु के पिता ने भी पुनः आने का निमन्त्रण दिया। मैंने देखा कि यह लीओ को बुरा लगा और वह किसी अभिप्राय से मुझे फाटक तक पहुंचाने के बहाने मेरे साथ हो गया। यह देख कर मेरा जो सूख गया और जब उसने मेरे हाथ में अपना हाथ लगाया घृणा से मेरे शरीर में रोमाञ्च हो गया। कमरे से बाहर होते ही मैंने अपना हाथ हटा लिया।

लीओ ने कहा "चन्द्रिका सिंह, आज चार वर्षों से तुम्हारी बाट जोहने के बाद तुम प्रकट ही तो हो गये"

इस बात से मैं अवाक् होकर "क्या" छोड़कर और कुछ नहीं कह सका।

लीओ फिर बोला "सुनो तुम्हारे आने की खबर मुझे पहले से है। मैं तुम्हारी खोज में था और अब मैं चेता देता हूँ कि यदि तुम अपनी भलाई चाहते हो तो इस घर में फिर मत आना और मिस होप की ओर भूलकर भी आंखें न उठाना।"

इन बातों पर मुझे बहुत क्रोध हुआ। मेरा भय जाता रहा और मैंने कड़ी आवाज से पूछा।

"यह कहनेवाले तुम कौन?" लीओ ने अपनी क्रूर दृष्टि को मेरे ऊपर बद्ध कर के कहा

"होप के और मेरे सितारे साथ २ चलते हैं। उसके और मेरे कर्म्म एक दूसरे से मिले हुए हैं। हमारे बीच में जो आवेगा वह निश्चय कीड़े के समान कुचल जायगा।"

क्षण भर उसकी आंखों की पैशाचिकी ज्योति से मैं डर गया। किन्तु उसके सूखे शरीर को देख कर मेरा कलेजा बढ़ा और मैंने कहा

"मैं तुम्हारी बातों में विश्वास नहीं करता और तुम्हारे उपदेश को नहीं मानूंगा।

लीओ का मुख भयङ्कर हो गया। उसने कहा "अच्छा होशियार रहना।"

यह कहकर वह घर की ओर फिर गया। और मैं भी अपने विह्वल विचारों के साथ बोर्डिङ्ग हौस की ओर चला।

मैं अपने विचारों का क्या वर्णन करूँ, मैं यों कह सकता हूँ कि मैं विचार शून्य हो गया था। मेरे हृदय के कोलाहल से कोई भी विचार स्पष्ट नहीं होता था। मैं स्वप्न-चारियों के समान

घूमता बोरडिङ्ग हौस पहुंचा और कमरे में जाकर चारपाई पर लेट गया।

किन्तु नीन्द अत्यन्त विलम्ब से आई। नित्य सन्ध्या की घटनायें मानस के सामने आ २ कर विलीन हो जाती थीं। फिर२ उन२ भावों का सञ्चार होता था जिनका सन्ध्या में घटनाओं के प्रत्येक परिवर्तन पर उदय हुआ था। फिर भी उस बालिका के शुद्ध जगमोहिनी छवि के सामने मेरा हृदय नाच उठता था; फिर भी उसकी सरलता और सत्यचरित्रता पर मानस मुग्ध हो बैठता था; फिर भी उसके पवित्र चुम्बनों पर मेरे शरीर में रोमाञ्च हो उठता था। इन सब भावों के साथ साथ उस संन्यासी और लीओ की मूर्तियां भयङ्कर स्पष्टता से घहरा पड़तीं थी और हृदय सन्देहों से भर जाता था।

बहुत देर पर जब नीन्द आई तो मैंने स्वप्न में भी इन्दु ही के साथ अपने को सुख से दिन काटते देखा। मैंने देखा कि हम दोनों, एक मनोहर कुञ्ज में बैठे हैं। इन्दु मेरे वक्ष-स्थल पर लेटी मुझे प्रेम भरी निगाहों से देख रही है और मैं उसे अपनी प्रेम कहानी सुना रहा हूँ। हठात् वह कुञ्जन शून्य में मिल गया और इन्दु भी अन्तर्ध्यान हो गई। मैंने अपने को शून्यारण्य में पड़ा पाया और देखा कि मेरे वक्षः-स्थल पर लीओ बैठा पैशाचिकी हास्य पर हँसता मेरे हृदय में खञ्जर धसाया चाहता है। मैंने ससम्भ्रम चिल्ला कर इधर उधर देखा। देखता क्या हूँ कि वही फाटक वाले सन्यासी जी धीरे२ जा रहे हैं। इतने में खञ्जर का नोक मेरे वक्षः-स्थल में चुभा और मैं "सन्यासी जी, सन्यासी जी!" चिल्लाता, उठ बैठा।

देखा, दिन चढ़ आया है।

०००○○○०००

चौथा अध्याय

मेरे रोज़नामचे से

अगस्त २२,१६···। कुछ दिनों से मेरे मन में हो रहा है कि मैं एक रोज़नामचा रखूँ। बड़े-बड़े विद्वानों ने रोज़नामचा लिखने की आदत की सराहना की है। कहा जाता है कि ऐसा करने से मनुष्य अपने दोषों को दूर और अपने चरित्र को संगठित एवं शुद्ध कर सकता है। यह बात तो मन में थी ही, किन्तु कल्ह की घटना से यह आवश्यक हो गया है कि मैं रोज़नामचा लिखूँ। ऐसे विरोधी भाव उठ रहे हैं, और ऐसी विचित्र स्थिति हो रही है की यदि इन पर कड़ा शासन किया न जाय तो मैं कहाँ जा पहुँचूँगा कुछ ठीक नहीं। जब मैं कल्ह के मानसिक तूफान और रात्रि के भयानक स्वप्न पर विचार करता हूँ तो अपने प्रत्येक आचार व्यवहार पर कड़ी दृष्टि रखना आवश्यक प्रतीत होता है। इसलिए आज रात्रि में जब सभी सो गये हैं मैं इस रोज़नामचा का प्रारम्भ करता हूँ।

जब मैं प्रातःकाल उठा तो यह निश्चय कर के उठा कि कल्ह की बातें कल्ह पर ही समाप्त रहें; एक अङ्गरेज छोकड़ी के वशीभूत होना किसी भी आर्य्यवंशीय को शोभा नहीं देता, खास कर मुझे, जो अपनी माता का एक ही आधार हूँ, जिनकी सब आशायें मुझी में केन्द्रित हैं। किन्तु जैसे-जैसे मैं अपनी नित्य क्रियाओं में प्रवृत्त होता गया वैसे ही वह सौन्दर्य का प्रतीक मेरे मानस पट पर नाच उठा, वह मोहनी भाव-भङ्गी, वे अधरों को रसमय करने वाली मन्द मुसकानें, वे गम्भीर, धीर, निश्चल, निर्मल नयनों की भोली कटाक्षें, मेरे हृदय में ऐसी उथल-पुथल मचाने लगीं, कि मेरे सब सङ्कल्प

काफूर हो गये और मैं विह्वल होकर "क्या करूँ?" सोचता कमरे में घूमने लगा।

अनन्तर मैं गोपाल के पास गया। आद्योपान्त कहानी कह सुनाई। उस भलेमानस को अपने चुहेलियों के लिए यही अच्छा अवसर दीख पड़ा। उन्होंने मेरे आतुर वर्णनों पर हँसना प्रारम्भ किया; मेरे प्रेम के उदय पर चुटकियाँ लेना ही उचित समझा। चन्द्र में अङ्क खोजा; कथा में अविश्वास किया। भङ्ग को कारण बतलाया।

मैंने अन्त में दुखी होकर कहा,

"गोपाल, मैं तुम से अपना दुःख रोने आया और तुम बस हँसी में उड़ा रहे हो।"

गोपाल ने उत्तर दिया "भई चन्दर, तुम कहते हो कि एक यूरोपियन की छोकरी अप्सरा है और सुशीला है तो मैं कैसे विश्वास करूँ। मैं भले ही विश्वास कर सकता हूँ कि विष्णु इस कलि में अवतार ले चुके।"

मैंने कहा "गोपाल, स्वयं देख लो, तब कहना? पहले यह विचार करो कि मैं फिर उसके पास जाऊँ या नहीं।"

गोपाल ने कहा "क्या सवाल, चन्दर! क्या समझते हो मैं कहूँगा की उस लीओ की घुड़कीसे भाग जाओ। यह ठीकहै कि अनार्य ललनाओं के पीछे पड़ना मुझे पसन्द नहीं है किन्तु यहभी आवश्यक है कि डाट निबाही जाय वरन कापुरुष कहे जाओगे।"

यह सुन कर मुझे कितना आनन्द हुआ मैं कैसे वर्णन करूँ? मेरा हृदय तो सदैव उस रमणी की ओर खिंच ही रहा था किन्तु बुद्धि बार-बार इसके अनुराग पर पानी फेर रही थी। किन्तु अब गोपाल की अनुमति से मेरी सब शङ्कायें जाती रही। मैं नहीं कह

सकता कि यदि लीओ निषेधन करता तो मैं पुर्नमिलन का उद्योग करता क्योंकि मैं कह चुका हूँ कि यद्यपि इन्दु मुझे आकर्षित करती थी तथापि मेरे हृदय में सन्देह भी उठता था।

आज कालेज बन्द था। हम दोनों ने स्थिर किया कि भोजन के अनन्तर इन्दु के घर चलेंगे। ज्यो-ज्यो जाने का समय निकट आता गया मेरा हृदय पुनः सन्देह से चञ्चल होने लगा। और यद्यपि गोपाल अपने कुतूहल को गाम्भीर्य्य से छिपाना चाहते थे, तथापि मेरी आंखों से छिपा नहीं रहा। मैं तो बार बार यही सोच रहा था, "इन्दु क्या रात के समान फिर मिलेगी? गोपाल के लेआने से क्रुद्ध तो न होगी? गोपल उसे पसन्द करेंगे?" ऐसे २ अनेक प्रश्न उठ रहे थे और भांति २ के उत्तर भी प्रकट होते थे।

बड़ा से बड़ा युग समाप्त हो जाता है और मेरा भी चार पांच घटे का युग समाप्त हुआ। हम दोनों खा पी कर बाहर हुए। यहां यह कहना पुनरोक्ति ही होगी कि हमलोग अपने २ विचारों में ऐसा मग्न थे कि बातचीत करना मानों भूलही गये थे। हमारे चञ्चल हृदयों की दृष्टि में तो वह भवितव्यता-युक्त फाटक अत्यन्त शीघ्रता से ही प्राप्त हो गया। हम दोनों क्षणभर एक दूसरे का मुख देखते रहे। तब गोपाल एक कृत्रिम अमधुर हंसी हंस कर बोले।

"चन्दर, तुम जाओ, मैं यहीं रहता हूँ। बे बुलाये भीतर जाना शिष्टव्यवहार नहीं है।

मैंने कहा "नहीं, मैं तुम्हारे साथ ही जाऊँगा या मैं भी नहीं जाऊँगा।"

गोपाल "चन्दर, मूर्खता नहीं दिखाओ। तुम जाओ, अपने प्रियतमा की अनुमति ले आओ तब मैं आऊँगा।"

मैंने कहा "गोपाल, यह क्या बक रहे हो? यदि इन्दु—"

इतने में फाटक के पास से एक मधुर हास्य सुन कर हम दोनों चौंक पड़े। देखा इन्दु खड़ी है। लीला ललित आंखें नाच रहीं थीं। उसके अकृत्रिम हंसी से हमलोग भी हंस पड़े।

इन्दु सम्भल कर बोली—"महाशय, पूषण के सभी मित्र स्वागत है। आप निश्चय आइये।"

यह कह कर इन्दु ने गोपाल का हाथ थाम लिया और बङ्गले की ओर चली। यद्यपि गोपाल मेरे ही अनुरोध से आये थे और मेरे प्रेमपात्र थे, तथापि इन्दु के हाथ को अपने हाथ के बदले उन के हाथ में देख कर मुझे तीव्र आन्तरिक पीड़ा हुई और मेरा मुख सहसा मलिन हो गया। तथापि मैं उन दोनों के पीछे पीछे चला। इस समय इन्दु ने उस आश्चर्य्यजनक प्रभाव का पुनः परिचय दिया जिस से वह मेरे हृदय के प्रत्येक सञ्चार को भलीभांति जान जाती थी। उसने फिर कर मेरे हाथ को थाम्म लिया और कहा

"पूषण तुम्हारा हृदय दुखी क्यों होरहा है?" इस प्रश्न से मैं अत्यन्त लज्जित हुआ और कुछ बात बना कर उत्तर दे दिया।

तदन्तर हम दोनों को लिये बालिका उद्यान के एक एकान्त कोने में चली आई जहां एक कुञ्जसा बना हुआ था और बेंच बिछे हुए थे। बेंच पर बैठ कर हमलोगों में बातचीत होने लगी।

उस वार्तालाप का मैं क्या वर्णन करूँ—मेरे हृदय के भावों की गम्भीरता में बातों की लच्छियां डूब गईं। सरस पवन धीरे धीरे चल रहा था, दिशाओं पर अपूर्व्व माधूर्य्य छाया हुआ था, और मेरे हृदय में आनन्द बधाई बज रही थी। मुझे बातों से क्या सम्बन्ध था कि मैं उन को सुनता। मेरे रोम रोम, मेरे अङ्ग अङ्ग, मेरी समस्त इन्द्रियां उस लावण्य सागर में गोता मार रहीं थीं—और वह वर्तालाप केवल अदृष्ट मधुर वाद्यध्वनि सा इस संभ्रान्त अवस्था को और भी दृढ़ कर रहा था।

मैं निरी कविता नहीं लिख रहा हूँ न कि मेरे मस्तिष्क के कल कांटे यों बिगड़ गये हैं कि मैं एक शिशु को पूर्ण युवती के पद पर रख कामातुर का चित्र खींच रहा हूँ। किन्तु नहीं। त्रयोदश वर्ष और षोडश वर्ष मनोभव को नहीं जानते; उनका हार्दिक उच्छ्वास उद्दीपन से वर्जित रहता है; तथापि एक आन्तरिक आकर्षण दो मुग्ध हृदयों को परस्पर लालायित रखता ही है।

इस रीति से एक घण्टा व्यतीत हुआ—एक अल्प घण्टा। हम तीनों आपस में यों लीन थे कि किसी अन्य बात का ज्ञान ही न था। लीओ कब का आकर हमारे पीछे खड़ा हो गया था, किसी को विदित न था। किन्तु अचानक उस विनोद-लहरी पर कुछ छाया-सी आ पड़ी; उस मिलन-वाटिका पर पाला-सा आ पड़ा। सब की चकित-दृष्टि उस पर एक साथ ही पड़ी और आनन्द हृदयों से कूच कर गया। सबों का हृदय जैसे पत्थर से दब गया। उसकी आंखों से विचित्र ज्योति निकल रही थी; उसके होठों पर क्रूरता की मुसकान छाई हुई थी।

उसने कहा, "मिसवेस्ट, मैं तुम्हें बहुत देर से ढूँढ़ रहा हूँ। मैं नहीं जानता था कि तुम्हारे नये मित्र आ पहुंचे हैं। क्षमा करना।"

इन्दु ने कहा, "यहां क्षमा करने की बात ही कौन है? कार्टर, तुम स्वागत हो। यदि हमारे खेलों में तुम्हें रुचि हो, तो तुम भी शरीक हो सकते हो।"

लीओ ने पूछा, "कौन सा खेल?

इन्दु ने कहा, "अभी हमलोगों ने निश्चय किया था कि "Blind man's Btuff" (ठेठ-अंखमुदेल) खेलेंगे। तुम्हारा रुचि हो, तो खेलो।"

लीओ ने कहा, "क्या खेल है ?"

मैंने कहा, "मिस वेस्ट, यदि आपकी मर्जी हो तो मैं एक खेल बताऊँ क्योंकि कि कार्टर इस खेल पर हंसते हैं ।

इन्दु ने कहा, " हां, हां, कहो ।"

मैं:—मिस वेस्ट, आप तो लक्ष्मी बन कर यहां बैठें । हम दोनों, कार्टर और मैं, आपकी कृपा के भिखारी बनते हैं । आप जो हुक्म दें, जो परीक्षा लें उसमें हम दोनों प्रथम स्थान प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे ।"

इन्दु की आंखें लीला से नाचने लगीं । उसने कहा, "पूषण, तुम्हारा खेल अत्यन्त ललित है । अच्छा, यह लो, मैं लक्ष्मी होकर बैठती हूँ । किन्तु वे चार गज कहां से आवेंगे जो स्वर्ण-कलशों में अमृत भर कर मुझे स्नान करावेंगे ? कमल के स्थान पर तो मैं इस कार्नेशन (Carnation फूल) को धारण कर सकती हूँ । और शङ्ख की जगह तो यह कांच का टुकड़ा काम कर सकता है । गोपाल, क्या तुम उन गजों का स्थान लोगे ?"

गो०—मिस वेस्ट, आप जो कहें, मैं वही बनने को तैयार हूँ ।

इन्दु—तुम मेरे भाई हो, और हृदय के मित्र । आओ । मेरी बगल में बैठो और इन प्रतिद्वन्दियों की मार काट देखो ।—पूषण, तुम देवगण हो; और कार्टर दानवगण हैं । मेरी प्राप्ति के लियेयुद्ध करो ।

लीओ:—वाह, वाह ! तुम भूलती हो, कि लक्ष्मी के लिये देव और दानव में युद्ध नहीं हुआ था ।

इन्दु:—अजी, यह नया युग है, और मैं इस युग की लक्ष्मी हूँ ।

लीओ, मेरी ओर द्वेष-पूर्ण नयनों से देखने लगा । मैंने

समझ लिया कि मुझे नीचा दिखाने में कोर कसर न रहेगी। किन्तु उसके शरीर को ऐसा दुर्बल देखकर मेरे हृदय में पूर्ण आशा हुई। मैंने झट अपने कोट को उतार डाला। कार्टर ने भी वैसा ही किया और हम दोनों घास पर आ खड़े हुये।

मैं लिओ के लम्बे कङ्काल शेष शरीर को देख कर निश्चय कर लिया कि इसे पटकना कोई बड़ी बात नहीं है, किन्तु उसके हाथों की पहुंच मुझ से अधिक थी, इस लिये इस बात को ध्यान में रखते हुये लड़ना होगा। पहले ही मुठभेड़ में मुझे मालूम हो गया कि उसकी पकड़ असाधारण शक्तिशाली भी है क्योंकि ज्यों ही हमारे हाथ मिले, मैंने आश्चर्य के साथ पाया की मेरे दोनो हाथ गिरफ्तार हो गये और मैं खींचे जाने लगा। मेरे विशेष प्रयत्न करने पर ही वे छुट पाये। मैं सावधान हो गया। मुझे उन पेचों का स्मरण हो आया जिन्हें मैंने अपने गांव पर सीखा था। उसमें एक पेंच था जिसके ठीक से लग जाने पर प्रतिद्वन्दी पलक मारते न मारते भूतल-शायी किया जा सकता था। मैंने उसीका प्रयोग करना ठीक किया। इसके लिये यह आवश्यक था की लीओ निर्भीक हो जाय। इस नीति से मैंने भय का ऐसा ढोंग किया कि लीओ मुझ पर आक्रमण करने लगा। मैं समझ रहा था कि इससे गोपाल को आश्चर्य्य और इन्दु को दुःख होता होगा किन्तु मैंने सोचा कि जब अन्त में मेरा विजय होगा तो इसी दुःख के कारण, द्विगुणित हर्ष होगा। इसलिये मैं पीछे हटने और भागने का स्वांग रचने में कुछ उठा नहीं रखा इसका फल वही हुआ जो मैं चाहता था। लीओ के एक आक्रमण में मुझे उस पेच लगाने का मौका मिल गया और वह बात की बात में जोरों से पृथ्वी पर गिरा। दर्शकों नें तालियां बजाई और मैं लीओ के सर के पास जाकर पहा.

"कार्टर ! चोट तो नहीं आई ? क्षमा करना, मैं जोर से पटकना नहीं चाहता था ।"

लीओ धीरे २ उठा । उसकी आंखें क्रोध और प्रतिहिंसा की आग से जल रही थीं । धीरे से बोला,

"इसबार यही सही । दूसरी बार मेरे पञ्जे से न निकलोगे ।" मैंने भी धीरे से कहा, "बहिश्त की तैयारी करके आना ।"

इन्दु ने पुकारा, "पूषण ! बधाई ! गोपाल ! विजेता को सन्मान के साथ मेरे पास लाओ ।"

गोपाल मेरे पास आकर बोले, 'विजेता ! रानी लक्ष्मी के पास चलो ।" मैं धीरे२ सैनिक भाव से गोपाल के पीछे २ चला । गोपाल ने उस कृत्रिम सिंहासन के सामने आकर, प्राचीन विलायती सेना नायकों (Knights) का अनुकरण करते हुये, सर झुकाकर इन्दु को नमस्कार किया, और उच्चस्वर में कहा, "रानी की सेवा में विजयी सेना नायक पूषण हाजिर हैं ।" इतना कहकर वह हट गये और मैं आगे बढ़कर, इन्दु के चरणों के पास घुटनों के बल बैठ गया ।

इन्दु रानी के रूप में सिंहासन से उठी और बोली,

"Sir Knight (श्री सेना नायक) इस विजय के लिये बधाई । आज से आप मेरे नाइट हुये । आपका काम सत्य और न्याय का पालन, दुखियों की सहायता, और स्त्रियों के मान मर्य्यादा की रक्षा होगा । इस विजय के उपलक्ष में मैं यह इनाम देती हूँ ।"

इतना कह कर उसने अपने जूड़े से लगा हुआ एक गुलाब का फूल निकाला और मुझे खड़ा होने को कह कर मेरे कोट में लगा दिया ।

मैंने गद्गद स्वरों में कहा, "रानी लक्ष्मी ! मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ । मैं आजन्म आपका दासानुदास रहूँगा ।',

× × × × ×

सितम्बर २,१६—। आज आठ दस दिनों पर मैं इन्दु के पास गया था । अपने हृदय को मसल कर मन को बान्ध कर, घण्टों को गिन २ कर मैंने किसी तरह इन दिनों को बिताया । क्यों ? क्योंकि गोपाल ने कहा था, "देखो ! प्रति दिन न जाओ, नहीं तो तुम्हारा मूल्य कुछ भी न रहेगा।" मन में तो आया की कहूँ, "भईया ! मुझे मूल्य बढ़ाने को क्या आवश्यकता है ? मुझे तो दर्शन की लालसा है ।" लेकिन मैं जानता हूँ कि गोपाल की बुद्धि बड़ी प्रबर है, और उनकी बातें माननी ही चाहियें । फिर भी आज मैं किसी हालत से ठहर नहीं सका । जैसे मैं वेस्ट साहब के फाटक के पास पहुंचा, मुझे मालूम हुआ कि कोई दीवाल के उस पार तेजी से दबे पांव झाड़ियों में भागा । मैं चकित हुआ कि इस सन्ध्या समय में कौन छिपकर बङ्गले में घुसा जारहा है । इससे मैं तेजी से घुसा और इधर उधर देखने लगा किन्तु कुछ देख न पाया । इसी बात को शोचता हुआ मैं बङ्गले के सामने गया तो वहां पर लीओ को खड़ा पाया । मैंने "गुड ईवनिङ्ग" (Good Evening) कह कर हाथ बढ़ाया किन्तु उसने "गुड ईवनिङ्ग" कह कर, हाथ का निरादर करता हुआ, कहा,

"कई दिनों से तुम्हारी राह देख रहा हूँ । जरा उधर चलो कुछ बातें करनी हैं ।"

इतना कह कर वह फूलवारी की ओर चला । यद्यपि मुझे बहुत क्रोध हुआ था, तथापि कुतूहल वश मैं उसके साथ हो गया । वह एक एकान्त स्थान पर जाकर मेरी ओर फिरा और अपने स्वर को नियन्त्रित रखने का प्रयत्न करता हुआ बोला ।

"मैं तुम से इस विषय में आखिरी बार बातें कर रहा हूँ। मेरी सब बातों को शान्त होकर सुनो और तब उत्तर दो। तुम यह जानते हो की मिस होप युरूपियन हैं। अभी तेरह चौदह वर्ष की अवस्था है। इस उम्र में युरूपियन बालिका, बालिका ही रहती है। फिर जिस ढङ्ग और जिस प्रेमाधिक्य से वेस्ट साहब ने इसे पाला है, वह इसे वाह्य संसार से अनभिज्ञ बना रखा है। क्या किसी भी भले और शिक्षित युवक को यह शोभा देता है कि उसके भोलेपन का अनुचित फायदा उठा कर उसके मन को अपने जाति-वालों से हटावे? तुम्ही सोचो, तुम में और मिस होप में क्या सम्बन्ध सम्भव है? कुछ दिनों के बाद जब वह होश सम्भालेगी तो उसका बिवाह अपने जातिवालों के साथ हो जायगा और वह यह सब भूल जायगी—भूल ही नहीं जायगी, तुम्हारे संसर्ग के दिनों पर वह लज्जित होगी। तुम्ही कहो, तुम्हें क्या फायदा होगा।"

वह जैसे २ बोलता गया, मेरे शरीर में आग लगती गई। मैंने किसी तरह सम्भल कर पूछा,

"तुम्हें यह सब कहने का क्या अधिकार है? तुम्हारी आत्मा सड़ी है इसीसे तुम एक शैशव की मैत्री में कुभावों को स्थान देते हो। क्या युरूपियन और हिन्दुस्थानी में मैत्री नहीं हो सकती?"

"नहीं—एक राजा है; दूसरा प्रजा।"

"कितनी ही रानियों ने अपनी प्रजाओं से विवाह तक किया है। जो हो, मैं तुम्हारी बात नहीं मानता। जो चाहो, करो।"

"उस दिन की जीत से तुम्हें घमण्ड हो गया हैं किन्तु सम्भल जाओ। मैं अभी तो जा रहा हूँ, किन्तु इसबार जो फिरूँगा, तो याद रखो, तुम्हें मौत के घाट उतार कर भी, मिस होप को तुम से

छुड़ाऊंगा । याद रखो, मिस होप, मेरी है, मेरी बाग्दत्ता है, और उसके लिये मैं प्राण की बाजी लगाऊंगा ।"

इतना कह कर वह फिर कर बङ्गले की ओर चला । जीतो चाहा की कूदकर उसकी गर्दन चीप दूँ किन्तु किसी तरह अपने को रोक कर, क्रोध शान्त करने के लिये, मैं घूमने लगा । कुछ ही दूर जाने पर वह कुञ्ज मिला जिसमें इन्दु लक्ष्मी बनी थी और जिसके सामने मेरा और लीओ का युद्ध हुआ था । मैं यह देख कर स्तम्भित हो गया कि कुञ्ज के बेंच पर उल्टा मुंह किये इन्दु पड़ी है । मैं सहसा निश्चय नहीं कर सका की क्या करूँ । कुछ देर खड़ा रह कर, मैंने धीरे से खांसने का स्वांग किया । इस पर उसने बिना करवट बदले रूखे स्वर में कहा ।

'क्या आफत ! क्या मैं आराम भी नहीं कर सकती ?'

मैंने दुःखित स्वर में कहा, "रानी लक्ष्मी ! क्षमा कीजिये । मैं नहीं जानता था—।"

बात काट कर वह तेजी से बोली, "आपको जानने की फुरसत कहां—जाइये, जहां रोज जाते हैं !"

मुझे तो काठ मार गया । मैं किसी २ तरह बोला, "रानी ! मैं शपथ खाता हूँ की मैं कहीं नहीं जाता ।"

"तो तुम इतने दिनों तक क्यों नहीं आये ?"

मैंने कहा, "रानी ! मेरी ओर देखो और तब तुम मेरी आंखों से ही मेरी सत्यता समझ जाओगी ।"

उसने कहा, "नहीं; मैं नहीं देखूंगी—उनमें जादू है, न क्या है । तुम बोलो, मैं सुनती हूँ ।" उसकी आवाज भर्राई सी मालूम हुई । मैं घुटनों के बल उसके पास होगया और बोला, "रानी ! यह तुम्हारा दासानुदास तुम्हारे चरणों में सर रखकर तुम्हें विश्वास

दिलाता है। क्षमा करो" और मैंने उसके लटकते हाथ को उठाकर नाइटों की तरह होंठ से लगाया। तब वह घूमकर बैठ गई। मैंने देखा उसकी आंखें आर्द्र हैं। मैंने कहा

"प्रिय इन्दु! यह क्या? यदि मैंने अज्ञातमें कोई कसूर किया है तो क्षमा करो। मैं इन आंखों में अश्रु नहीं देख सकता। मुझे पोंछने की आज्ञा दो।" यह कह कर मैंने अपने स्वच्छ सुगन्धित रूमाल को निकाल कर, उस के आँसुओं को धीरे २ पोंछ डाला तब उसने कहा, "तुमने मुझे बहुत रूलाया, पूषण! क्यों?"

मैंने कहा; "रानी! मुझे धिक्कार है किन्तु मैंने-मैंने सोचा-"

"क्या सोचा?"

"की शायद अधिक संसर्ग तुम्हारे माता पिता को पसन्द न आये!"

"यह कैसी बात कहते हो पूषण। मेरी माँ पूरी थियोसो फिस्ट हैं; सब भेद भाव भूल गई है। मेरे पिता भी सज्जन हैं, और मैं तो अपने को हिन्दुस्थानी ही समझती हूँ क्योंकि मेरा जन्म यहीं हुआ। इसलिये फिर ऐसा भूल न करना। आओ, यहाँ बैठो और याद करो की प्रतिदिन आवोगे और कभी २ गोपाल को भी लाना।"

इस तरह आज मेरा बन्धन और भी दृढ़ हो गया क्योंकि मैं वादा करने के सिवाय और क्या करता? किन्तु एक बात स्पष्ट हो गई। लीओ मैदान छोड़ कर भागा। मेरा हृदय इस बात को ग्रहण करता हुआ भी इसके आनन्द-सूचना को ग्रहण करने में असमर्थ-सा हो रहा है। उस अन्तिम मिलन का उन्माद, भर्त्सना और छिपा करूण रस, मुझे विकलकर डालते हैं। जब मैं इन्दु के समान रत्न की बात सोचता हूँ तो मेरे हर्ष के साथ २ लीओ की बेबसी समझ में आ जाती है और हृदय द्रवित हो जाता है। यह

संसार की कैसी गति है कि एक ही पुष्प के अनेक ग्राहक हो बैठते हैं और दुःखों का समुद्र लहरा उठता है। फिर भी यह हृदय अपने अन्तःस्थल में कह रहा है—मेरा विजय! इन्दु मेरी ही होगी।

ऐसा प्रतीत होता है की मेरा एक भाग कहता है "चन्द्रिका तुम सर्व्वनाश की राह पर जा रहे हो" तो दूसरा भाग क्रुद्ध होकर कहता कहता है "अरे, इस दुष्ट की बात न सुनो—जहाँ प्रेम है, वहाँ स्वर्ग है।" तो पहला भाग जोर दे-दे कर कहता है, "छिः! छिः! आर्य्यवंशी चन्द्रिका एक अनार्य्य ललना जो बालिका है उसके चरण पर गिरता है।" दूसरा भाग और भी क्रुद्ध होकर कहता है, "अरे मूर्ख! प्रेम के राज्य में भी कही जात-पात होता है? और उस विशुद्ध बालिका का यदि निन्दा करेगा, तो, हाँ!"

पाँचवा अध्याय

मेरी डायरी से

अक्टूबर ५,१६···। आज एक वर्ष बाद मुझे लीओ का विशेष परिचय प्राप्त हुआ है। लीओ के पिता और इन्दु के पिता एक स्कूल के पढ़े, लड़कपन के ही लंगोटिया मित्र थे। दोनों को ही आध्यात्मिक विषयों में रुचि थी और दोनों ही संस्कृत और पाली के पूर्ण पण्डित थे। किन्तु लीओ के पिता केवल पाँडित्य से ही सन्तुष्ट न रहे—वे प्रत्यक्ष रूप से बौद्ध धर्मावलम्बी हो गये। तब इन्हें योग की चाट लगी—ये तिबट के लामाओं की गुप्त मण्डली में सम्मिलित हो गये और बड़ी तत्परता से सिद्धियों को प्राप्त करने में लग गये। लीओ के पिता बड़े दृढ़ प्रतिज्ञ, और उदार-चित के मनुष्य थे। उनका हृदय बड़ा ही कोमल था, और उनमें युरोपियन स्वार्थपरता और उद्दण्डता की बू तक न थी। उनमें साधु हृदयों के वे गुण यथेष्ट थे जिनसे सिद्धियों की प्राप्ति होती है। इन्दु के पिता उदारता और हृदय के गुणों में कम न थे, किन्तु इनमें वैराग्य उत्पन्न न हुआ जो आत्माओं को मुक्ति-मार्ग पर अग्रसर कराता है। और युवावस्था ही में इनकी इन्दु की माता से यह गहरा प्रेम हो गया, जो इस जीवन को ही स्वर्ग बना देता है। उस समय लीओ के पिता वैराग्य में मस्त थे। इसलिये दोनों मित्रों का पथ अलग-अलग हो गया।

इधर इन्दु के पिता का विवाह हुआ, उधर लीओ के पिता बौद्ध साधुओं के साथ मध्य एशिया के जंगलों में और पहाड़ों पर घूमने में समय व्यतीत करने लगे। इसी तरह कुछ समय व्यतीत

हो गया । दोनों मित्रों में बराबर पत्र व्यवहार चलता था । इसी समय लीओ के पिता ने योग के प्राथमिक सिद्धियों को पाई, जिससे धीरे-धीरे उनके सहज स्वभाव में परिवर्त्तन होने लगा, जिसे वह स्वयं नहीं जान सके । जीवन के दो पहिये होते हैं—प्रकाश और अन्धकार, विवेक और अविवेक, आत्मा और अनात्मा ! इन्हीं के मिश्रण से यह संसार स्थित है और अपने अनन्त दृश्यों को प्रकट करता है । जिस समय की बात मैंने ऊपर लिखा है उस समय लीओ के पिता मध्य एशिया में भ्रमण करते अपनी प्राप्त की हुई सिद्धियों को पुष्ट करने में दत्त-चित थे । एक दिन कि बात हैं कि वे पामीर की उपत्यका पर एक पर्व्वत से उतर रहे थे कि अचानक उनका पैर ग.लते हुए बर्फ पर फिसला और वह ऐसा गिरे कि उनका पैर टूट गया और वे शिर के गहरे चोट से बेहोश हो गये । भाग्यवश एक यवन रमणी जिसके पिता की झोपड़ी पास में ही थी, उधर ही किसी अवश्यकता से आ निकली थी, और उसने इनको गिर कर बेहोश होते देखा । उसने अपने पिता को खबर देकर, इनकी सहायता की और जब वे उठाकर उसकी झोपड़ी में लाये गये तो उनकी सुश्रूषा करने में उसने कुछ भी उठा नहीं रखा ।

रमणी अत्यन्त सुन्दरी थी । लीओ के पिता जब अच्छे हुये तो उन्होने उसका फोटो लिया । इसका एक प्रति उन्होने अपने परम मित्र मिस्टर वेस्ट के पास भी भेजा । इन्दु ने उसे आज मुझे दिखाया है । सरलता और गाम्भीर्य्य दोनो ही उस फोटो से व्यक्त होते थे । सौन्दर्य्य तो अङ्गप्रत्यङ्ग से मानो टपका पड़ता था । किन्तु उसकी काली बड़ी आंखें किन गम्भीर आशयों को अपनी मोहिनी जादू के पीछे छिपाये हुई थीं ; किन अग्नियों को अपनी गहरी मनोरञ्जक शान्ति के उदर में रखे हुई थीं ; उस निर्जीव फोटो से व्यक्त नहीं होता था । उसके असाधारण होने में कोई सन्देह

नहीं था। उसे देखने से लीओ के पिता का पतन आश्चर्य्य की बात नहीं मालुम होती थी। बहुत दिन के सहवास का यह परिणाम हुआ की लीओ के पिता उसपर मोहित होकर विवेक खो बैठे। पहले उन्होंने उससे विवाह करना निश्चित किया किन्तु जब उन्होने इस प्रस्ताव को उस रमणी के सामने रखा तो उसने साफ कह दिया की उसका हृदय एक दूसरे सर्दार का हो चुका था और वह इनकी प्रार्थना स्वीकार करने में असमर्थ थी। लीओ के पिता का पतन इससे स्पष्ट है कि उन्होने इस पर ध्यान नहीं दिया और अनुनय विनय करते ही रहे। किन्तु जब उसने इनके व्यवहार से तङ्ग आकर घृणा प्रकट किया तब इन में क्रोध का भूत जाग उठा। उस क्रोध में उन्हे उस कामिनी पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हुआ। फिर क्या था—उन्होने ठान लिया कि इसे वश में करूँगा ही और उसे अपने सिद्धियो का शिकार बना लिया। इसके बाद उसके पिता को बहुत धन देकर, उससे विवाह कर लिया।

सिद्धियो के वशीभूत होने पर भी शायद उस रमणी के हृदय में एक घोर परिवर्त्तन हो गया क्योंकि उसके व्यवहार में जो परिवर्त्तन हुआ उसका कोई दूसरा कारण नहीं प्रतीत होता। विवाह के बाद वह अन्य-मनस्क, क्रोधी और निष्ठुर हो गई। जिस सुख की आशा लीओ के पिता ने किया था वह उनको न मिला। जब लीओ का गर्भ ७-८ महीने का हो गया, वह एक दिन कार्टर साहब से सब दिनो से अधिक तीव्रता से झगड़ कर बाहर भाग गई और एक चट्टान से नीचे कूद गई। इसका परिणाम यह हुआ की लीओ का असमय ही जन्म हो गया और वह प्रसव के बाद मर भी गई। कार्टर के हृदय से मोह का पर्दा हटा और उन्हें अपने पतन पर पश्चाताप होने लगा। लेकिन अब तो एक बच्चे

का बोझ सर पर चढ़ गया । इस परिस्थिति में उन्हें बेस्ट साहब की सहायता लेनी पड़ी और जब लीओ दो वर्ष का हुआ तो उन्होने बेस्ट साहब से उसकी देख-रेख, भरण-पोषण का भार उठाने की याचना की। रुपये की तो कमी न थी केवल बेस्ट साहब की स्वीकृति की आवश्यकता थी। अपने विषय में तो उन्होने लिखा कि अब सभ्य समाज में अपने काले मुख को नहीं दिखाऊँगा। बेस्ट साहब ने मैत्री को ध्यान में रखते हुए इस भार को स्वीकार कर लिया और लीओ के कानूनी "गार्जियन" बन गये।

× × × ×

मैं देख रहा हूँ कि आज सारी डायरी लीओ की कथा से ही भर ली गई। जिस ध्येय से मैं इसे लिखने लगा था, वह ध्येय तो मानो लुप्त हो गया है। इन्दु के प्रति अपने आकर्षण को रोकने के लिये ही तो लिखना प्रारम्भ किया था ? किन्तु अफसोस ! हो तो उल्टा ही रहा है। प्रतिदिन के मनसूबे दूसरे दिन खण्डित हो जाते हैं। न मेरे चरण वश में हैं क्योंकि नियत समय पर लाख प्रयत्न करने पर भी, ये इन्दु की ओर दोड़ ही जाते हैं; न मेरा हृदय, न मन मेरी एक सुनते, क्योंकि उसे देखने के लिये, उसकी वीणा-विनिन्दक स्वर सुनने के लिए, उसकी मधुर हँसी में बहने के लिये लालायित रहते हैं । तो क्या करूँ ? लिखना छोड़ दूँ ? यह भी तो असम्भव-सा प्रतीत होता है—उसकी बातो को लिखने में, दुहराने में बड़ा मजा आता है । अब आज ही की बातो को दुहराने में कैसा रोमाञ्च हो रहा है ?

उस फोटो को जब वह दिखा रही थी और इसलिये मेरे पास आ गई थी तो उसके निकट आने ही से मेरे शरीर में कैसा कम्पन होने लगा था ? और जब उस फोटो पर झुकने से उसका एक

लट मेरे ललाट में लग गया तो मेरी कैसी दशा हुई ? वह तो एक-दम स्वस्थ ही रही और पूछी—

"पूषण ! मैंने तो इससे अधिक सुन्दरी अपनी छोटी जिन्दगी में देखा ही नहीं; मैमी (Mammy) कहती है उसने भी नहीं देखा। क्या तुमने देखा है, पूषण ?"

मेरे सर्व्वाङ्ग मानो कह उठे, "जरूर देखा हैं—बहुत सुन्दर !"

वह चकित होकर मेरी ओर देखने लगी, किन्तु शायद उसने मेरी आँखों में कुछ ऐसी ज्योति देखा जिसे उसकी आँखें सह न सकी और फिर फोटो पर लग गई।

उसने धीरे से पूछा, "क्या मैं पूछू कि कहाँ देखा ?"

मैंने किसी तरह कहा "फिर बताऊँगा।"

उसने उसी तरह कहा "पूषण ! तुम चञ्चल क्यो हो रहे हो ?"

मानो मेरे ऊपर घड़ों पानी पड़ गया। मैंने सम्भल कर कहा "इस स्त्री के दुर्भाग्य पर हृदय ऐंठ रहा है।"

—०:०:०—

छठां अध्याय

मेरी डायरी से

१० अक्टूबर १६—। आज का दिन विचित्र रहा—वह साथ ही साथ दुःख और सुख, धूप और छाया्या लेता आया। जब मैं प्रति दिन की तरह इन्दु से मिलने गया तो उसे अत्यन्त प्रसन्न अपनी प्रिय फुलों की क्यारियों में घूमते देखा। उसने अपने केशों को फूलों से अलंकृत किया था और छाती पर एक सुन्दर गुलाब लगा हुआ था। मुझे देखते ही वह मेरी ओर लपकी और बोली।

"पूषण! मुझे बधाई दो। मैं जूनियर परीक्षा औवल दर्जे में पास हो गई।"

मुझे इस खुशखबरी हार्दिक आनन्द हुआ और मैंने यथोचित शब्दों में अभिनन्दन करते हुये अपने हर्ष को प्रकट किया। इसपर उसने अपने दोनो हाथ मुझे देदिये और उन्हें मैंने सरगर्मी से स्पर्श किया! उसने अपनी विशाल आंखों को विस्फारित करके मुझे देखती हुई कहा,

"पूषण! मुझे बहुत खुशी हुई है। कहो तुम्हें क्या दूँ?"

मैंने मजाक के ढङ्ग पर कहा, "रानी लक्ष्मी! मैंतो दासानुदास हूँ। मुझे मांगने का तो अभी अधिकार नहीं। जब तुम्हारी सेवा में प्राण की बाजी लगा दूंगा तो मांगूँगा।"

उसकी मधुर हँसी गूँज उठी। वह बोली, "अच्छा, सर नाइट (Sir Knight) तब तक मैं इस फोटो को याददाश्त की तरह देती हूँ। इसे यत्न से रखियेगा।"

इतना कहकर उसने अपनी छाती की जेब से फोटो को निकाला और मेरे हाथ में रख दिया। मैं कृतार्थ हुआ। मैंने कहा, "देवी! आपकी बड़ी कृपा है।"

इन्दु ने कहा, "पूषण! एक बात और है। मैं रविवार को मसूरी स्कूल में नाम लिखाने जा रही हूँ। सीनियर केम्ब्रिज के लिये तैयारी करूंगी।"

यह सुन कर मेरे देवता कूच कर गये और मेरा हृदय वियोग की आग में जलने लगा। मेरे विषण्ण मुख को देख कर इन्दु बोली

"पूषण! यह क्या! क्या मेरे जाने से तुम्हें इतना दुःख होगा?"

मैंने कहा, "मैं क्या करूँ इन्दु! मालुम होता है पृथ्वी को अन्धकार ने घेर लिया।"

इन्दु ने कहा, "नहीं, नहीं, पूषण! यह तो ठीक नहीं है। तुम्हे भी बी० ए० की तैयारी करनी है। परिश्रम अधिक करना है और मैं देखती हूँ की हमारा अधिक समय इधर उधर की बातों में ही व्यतीत होता है। तो कुछ दिन अलग होना पीछे के लिये अच्छा ही है।"

मैंने कहा, "इन्दु! क्या तुम नहीं जानती कि तुमसे मिलना मेरे जीवन का अङ्ग ही बन गया है?"

उसने कहा, "तुम्हारे ही जीवन का नहीं, मेरे भी जीवन का। किन्तु कर्त्तव्य भी तो देखना है।"

मैंने कहा, "इन्दु! इसी छोटी उम्र में तुम्हे इतनी बुद्धि कहां से आ गई?"

इसपर वह जोरों से हँस पड़ी। मैंने फिर कहा

"इन्दु ! तुम हँसती हो, किन्तु तुम तो वहां जाकर मुझे भूल ही जाओगी, और मैं यहां तड़पता सड़ता रहूँगा ।"

इन्दु ने कहा, "पूषण ! तुमने फिर वही बात निकाली । मैं कितनी बार कहूँ कि मैं किसी को नहीं भूलती," और उसने मेरे हाथ को पकड़ कर दबाया, "नहीं भूलती ।"

लज्जित होकर क्षमा की प्रार्थना करता हुआ, मैंने कहा "वादा करो कि पत्र लिखोगी ।" उसने दृढता से प्रतिज्ञा किया । इसके अनन्तर इधर उधर की बातें होने लगीं । मालुम हुआ कि इन डेढ़ दो वर्षों में लीओ सीनियर केम्ब्रिज परीक्षा पास हो आज कल काश्मीर भ्रमण करने गया है । जब से मुझ से हार कर गया यहां आने का नाम नहीं लेता । इन्दु आज इधर उधर की अनेक बातें करती रही और मैं "हां" "हूँ" करता रहा क्योंकि मेरा हृदय तो आगामी वियोग से मर गया है, मैं बातें क्या करता । केवल बैठा उसे आंखों, कानों से पीता रहा । शायद वह मेरी अवस्था को समझ गयी थी और इसीसे इतनी चतुराई से बातों सिलसिला को जारी रखती गई, और मेरे हृदय के बोझ को हल्का करने का प्रयत्न करती रही । इस समय जब मैं उन बातों को लिखना चाहता हूँ तो देखता हूँ कि एक भी याद नहीं है । क्योंकि उस समय तो मेरे मानस पट पर इन दो वर्षों के व्यतीत मिलनों, वियोगों, पुनर्मिलनों के चित्र उठते रहे । उस प्रथम दिन का दैविक मिलन, लीओ से युद्ध, इन्दु की रानी लक्ष्मी वाली मूर्ति, उसके अनेक रूठने, मेरे अनुनय विनय पर, आंसुओं से भरे नयनों में मन्द-मुस्कान की चमक । अकस्मात मेरी बुद्धि पर यह बात झलकी कि अब यह इन्दु उस मन्दिर वाली इन्दु न रही । अरे ! मैं अन्धों की तरह आज तक यह नहीं देख पाया कि यह कितनी बढ़ गई । बालयावस्था कब हंस कर कूच कर गया, मुझे मालूम भी

नहीं हुआ। अङ्ग प्रत्यङ्ग पर, वसन्त की प्रथम सूचना की तरह यौवन झलक मारने लगा है। नैसर्गिक बड़ी आंखें और बड़ी प्रतीत हो रहीं हैं। जो निर्भय, असम्भ्रान्त रूप से मेरी आंखों में आ लगती थीं, अब मेरी आंखों से मिलती नहीं। जब कभी मिल जाती हैं, तो फौरन हटा ली जातीं और तब, आश्चर्य्य! उन सुन्दर गालों और गर्दन पर ऐसी लाली दौड़ जाती कि उनका उपमा देना कठिन हो जाता—यदि मैं गुलाब की उपमा दूँ, तो उसमें कांटे होते हैं, यदि सेब की उपमा दूँ, तो वह खाने की चीज है। मुझे एक-ब-एक यह भी विदित हुआ कि बहुत दिनों से न तो मैंने रुठना देखा, न रुलाई देखी, नवे शैशवोचित प्रवाहिक वार्तालाप, नवे प्राथमिक हार्दिक उन्मीलन ही दृष्ट हुये।

इन्दु ने मेरी यह [illegible] देख कर कहा, "पूषण! क्या सोचते हो? तुम मेरी बात सुनते ही नहीं। क्या यही शिष्टता है?"

मैंने कहा, "इन्दु! क्षमा करो! मैं प्रयत्न करने पर भी उस दिन का ख्याल नहीं हटा सकता जब तुम इस मेरे संसार को अन्धकारमय बना कर चली जाओगी।"

उसने अपने ज्योतिर्मय नयनों को क्षणभर मेरे नयनों से लगाया और धीरे २ कहा, "तुम उस दिन का ख्याल करो जब मैं फिर आ मिलूंगी।" इतना कहते २ उसके गालों और गर्दन पर वही लाली दौड़ गई।

सातवां परिच्छेद

गोपाल की आत्मकथा

मैं न कवि हूँ न लेखक, किन्तु आज बैठा हूँ एक उपन्यास लिखने। क्यों ? क्योंकि यही मेरी इन्दु रानी की आज्ञा है। और यह सभी जानते हैं, बच्चों से सयानों तक, नौकर दाइयों से जेन्टल-मैनों तक, की जब रानी की आज्ञा हो जाती है, तो उसे कोई उठा नहीं सकता। तो जब उन्होने—अपनी अद्वियीय ढंग से कहा, कि भइया, तुम्हे तो इस उपन्यास में कुछ लिखना ही होगा, तो मेरा यह कहना, न कहना, कि मैं न कवि हूँ, न लेखक, निरर्थक ही था। फिर भी मैंने छुटकारा के लिये खूब जोर लगाया, किन्तु इसका कोई फल न हुआ। अस्तु, मैं यहां बैठ कर अपने मस्तिष्क पर कुल्हाड़ें लगा २ कर उसे जगा रहा हूँ।

खैर, तो अब श्री गणेश होता है। लेकिन साफ बात तो यह है कि मुझे मालूम नहीं होता कि कहां से शुरू करूँ। मुझे तो चन्द्रिका—या पूषण ?—की तरह अपनी पिता की मृत्यु का वर्णन हृदय को दुखाने वाले शब्दों में लिखना नहीं है क्योंकि मेरे पिता तो एक छोटे से जिमिन्दार, और अच्छे काश्तकार थे जिनकी मृत्यु रामनाम कहते, भूमि-सय्या पर ही हुई। मैं तो उनका एकलौता पुत्र भी नहीं था जिसका फल यह हुआ कि मेरे बड़े भाई ने गृहस्थी को सम्भाल लिया और मुझे अपने जीवन में कुछ बड़ा अन्तर नहीं प्रतीत हुआ। अन्त में मैं पढ़ता लिखता बनारस पहुँच गया और मुझे चन्द्रिका से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जी चाहता है कि जिस दिन हम दोनों का प्रथम मिलन

हुआ उसका लम्बा चौड़ा वर्णन करूँ किन्तु भय तो यह है कि मैं तो जो कुछ लिखना चाहता हूँ वह लिख न सकूँगा जिससे वह तारीफों का पुल जिसे चन्द्रिका ने बान्ध रखा है, हिलने लगेगी। बात तो यह है कि मैं उन तारीफों के योग्य नहीं हूँ और चन्द्रिका ने अपने ही गुणों को मुझ में स्थापित कर दिया है। प्रथम मिलन के दिन ही मुझे प्रतीत हो गया कि वह सहचर जिसकी खोज मेरा हृदय किया करता था, आज मिल गया। हमारी मित्रता दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी और ऐसा हो गया कि हम दोनों का अधिक समय एक दूसरे के ही साथ में बीतता था। हमारे बोर्डिङ्ग के और साथी हमारी नकल भी करने लगे, ठट्ठे भी मचाते। कोई "सखुनतकिया" कोई "युगल जोड़ी" कहता। किन्तु जब हमने इन बातों पर कुछ ध्यान न दिया, और परीक्षाओं में फस्ट, सेकण्ड होने लगे, तो ये बातें आप से आप समाप्त हो गईं।

मनुष्य का स्वभाव है कि अपनी प्रेम-कहानी अपने प्रिय से प्रिय मित्र से भी छिपा कर तब तक रखता है जब तक यातो सफल नहीं हो जाता, या उसके हृदय का स्वप्न टूट नहीं जाता। किन्तु चन्द्रिका के भोलेपन, और अलौकिक हृदय की पवित्रता का इसी-से परिचय मिलता है कि उसने प्रथम दिन से ही मुझे अपने सुख दुःख में शामिल कर लिया। मैंने पहले तो इसका यथेष्ट विरोध किया क्योंकि कोई भले घर का हिन्दु किसी क्रिस्तान युवती के प्रीति-पाश में नहीं बन्धता। किन्तु जब मैंने अपनी भाभी को पहलेपहल देखा, तो मैं भी चकित एवं मुग्ध हो गया। मैंने समझ लिया कि जब इस शैशव अवस्था में उनका इतना आकर्षण है, तो युवती होने पर तो इन्हे देखकर कोई हृदय बचा नहीं रह सकता चन्द्रिका के लिये मैं विकल होने लगा क्योंकि मैं देखने लगा कि वह दिनों दिन प्रेम-पाश से जकड़ता जा रहा है। वह मेरी

बातों को सुन लेता था, किन्तु कोई उत्तर नहीं देता। एक दिन जब हमलोग इन्टरमीडियेट पास कर चुके थे, मैंने उसे अत्यन्त व्यग्र पाया। मैंने कहा,

"चन्द्रिका! मेरी एक बात मानलो। बुरा मत मानना, क्योंकि यह मेरा प्रेम कह रहा है। मेरी राय होती है कि अब तुम्हें एक सुन्दरी स्वजातीय कन्या से विवाह कर लेना चाहिये। अगर बुरा न मानो तो मैं तुम्हारी माता के पास लिखूँ।

उसने मेरे गले में हाथ लगाकर, कहा, "गोपाल! मेरी सभी बातों को जानकर भी, कैसे ऐसी बात कहते हो? वह समय अब बीत गया, जब ऐसी दवा काम कर सकती थी। अब तो मेरे लिये इन्दु छोड़कर कोई है ही नहीं।"

इतना कहते २ उसकी आवाज भर्रा गई। मैं चकित होकर उसकी ओर देखने लगा और माफी मांगते हुये कहा,

"भइया, यह क्या? क्या तुम दोनों में कुछ भेद पड़ा है?"

"मैं क्या जानू, गोपाल! जब से वह मसूरी गई, पत्र नहीं लिखी।"

मैंने कहा, "कितने दिन हुये? अभी तो—"

उसने कहा, "पन्द्रह लम्बे दिन हो गये, गोपाल!"

मैंने कहा, "भाई! इसका भी तो ख्याल करो कि नई जगह में गई हैं वहां सुस्थिर होने में तो समय लगेगा। पत्र तो आता ही होगा।"

इसी समय डाकिया कमरों के नम्बरों को देखता, और पत्रों को देखता, हमलोगों के पास आया और एक पत्र निकाल कर पता पढ़कर पूछा, "मिस्टर चन्द्रिका सिंह कौन हैं।" चन्द्रिका ने तेजी से हाथ बढ़ाकर पत्र को लेलिया और वह पता पढ़ने लगा। मैंने

भी उन सुन्दर, सुडौल अक्षरों को देखा। चन्द्रिका के हाथ कांप रहे थे, और उसके मुख का रंग, हर्ष की उग्रता से, विचित्र हो गया था। वह तेजी से अपने कमरे में चला गया।

मैं बरामदे में घूमने लगा। आज मुझे स्पष्ट हो गया कि अब चन्द्रिका इस प्रेम पाश से आजीवन नहीं छूट सकता और मेरा कर्त्तव्य यही था कि उसकी मनोरथ सिद्धि में सहायता दूं। योंही सोचता मैं बरामदे में कुछ देर घूमता रहा। कुछ देर बाद चन्द्रिका ने अपने कमरे से मुझे पुकारा और मैं गया।

उसने गद्गद कण्ठ से कहा, "गोपाल! एक पत्र तुम्हारे लिये भी है।" उसने एक पत्र मेरी ओर बढ़ा दिया। वह पत्र कैसी सुन्दरता से मोड़ा हुआ था! और कैसी सुन्दर हिन्दी के अक्षरों में मेरा नाम लिखा हुआ था! मैंने उसे खोलकर पढ़ा। लिखा था—

"प्रिय भाई गोपाल—नमस्ते। मैं यहां नाम लिखा चुकी और बोर्डिंग हौस में आराम से हूँ। यहां मुझे दो चार बहुत अच्छी सखियां मिल गई है—उसमें दो तो बड़ी ही सुन्दरी हैं। और जैसी सुदन्री हैं वैसी ही गुणवाली भी हैं। उस में दो हिन्दू रइसों की लड़कियां हैं, एक युरुपियन है और एक पारसी है। ऐसे तो यहां बहुतायता युरोपियनों की ही है किन्तु मेरी तो इन्ही चारों से पटती है।.....यहां सैर के अनेक सुन्दर स्थान हैं.....कभी २ जी, चाहता है कि माता-पिता और तुम लोग यहां आ जाते तो कैसा आनन्द होता!.....पत्र का उत्तर अवश्य देना।"

मैं पत्र पढ़कर, चन्द्रिका की ओर देखा। देखा, वह मेरी ओर टकटकी बान्धे देख रहा है। मैंने समझ लिया कि उसे कुतूहल हो रहा है कि मिस होप ने मेरे पास क्या लिखा है। मैंने

सोचा की जिस अवस्था में यह जा पड़ा है उसमें इसका संसार भर पर सन्देह करना अनिवार्य्य होगा इसलिये मुझे सतर्क रहना आवश्यक है। इसलिये मैंने उस पत्र को उसकी ओर बढ़ाते हुये कहा,

"भाई चन्द्रिका! जोकुछ हो, इन्दु रानी की बराबरी की लड़की होना असम्भव है। हिन्दी तो उसके लिये कठिन भाषा है, किन्तु देखो तो कैसे सुन्दर अक्षर हैं, कैसी शैली है—"

"क्यों न कहोगे, भाई जो बन गये! मैं तो केवल मिस्टर 'सिंह' या पूषण हूँ। और वह भी अंग्रेजी में!"

"भाई! तुम तो बड़े सिडी निकले! क्या तुम भी भाई कहलाना चाहते हो?"

"नहीं तो। तो क्या इसीसे मेरा पत्र निरस है?"

"तो क्या तुम्हें यहीं पसन्द है कि वह लिखे कि तुम मेरे प्रीतम हो, प्यारे हो—भला बताओ तो, कभी उससे विवाह की बात चलाई है?"

"क्या खब्त हो, गोपाल! किसी बच्ची से भी ऐसी बातें की जाती हैं? और अब जो समय आ रहा था, तो वह चली ही गई।"

"फिर आजायगी। कहकर देखना।"

उस दिन तो इतनी ही बातें होकर रह गईं। आगे चलकर उसकी विचित्र हालत रही। कभी पत्र में देर होती, तो उसकी परीशानी का हद न रहता; कभी मनके अनुकूल पत्र आ जाता, तो ऐसा प्रतीत होता की उसका पैर ही जमीन पर नहीं पड़ता; और जब कभी किसी पत्र में विशेषता नहीं रहती, तो मुंह बनाये फिरता। मेरे पास भी जब कभी पत्र आ जाते, किन्तु अब अलग लिफाफे में आते। मैं चन्द्रिका को छेड़-छाड़ नहीं करता लेकिन अपने पत्रों

को उसे अवश्य किसी न किसी बहाने दिखा देता। क्योंकि मैंने यही नियम कर लिया था।

ऊपरोक्त रीति से एक वर्ष व्यतीत हो गया। एक दिन मैं अपने कमरे में बैठा पढ़ रहा था की चन्द्रिका तेजी से आया और हर्ष से गद्गद स्वर में बोला—

"गोपाल! इन्दु कल्ह आ रही है। उसका कौलेज कई दिनों के लिये बन्द हो गया है।"

"मैंने मजाक से कहा, "भाई, मिठाई खिलाओ।"

उसने कहा, "अजी तुम्हे मजाक सूझता है, और मेरे तो पैरों में थरथरी हो रही है। मैं उससे कैसे मिलूंगा, वह मुझ से कैसे मिलेगी, वह कैसी हो गई होगी —"

मैं: "अरे भाई! तो क्या चाहते हो, न आवे? कहो तो तार—"

चन्द्रिका झुंझला कर यह कहता की तुम बेहोश हो, होश सम्भालोगे तो बातें करूँगा, अपने कमरे को वापस चला गया। मैं समझ गया की अब इसका प्रेम परिपक्व, पूर्ण युवा का हो गया; अब शैशव के भाव जाते रहे। अब प्रेम में आवेश होगा, वासना होगी जिनके कारण अब इनका मिलन पहले के समान शान्त और मृदुल नहीं हो सकता—अब अग्नि की ज्वालायें उठेंगीं, बिजुली चमकेगी, मान होगा, वियोग होगा—यानी बहुत नाजुक समय आगया। मेरा मन कह उठा, भगवान इनकी सहायता करें। खैर, कुछ देर बाद मैं स्वयं उसकी कोठरी में गया और कहा,

"भइया! मुझसे न रुठो। रुठनेवाली तो आ रही है—तुम्हे रुठना सिखा देगी।"

चन्द्रिका ने खेल की एक चपत मुझे रसीद की ओर गले में हाथ लगाकर चारपाई पर बैठाला और आप भी बैठा ।

उसने कहा, "भाई गोपाल ! मेरी इच्छा होती है कि हमलोग चलकर इन्दु को गाड़ी से उतारें ।"

मैंने कहा, "हमलोग ? मेरी क्या आवश्यकता है ?"

उसने कहा, "डरते हो क्या ? डरने की क्या बात है ? मिस्टर और मिसेज वेस्ट तो रहें हींगे ।"

मैंने कहा, "भाई, तुम्हारे प्रथम मिलन के समय मेरा रहना तो आवश्यक नहीं--मुझे छोड़ दो ।"

उसने कहा, "ऐसे नहीं मानते, तो सुनो । इन्दु की आज्ञा है तुम निश्चय स्टेशन पर मिलो ।"

मैं अत्यन्त चकित हुआ । इन्दु मुझे क्यों स्टेशन पर बुलाती है ? क्या चन्द्रिका से अकेले मिलना पसन्द नहीं करती ? फिर मैंने सोचा कि स्त्रियों की बात कौन जाने, वह भी एक युरोपियन !

मैंने कहा, "तबतो भाई, मैं बेबस हूँ—चलना ही होगा ।"

दूसरे दिन हमलोगों ने अपने बढिया से बढिया सूटों को पहना और यथा समय स्टेशन पहुँचे । चन्द्रिका की तो मानो जिह्वा ही बन्द हो गई थी । वह एक बात भी नहीं बोलता; इससे मुझे ही लगातार इधर उधर की बातें करनी पड़ीं । स्टेशन पर मिस्टर और मिस्ट्रेस वेस्ट मौजूद थे । हमलोगों को देख वे लोग कुछ चकित से हुये किन्तु सभ्य प्रथा के अनुकूल वे कुछ बोले नहीं, हमलोगों का स्वागत ही किया । इतने में गाड़ी आ गई और वे गाड़ी के अन्त भाग की ओर, जहां स्कूल की रिजर्व गाड़ी थी लपके । हम दोनों भी उनके पीछे चले । वहां दो लड़कियां, एक सुन्दर सालवार में और एक बढिया गौन में कुलियों से चीजें उतरवा रही थीं । गौनवाली को पीछे से देखने से सन्देह सा होता था कि यह इन्दु

हो ता न हो। किन्तु वेस्ट साहब तो सीधे उसके पास जाकर बोले,

"हलो, होप, प्रिय।"

वह तेजी से फिरी और "डैड्डी! डैड्डी!" कहती उनकी छाती से चिपक कर चुम्बित हुई; योंही अपनी मां से मिली। मैंने देख लिया की जो इन्दु यहां से एक वर्ष पहले गई थी वह तो यह इन्दु नहीं है। वह तो कली थी, यह विकसित गुलाब है, वह तो अर्द्ध चन्द्र थी, यह पूर्ण कला का चन्द्र है। मैंने कनखियों से पास में खड़े चन्द्रिका को देखा। वह तो तनमन को भूले उसीको पी रहा था। मैंने इसे अशिष्टता समझ कर उसके पैर को अपने पैर से दबाया। तब तक इन्दु की आँखें हमलोगों पर पड़ीं, और मैंने देखा कि उसकी और चन्द्रिका की चार आँखें होते ही, उसकी आँखे भागकर मेरी ओर आ गईं और उसके गालों और गर्दन पर लालिमा का दौड़ना साफ नजर आया। यह सब छिपाने केलिये वह हाथ बढ़ाकर मेरी ओर बढ़ी और कहा,

"ओ गोपाल, हौ काइन्ड ऑफ यू (गोपाल, तुम्हारी बड़ी कृपा है)" यह कह उसने मुझ से हाथ मिलाया; और तब वह विचित्र भावभङ्गी के साथ, जिसका मैं यथार्थ वर्णन नहीं कर सकता,—शायद उसमें लज्जा, हृदय का धड़कन, अवयवों की जड़ता, साथ थे—वह चन्द्रिका की ओर फिरी और हाथ बढ़ाया किन्तु आंखें जमीन पर ही रहीं। उसके स्वर धीमे पड़ गये।

"पूषण!" कहकर अपने हाथ को उसके हाथ में दे दिया। तब मेरी ओर फिर कर उसने हंसकर कहा, "गोपाल! कृपाकर चीजों को देखो—और आओ अपने मित्र से जान पहिचान करा दूँ।"

मैं उसके पीछे हो गया किन्तु चन्द्रिका मिस्टर वेस्ट के पास रह गया। वह दूसरी लड़की अभी कुलियों के साथ बझी थी। इन्दु ने बड़े मधुर स्वर में कहा

"प्रिय उषा! इधर देखो। यह मेरे मित्र गोपाल हैं। वह लड़की फिरी तो मैंने देखा की वह तेरह चौदह से अधिक की नहीं थी किन्तु सौन्दर्य्य अङ्ग-प्रत्यङ्ग से टपका पड़ता था। वह पंजाब की रहनेवाली मालूम होती थी और उसके गाल पर भी लाली दौड़ रही थी। उसकी लांबी और हरिणों की सी बड़ी आंखों में ऐसी मधुरता, पवित्रता और सरलता के भाव झलकते थे कि मुझे प्रतीत हुआ कि मैं उसके हृदय को ही देख रहा हूँ। उसके पतले लाल होंठ, मानो चुम्बन के लिये ही बने थे। इन्दु की ओर जो वह फिरी तो उसके मन्द मुसकान से दोनों सुन्दर गालोंमें दो मनो ग्राही विवर्त पैदा हो गये, जिससे उसकी सुन्दर आकृति में मादकता आ गई। वह कुछ लजाती, सकुचाती, मेरी ओर हाथ को बढ़ाई और बोली, हॉउ डू यू डू (आप कैसे हैं)"

मैंने भी अंग्रेजी रीति से इसका प्रत्युत्तर दिया। इसके बाद मैं चीजों में लग गया और उस समय बात करने का अवसर नहीं मिला। इन्दु और उषा लगीं अपनी चीजों को बताने और अन्दर जाकर मैं उतरवाने लगा। जब हमलोग बाहर आने लगे, तो मेरे और चन्द्रिका में तै हो गया कि हमलोग इन्हे सवारी पर बैठाकर, होस्टल चले जांयगे। इसलिये जब मिसेज वेस्ट ने हमलोगों को साथ चलने का निमन्त्रण दिया, तो मैंने कह दिया कि हमलोगों को एक आवश्यकीय काम से दूसरे जगह जाना है। मिसेज वेस्ट ने कहा, "अच्छा, कल्ह शाम को आठ बजे खाना पर आना, जरूर।"

इतना कहकर उन्होंने अपनी सवारी हंकवाई। तब मैंने देखा

कि चन्द्रिका बेसुध की तरह उधरही टकटकी बांधे खड़ा है। मैंने हाथ पकड़कर खींचा और कहा, "चलो २ क्यों बेसुध की तरह खड़े हो।"

उषा की क्षणिक झलक मुझ पर कोई अधिक प्रभाव नहीं डाल सका। न तो मैं चन्द्रिका हूँ, न उषा, इन्दु इससे मुझे इस विषय पर कोई बड़ा बयान लिखना नहीं है, हां कभी २ उस रात को उसके भोले भाले मुख का चित्र मेरे सामने आ खड़ा होता था। चन्द्रिका की हालत उस दिन विचित्र थी, कभी २ अत्यन्त चञ्चल, कभी २ एकदम उदास और सुस्त; कभी २ आशा और आनन्द से भरा।

दूसरे दिन २ बजे के लगभग वह एक पत्र हाथ में लिये, बड़े आवेश में, मेरे कमरे में आकर बोला,

"गोपाल! देखो तो, यह दैव की कैसी करतूत है? आज दुष्ट लीओ, न जाने कहां से आ पड़ा और इन्दु और उषा को लेकर गङ्गा का बाढ़ देखने निकला है। इन्दु लिखती है कि यह बात अचानक तै होने से वह मुझे पहले खबर न दे सकी लेकिन अगर मेरी इच्छा हो तो मैं दशाश्वमेध घाट पर मिल सकता हूँ। और— आपके लिये विशेष आज्ञा है कि आप निश्चय आवें।"

"तो क्या राय है?"

"राय क्या? चलना ही होगा। नजाने वह दुष्ट क्या करेगा। कहीं वह नाव पर चला, तो बड़े भय की बात होगी। इसलिये शीघ्र तैयार हो जाओ।"

इतना कहकर वह चला गया, और मैं तैयार होने लगा। मैंने सब बातों पर विचार करके अपना तैरनेवाला पोशाक भी ले लिया। इतने में चन्द्रिका आ गया। मैंने देखा, उसने भी तैरने

का पोशाक ले लिया है। बस हमलोग निकल पड़े। जब दशाश्वमेध घाट पहुँचे तो मिस होप को कहीं नहीं पाया। नदी की ओर देखने पर एक नाव को कुछ दूर पर जाते देखा। चन्द्रिका ने अपने दूरबीन से देख कर कहा,

"गोपाल! देखते हो इस दुष्ट लीओ की मूर्खता? वह एक छोकरे मल्लाह को लेकर निकला है, और स्वयं खे रहा है। हमें शीघ्रही अच्छी नाव को लेकर पीछा करना चाहिये।"

इतना कहकर उसने अपने दूरबीन को मुझे थम्हा दिया और एक नाव ठीक करने लगा। मैंने दूरबीन से देखा कि अब लीओ की नाव पूरे बहाव में पड़ गई है, और तरङ्गों के थपेड़ से डगमग कर रही है। इतने में चन्द्रिका ने पुकारा और मैं उसके साथ एक नाव पर चढ़ा जिसमें चन्द्रिका ने चार हृष्टपुष्ट मल्लाहों को नियत किया था। नाव शीघ्र छूटी और सीधे न चलकर एकदम बहाव पर चली। मैंने पूछा, यह क्या? चन्द्रिका ने कहा, "उस दुष्ट को या तो खेना आता नहीं, या वह जान कर उन लड़कियों को डरा रहा है।" मैंने इसी समय देखा कि एक बड़ी नाव जो मोसाफिरों से भरी थी और उस पार से इस पार आ रही थी, बहाव में पड़कर तेजी से बहने लगी। यह साफ था कि यदि लीओ अपने नाव को सम्भाल न सकेगा तो दोनों नाव टकरा जायेंगी। यह कहकर मैंने दूरबीन चन्द्रिका को दे दिया। उसने भी देखकर कहा,

"हां, हां। भैया, तैरनेवाला पोशाक पहनलो, मैं भी पहनता हूँ। मल्लाहो, तेजी से उस नाव के पास ले चलो।"

इतना कहना था की मल्लाहों ने कमाल किया; देखते २ हमारी नाव लीओ के आगे हो गई। इतने में उस दूसरी बड़ी नाव वाले मांझी ने पुकारा, "साहब! नाव बचाइये, धक्का न लगे।"

लीओ ने अपने बच्चे मल्लाह से कुछ कहा, किन्तु वह कुछ कर न सका—वह बड़ा नाव पूरे झोंक के साथ लीओ के नाव से टकराई। उसके पहले ही दोनों औरतें चीखीं थीं; अब वे नाव के उलटने के पहले ही गङ्गा में कूदकर तेजी से बहने लगीं। मल्लाह का लड़का भी कूदकर बहने लगा और वह नाव भी उलट गई। बड़े नाव के सब मुसाफिरों ने कुहराम मचाया, किन्तु एक भी उन लड़कियों को बचाने के लिये जल में नहीं कूदा। कहना नहीं है, की ज्यों ही मिस होप और उषा कूदीं, हम दोनों (चन्द्रिका और मैं) भी कूदे। मैं यह नहीं देख सका कि लीओ कूदा, कि नाव के नीचे पड़ गया।

चन्द्रिका बड़ा तेज तैरनेवाला है, और मैं भी अच्छा ही गिना जाता हूँ। गर्म्मियों में तो हम दोनों कई बार गङ्गा पार कर जाते थे। किन्तु इस बाढ़ में का तैरना कुछ दूसरी ही बात थी। मैंने देखा कि मिस होप आगे और उषा रानी पीछे पीछे तेजी से बही चली जाती हैं। चन्द्रिका स्वर उठाकर चिल्लाया, "गोपाल, तुम उषा को सम्हालो" और वह उषा को पार कर तेजी से आगे बढ गया। यह स्पष्ट था की उषा रानी वैसी तैरनेवाली नहीं थीं, जैसी इन्दु; क्योंकि मेरे पहुँचते २ उन्होंने एक गोता खाया, तबतक मैंने उनके सर के बालों को पकड़ लिया। तब उन्हें समझा कर कि वह मेरी पीठ पर अपने एक हाथ को रखकर केवल उतराती रहें, मैंने एक दृष्टि चन्द्रिका की ओर दौड़ाई। देखा वह मिस होप के पास पहुँच गया है और उनके हाथ को अपने पीठ पर रखवा घाट की ओर जाने का पूरा प्रयत्न कर रहा है। मैंने भी उसीका अनुसरण किया किन्तु मुझे मालूम हो गया कि यह परिश्रम वृथा होगा। आशा यही थी की हमलोगों की नाव, या घाट से दौड़ाई हुई दूसरी नावें हमलोगों को निकाल लें। इतने में कुछ मनुष्यों का चिल्लाया

हुआ, "आ गये, साहब, आ गये साहब" सुनाई पड़ा। इससे मेरे शरीर में नवीन बल पैदा हो गया और यह साहस हुआ कि मैं उषा रानी की बढ़ती हुई थकावट पर विचार करके उनके सर और कन्धे को अपनी पीठ पर रखवा लिया। इतने में हमलोगों की नाव मेरे पास आ गई और मल्लाहों ने रस्सा फेंका। मैंने उसे पकड़ा और नाव के पास जाकर मल्लाह से उषा रानी को निकाल ने को कहा। एक ने झुक कर उन्हे उठा लिया और तब मैंने देखा कि चन्द्रिका के पास भी एक नाव पहुँच गई है और वे भी निकाले जा रहे हैं।

जब मैं नाव में पहुँचा तो देखा कि उषा रानी पड़ गई हैं। मैं तो जानता था कि उन्हो ने कुछ पानी पी लिया है, इससे उनको वमन कराना आवश्यक था; किन्तु यह करने के पहले मैं एक दृष्टि चन्द्रिका की ओर डाली—देखा, वह एक हाथ से रस्सा पकड़े, दूसरे हाथ से मिस होप को थाम्मे, ऊपर उठने का प्रयत्न कर रहा है। मुझे भय होने लगा कि शायद मिस होप बेहोश हो गई हैं इससे मैं ने अपने नाव को वहां तेजी से पहुँचाने की आज्ञा दी। लेकिन तारीफ उसके बल और दृढ़ संकल्प की, कि वह एक हाथ के सहारे इतना उठा कि लोगों ने हाथ बढ़ा कर उसे सहारा दिया। कुछ हाथें मिस होप की ओर बढ़े, किन्तु फिर हटा लिये गये, जिससे मालूम हुआ कि चन्द्रिका इस पर राजी न हुआ। इसी समय मेरी नाव भी वहां पहुँच गई और मैंने भी सहायता दी, और मिस होप को लिये चन्द्रिका ऊपर आ गया। फिर मेरे नाव को देखकर, वह इसी पर चला आया, और अत्यन्त कोमलता से और धीरे से, मिस होप को उषा के बगल में लिटा दिया। तब वह उस दूसरे नाव के मल्लाहों को शुक्रिया देता हुआ, मुझ से कहा

"गोपाल, मेरे पर्स में से २०) निकाल कर इन्हे दे दो।"

मैंने वैसाही किया; और चन्द्रिका, उनके पास जाकर, दोनों लड़कियों की परीक्षा करने लगा। मल्लाहों ने कहा कि उनका सर नीचा और पैर ऊपर कर के घुमाना चाहिये कि जल निकल जाय, तब उन्हें होश हो जायगा। चन्द्रिका ने मल्लाहों को किसी अस्पताल के पास के घाट पर नाव को लगाने की आज्ञा देकर मिस होप को उसी तरह करके उठाया और घुमाने लगा। मैंने भी उषा को वैसाही किया। ऐसा करने से दोनों को उलटी हुई और दोनों होश में आ गईं। इतने में नाव घाट पर लगी। मिस होप और उषा उठने लगीं।

चन्द्रिका ने कहा, "इन्दु! तुम अभी बेहोश थीं। थक गई हो। मुझे आज्ञा दो तुम्हे उठा ले चलूँ।"

मिस होप, कुछ लजाती, सकुचाती-सी धीरे २ बोली "भूषण! तुम्हारे उपकारों से मैं क्या उऋण हो सकूंगी? जो जी चाहे करो।"

चन्द्रिका ने इन्दु को अपने हाथों पर उठा लिया और कहा, "गोपाल तुम उषा रानी को लेलो।" मैंने भी वैसाही किया

उषाने कहा "महाशय! मेरे लिये आपको बहुत कष्ट उठाने पड़े।"

मैंने कहा, "नहीं, तो। तैरना तो हमलोगों का रोज का खेल है।"

मल्लाहों के सहारे उतर कर हमलोगों ने एक सवारी की और दोनों कुमारियों को लिटादिया। एक मल्लाह से अपने उतारे कपड़े मंगवा लिये। चन्द्रिका ने उन्हे यथेष्ट इनाम देकर बिदा किया और हमलोग अस्पताल की ओर चले। तब मैंने कहा

"चन्द्रिका ! हमलोग लीश्रो को भूल ही गये !"

चन्द्रिका ने निष्ठुरता से कहा, "उसका नाम न लो । आज भेंट हो जाय, तो, उसकी मूर्खता के लिये उसको ऐसा दण्ड दूँ क वह जीवन भर न भूले ।"

इन्दु ने चन्द्रिका की ओर कुछ आश्चर्य्य से देखा, और धीरे धीरे कहा—"किन्तु यह दोष तो उस मल्लाह के छोकरे का था ।"

मैंने देखा, चन्द्रिका का मुख अप्रसन्नता से गम्भीर हो गया—वह बोला, "स्त्रियों को लेकर एक छोकरे के सहारे बाढ़ में जाना भी क्या उसका दोष नहीं था ?

इन्दु ने इसका उत्तर नहीं दिया, किन्तु उसकी बड़ी २ आंखें जब तब आकर चन्द्रिका के मुख पर बन्ध जाती थीं । कुछ ही देर में हमलोग अस्पताल पहुंचे और वहां डाक्टरों ने उन दोनों को अपनी देख रेख में ले ली । घंटे भर के बाद उनलोगों ने कहा कि आवश्यक उपचार हो गया, अब कोई हर्ज नहीं, वे घर जा सकती हैं । तब वे अस्पताल के सूखे कपड़े पहने नर्सों के सहारे आईं और हमलोग वेस्ट साहब के बङ्गले के लिये रवाना हुये ।

आठवाँ अध्याय

इन्दु की आत्मकथा

यद्यपि मैं उस समय बच्ची थी, मुझे उस दिन की बात अच्छी तरह याद है जिस दिन मैंने पूषण को पहले पहल देखा। मैं स्वयं इसका कारण नहीं बता सकती कि क्यों मैं एक हिन्दुस्थानी छात्र की ओर ऐसी आकर्षित हुई, जैसा पूषण ने अपनी आत्मकथा में वर्णन किया है। यह बात ठीक है कि पूषण की आकृति, चालढाल, शरीर का गठन, दृष्टि की मधुरता लोकप्राही हैं, तथापि मैंने सुन्दर, सुशील, आकर्षक अनेक लड़कों को—युरूपियन और भारतीय—देखा था किन्तु इसके पहले मेरा हृदय कभी भी ऐसे पूर्ण आत्म-समर्पण, पूर्ण विश्वास पूर्ण तन्मयता के लिये तैयार नहीं हुआ था। इसका कारण पूर्व्व सम्बन्ध, पूर्व्व संस्कार छोड़कर और क्या कहा जा सकता है ?

मैं अपने माता-पिता की अकेली सन्तति होने पर भी, इस तरह की शिक्षा नहीं पा सकी थी जिससे मुझ में किसी बात का घमण्ड पैदा हो; यहां तक कि मैं उस समय यह भी नहीं जानती थी कि भगवान ने मुझे सौंदर्य्य दिया है। यद्यपि मेरी आया मुझे प्रति दिन सजधज देती थी, मुझे यही शिक्षा मिली थी कि यह सभ्यता का एक आवश्यक कर्म्म था। मुझे सुन्दर बनने की इच्छा तो तब हुई जब मेरा मन यौवन की प्रथम सूचना से तप्त हो, पूषण में नये गुण, नये आकर्षण और नई रोचकता पाने लगा। किन्तु साथ ही साथ लज्जा और संकोच इतना बढ़े, कि मैं वह निःसंकोच और स्पष्ट-वक्ता साथी नहीं रह सकी जिसके पूषण इतने दिनो में अभ्यस्त हो गये थे। मैं कुछ दिनों में जान गई कि पूषण ने इस परिवर्तन को देख लिया; और उनकी उन निर्मल आंखों में क्रमशः

आश्चर्य्य, कौतुक, अविश्वास, धारणा और अन्त में दुःख दृष्ट होने लगे। मैं कारण जानती थी, और मेरा हृदय बार २ चिल्लाता था कि इस वेदना को दूर करो किन्तु जब भी मिलन होता तो जिह्वा तालू से सट जाती। कुछ समय के बाद मेरे हृदय में यह शङ्का होने लगी कि क्या पूषण मुझे उसी रीति से चाहते हैं जैसा मैं उन्हे चाहती हूँ ? यदि चाहते हैं तो मेरे हृदय की अवस्था क्यों नहीं समझते, विवाह की बात क्यों नहीं चलाते। इस रीति से मेरे हृदय में भी विषैला सर्प घूम २ कर मुझे दुखी बनाने लगा।

जब हम दोनों की ऐसी अवस्था हो रही थी मुझे मसूरी जाना पड़ा और क्षण भर के लिये प्रतीत हुआ कि वह अस्वाभाविक परदा जो हम दोनों के बीच पड़ गया था, उठ गया। किन्तु फिर भी पूषण ने विवाह का कोई प्रस्ताव नहीं किया। जब मैं गाड़ी पर सवार होकर चली उस समय जिस वियोग दुःख को पूषण के मुख पर देखा, उससे मेरा हृदय टूक टूक हो गया और गाड़ी खुलने पर मैं खूब रोई।

कौलेज में मेरी उषा से भेंट हुई। प्रथम मिलन के दिन से ही, मानों हम दोनों की आत्मायें एक हो गईं और हम अपने को बहन समझने और कहने लगीं। उषा रानी को देखते ही मेरे मनमें हुआ कि इसकी गोपाल से बड़ी अच्छी जोड़ी होगी। ज्यों २ हम दोनों की प्रीति बढ़ती गई, यह विचार संकल्प का रूप धारण करता गया क्योंकि यद्यपि अभी गोपाल को विदित नहीं था, उनके प्रति भी मेरी श्रद्धा और स्नेह बढ़ते जा रहे थे। उनका निर्मल चरित्र, और पूषण में दृढ़ मैत्री मुझ से छिपे नहीं थे, और धीरे २ मैं उन्हें अपना बड़ा भाई समझने लगी थी। इसलिये जब मैं वर्ष दिन के बाद घर आने लगी तो मैंने उषा को दो एक दिन मेरे घर

पर ठहरने के लिये निमन्त्रित किया। इसमें कोई कठिनाई भी नहीं थी क्योंकि उषा का पिता बिहार प्रान्त में उच्च-पदाधिकारी थे, और उसे बनारस होकर ही जाना था। दुर्भाग्यवश दूसरे ही दिन वह घटना हो गई जिसका वर्णन गोपाल ने ऊपर किया है।

जब प्रतीत हो गया कि नाव टकरायेंगी, तो मैंने उषा से कहा, "बहन! तैरने तो जानती हो। किन्तु इस बाढ़ में तैर सकोगी?" उसने कहा, "यदि आवश्यकता होगी तो ज़रूर तैरूंगी।"

"नाव उलट ने पर प्राण की रक्षा कठिन होगी। उलटने के पहले ही कुदते जांय। बड़ा दुःख हो रहा है कि तुम्हें इस आफत में फंसा दिया। आश्चर्य्य है कि पूषण और गोपाल न आये।"

इतना कहते २ वह नाव तेजी से आ पहुँची और हम दोनों कूद पड़ीं। मैं चाहती थी कि मैं उषा के साथ २ रहूँ किन्तु वह पीछे पड़ गई और प्रयत्न करने पर भी मैं पीछे न घूम सकी। कुछ ही देर में मालूम हुआ कि कपड़े के बोझ से मैं तेजी से थक रही हूँ। मेरा मन बार २ पूषण की ओर दौड़ने लगा और कहने लगा कि क्या मेरे उठते प्रेम का यहीं गङ्गा में अन्त होगा? इसी दुःख के समय में मुझे तो स्पष्ट हो गया कि मेरे लिये इस संसार में दूसरा पति नहीं हो सकता और जब यह अन्तिम बियोग निश्चित सा प्रतीत होने लगा तो मेरी आंखो में अश्रु भर आये। इसी समय वह परिचित स्वर, जो इस समय वीणाविनिन्दक माधूर्य्य से सनासा प्रतीत हुआ, सुन पड़ा—

"प्रिय इन्दु! मैं आ गया।"

आवेश से मेरे हाथ ढीले पड़ गये और मैं गोता खानेवाली ही थी कि वह बलवान हाथ मेरे वक्षःस्थल के नीचे आकर मुझे

ऊपर उठा लिया। मैं गदगद हो कर अपने हाथ को पूषण के पीठ पर रखा और अर्द्ध आलिङ्गन का सुख प्राप्त किया। उन्होंने कहा

"हिम्मत न हारना, इन्दु! मेरी नाव आती ही है। अपना सर मेरे पीठ पर रख दो; तुम बहुत थक गई हो।"

मैंने ऐसा ही किया; किन्तु "पूषण, पूषण" कहते २ न जाने कैसे—थकावट से हो, अथवा आवेश से हो, मैं बेहोश हो गई। मैं जानती हूँ कि इससे पूषण की कठिनाई कितनी बढ़ गई होगी किन्तु जब मैं होश में आई, तो अपने को नाव पर पाया। पूषण मेरे हाथों को दबा रहे थे, और गोपाल उषा के। मेरा हृदय पूषण से इतना भर गया था कि उसमें दूसरों के लिये स्थान ही नहीं था; और जब लीओ की बात चली भी, तो पूषण के क्रोध को देख मुझे उसके विषय में कुछ और कहने का साहस न हुआ, यद्यपि मेरा मन कहता था कि इस विषय में पूषण की गलती है।

जब हमलोग घर पहुँचे, तब मेरे माता पिता हमारे गीले, और अस्पताल के सूखे कपड़ों को देख चकित हुये और पूछने लगे कि क्या बात है और लीओ कहां रह गया। मैंने सब बातें कह सुनाई। माता पिता ने पूषण और गोपाल की भूरि २ प्रशंसा की।

पिता ने कहा, "तुम दोनों बीर बालक हो। तुम्हारी कृतियों से हम कभी ऊऋण नहीं हो सकते। यह लीओ का दुःसाहस था कि इस बाढ़ में एक मल्लाह के लड़के के भरोसे बीच दरिया में गया था। किन्तु वह हुआ कूया?"

माता ने कहा, "जब ये लड़कियां निकल आईं तो वह भी निकला ही होगा। आता ही होगा।"

इसके बाद पूषण ने कहा, "महाशय! मिस होप और मिस उषा बहुत थक गई हैं—इन्हें आराम करना चाहिये। हम दोनों

को भी जाकर कपड़े बदल देना आवश्यक है। इससे हमें जाने की आज्ञा दीजिये।"

पिता ने कहा, "हां, हां। निश्चय, जाकर कुछ आराम करलो। खाना आठ बजे है, भूलना मत।"

सबों ने हाथ मिलाये। मैं हाथ मिलाती समय पूषण से कहा, "तुम न होते, पूषण—"

उन्होंने बात काट कर कहा, "तुम मुझे सभी सङ्कटों में पास ही पाओगी।"

इन बातों को सुनकर मेरा हृदय नाच उठा, शरीर में रोमाञ्च हो आया और प्रतीत हुआ कि मेरे मुख पर लालिमा दौड़ आई। मैंने देखा कि पूषण के मुख पर विचित्र भाव अङ्कित हुआहै, जैसे वह किसी बलवान प्रेरणा को रोक रहे हों, मानों उनकी आंखें मुझे पीना चाहती हों, उनके हाथ मुझे समेटना चाहते हों। वह एक ब एक मेरे हाथ को दबा कर, "आठ बजे" कहते हुये फिर गये और गोपाल को लेकर चलते हुये! मैं अपनी कुर्सी पर बेसुध की तरह आकर पड़ गई; मालुम हुआ कि उस हस्त-स्पर्श ने मेरे सब बल ही को खींच लिया। फिर सम्भल कर मैंने उषा से कहा,

"चलो, उषा, कपड़े बदल कुछ आराम करें। अब मुझे सचमुच थकावट मालुम होती है।"

× × × × ×

दो दिनों के बाद उषा अपने घर चली गई। इस अवसर में मैंने अनेक युक्तियों से गोपाल और उषा में संसर्ग बढ़ाया किन्तु गोपाल पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव देखने में नहीं आया। उसके दूसरे दिन मुझे पिता ने कहा कि आज रोवर्टस् (Roberts) जो एक दूर का मेरी चचेरा भाई होता था आनेवाला है और उसकी देखरेख मुझे सपुर्द की गई। इस चचेरे भाई को मैंने कभी नहीं देखा और

मुझे आश्चर्य्य होने लगा कि आज यह क्यों आ रहा है। लीओ तो एक दिन पहले पूर्ण लज्जित होकर चला गया था और मैं आशा में थी कि अकेला होने पर किसी न किसी तरह पूषण के साथ साक्षात्कार करा लूँगी लेकिन अब इस नये अतिथिके आने से कैसी कैसी नई गुत्थियां पैदा हो जांयगी, सोच कर मेरे हृदय में बड़ी अशान्ति पैदा हुई। किन्तु इस विषय में मेरी विवशता प्रत्यक्ष थी। क्या पूषण, अपने भारतीय संस्कारों से ऊपर उठकर, मेरी अवस्था की यथार्थता को समझ सकेंगे? ऐसे २ प्रश्न उठने लगे और मेरा मन बड़ा चञ्चल हो गया। सन्ध्या के समय तो पूषण आते ही थे। उस दिन जब रोबर्टस् (Roberts) आये, तो वह भी मौजूद थे। मेरे पिताने दोनों का परिचय कराया और पूषण के तारीफों का पुल बान्ध दिया। पूषण ने कुछ लज्जित सा हो कहा

"सर! (Sir) आप तो मेरी छोटी सेवाओं को इतनी बड़ी पदवी देते हैं कि मुझे शर्म्म आने लगती है।"

रोबर्टस् ने हाथ मिलाते कहा, "मैं आप से मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ।"

मुझ से मिलते हुये रोबर्टस ने अपने भ्रातृत्व का हक अदा किया, और मेरे गालों को चूम लिया। मेरा हृदय कहने लगा, "हा, पूषण! जिस चुम्बन की मैं प्यासी हूँ, वह तो तुम देते नहीं, और दूसरों को देखकर दुखी होते हो!" इसके पश्चात मैं रोबर्टस् को लेकर उसका कमरा दिखाने चली गई। जब मैं फिरकर आई तो देखा पूषण का पता नहीं। पूछने पर मां ने कहा कि उन्हें कोई आवश्यक काम था। मेरा हृदय तो समझ गया कि रोबर्टस् के असह्य हो जाने से ही वह चले गये हैं और इस अकारण वेदना के विचार से मैं भी दुखी हो गई। रोबर्टस् एक अच्छे डीलडौल का जवान, करीब २ पूषण के ही लम्बाई का था। उसका शरीर

गठीला था, और उसकी आकृति शान्त और गम्भीर थी। उसकी आंखों में मानों हँसी भरी थी जिससे उसके हृदय की शुद्धता लक्षित होती थी। मैं मानता हूँ कि उसमें स्त्रियों को मोहने के अनेक गुण थे, किन्तु मुझ पर तो उनका क्षणभर भी प्रभाव न पड़ा, क्योंकि उनके लिये मुझ में स्थान ही नहीं बचा था।

उस दिन के बाद कई दिनों तक पूषण नहीं आये। इस अवसर में मुझे प्रतीत हो गया कि रोबर्टस विशेष ध्येय लेकर आये थे और वह यह था कि मुझ से प्रेम बढ़ावें। रात दिन के सहवास से मैंने उनके गुणों को जान लिया और यह भी समझ लिया की वह स्त्री जो इनके प्रेम को पावेगी उसे कभी दुखी न होना होगा। किन्तु यह भी स्पष्टहो गया कि मेरे हृदय में उनके लिये स्थान नहीं था। इससे यह मेरा कर्त्तव्य हो गया कि मैं उन्हें पहले ही चेतावनी दे दूं जिस में वह आगे चल कर दुखी न हों। यह सब सोच कर मैंने एक दिन गोपाल और पूषण को चाय पर निमन्त्रित किया और मां को कह दिया। उस दिन मैंने विशेष शृङ्गार किया और जिन २ कपड़ों का कभी भी पूषण ने तारीफ की थी, उनमें से सबसे अच्छा चुनकर पहना। रोबर्टस् ने मुझे देखा तो वह स्तब्ध की तरह होकर बोला,

"भगवान! तुम तो आज परियों को मात करती हो, बहन (Cousin)।"

मैं इस तारीफ के लिये धन्यवाद देकर बैठ गई। इसी समय पूषण और गोपाल भी आ गये। सब ने सब से हाथ मिलाये। पूषण हाथ मिलाते समय धीरे से बोले, "रानी! तुम्ही अपने से बढ़ सकती हो।" कुछ देर चाय पीने में लगा और उसके बाद हम चार जवान लोग एक राय से फूलवारी की ओर चल

पड़े । वहां इधर उधर की बातें होती रहीं । एक ब एक रोबर्टस् ने पूछा,

"होप ! क्या मैं पूछ सकता हूँ कि मिस्टर सिंह को पूषण क्यों कहती हो ? इनका नाम तो चन्द्रिका सिंह है न ?"

मैंने कहा, "मैं इन्हें पूषण इससे कहती हूँ कि यह मेरी सभी संकटों में सहायता करते हैं । पूषण नाम सूर्य्य का है । आर्य्यों पर जब विपत्ति आती थी तो वे पूषण की पुजा करते थे ।"

हँसकर रोबर्टस् ने कहा, "अप्सराओं की सेवा में कौन "पूषण" बनना नहीं चाहेगा ।"

मैंने वैसे ही कहा, "नहीं, नहीं—पूषण तो एक ही होते हैं ।" और मैंने पूर्ण दृष्टि से पूषण को देखा जिस में वह मेरी आंखों का सन्देश समझ जांय किन्तु उनकी आंखें पृथ्वी से लगी थीं । केवल उनके मुख पर वह हर्ष छा गया था, जिसे मैंने अनेक दिनों से नहीं देखा था ।

रोबर्टस ने उसी मजाक के ढङ्ग से कहा, "मिस्टर गोपाल लीजिये । हमलोग तो प्रयत्न करने से भी मना किये गये ? अब क्या किया जांय ?"

गोपाल ने कहा, "मिस्टर ब्रैडले ! चारा ही क्या है ? रानी की आज्ञा मानना ही उनकी सेवा है ।

पूषण ने कहा, "मिस्टर ब्रेडले ! मिस होप की यह बच्चेपन की कृपा है जिसके लिये मैं कृतज्ञ हूँ । किन्तु मैं "पूषण" होकर भी "पूषण" के विषय में कुछ नहीं जानता ।"

इसके बाद कोई ऐसी बात न हुई जिसका मैं उल्लेख करूँ और मेरे हृदय में संशय ही रह गया कि पूषण ने मेरे अभिप्राय को समझा वा नहीं । किन्तु मैंने रोबर्टस् में कुछ अंतर पाया । वह

पहले से भी अधिक मेरे साथ रहने लगा, मुझे प्रसन्न करने के प्रयत्न द्विगुण करता हुआ, मुझे सैर में, सिनेमा में, पिक-निक (Picnic) में ले जाने लगा। मुझे तो जाना ही पड़ता, किन्तु पूषण के न रहने से, मेरे मन में वह उल्लास नहीं आता जो उनके साथ के सैरों में आता था। शिष्ट समाज के नियमों और उस सत्यानाशी लज्जा, से बद्ध मैं पूषण को बुला न सकती थी और इसका नतीजा वही हुआ जिसका मुझे भय रहता था—मुझे इन दिनों का मूल्य आंसुओं द्वारा देना पड़ा। कई दिन मेरे न रहने पर, पूषण मेरे घर पर आये और माता पिता से मिलकर चले गये। जब मैं यह सुनती तो मेरे हृदय में कितना चोट लगता मैं कह न सकती और मनमें प्रण करती कि अब न जाऊंगी; तथापि समय आने पर, रोबर्टस् ऐसी परिस्थिति बना देता कि मुझे जाना ही पड़ता। जब मेरे कौलेज खुलने के दो तीन दिन रह गये, तो रोबर्टस् ने सारनाथ में पिकनिक के लिये मुझ से बचन ले लिया। मुझे उसी समय मन में आया कि शायद आज रोबर्टस् विवाह का प्रस्ताव करेगा। मैं इससे डरी नहीं—कुछ भी सम्भ्रम नहीं हुआ क्योंकि मेरा हृदय तो अपने को जान गया था, टलनेवाला नहीं था। मुझे ग्लानि होने लगी कि इसने और पहले ऐसा क्यों न किया जिससे मैं और पूषण दोनों ही अकारण दुःख और बियोग से बच जाते और मेरी छुट्टी निरर्थक न हो जाती।

खैर जब पिकनिक का खाना समाप्त हो गया और हमलोग उस बड़े स्तूप के चारों ओर घूमने लगे, तो रोबर्टस् ने कहा,

"होप! मैं तुम से एक बिनती करने वाला हूँ। कृपा कर ध्यान से सुनो। मैं तो आया था चाचा से बहुत दिन के छूटे सम्बन्ध को पुनर्जीवित करने। किन्तु यहाँ आकर, इस आठ दस दिनों में मैं हृदय को खो बैठा। अब यह हृदय तुम्हारे बिना नहीं

रह सकता। तुम कह सकती हो कि भला ऐसा भी कहीं होता है? किन्तु मेरा हृदय क्षणिक आवेशों वाला नहीं है। इसके लिये अब दूसरा स्थान नहीं हो सकता। तुम्हारे लिये, मैं मानता हूँ कि इतना समय यथेष्ट नहीं है, किन्तु मैं इस पर तैयार हूँ कि तुम इस समय उत्तर न दो, केवल मेरी सुन लो। तुम अपने हृदय को परख लो, मुझे परख लो। मैं तुम्हारी कृपा की राह देखता रहूँगा। किन्तु मैं दृढ़ता से कहता हूँ कि यदि तुम मेरी पत्नी होने पर राजी हुई, तो मैं आजीवन तुम्हें सुख देने ही का प्रयत्न करता रहूँगा।"

ओह! बातें कैसी उदार थीं; कैसे सत्य की छाप से छपीं। किन्तु उनसे मेरे हृदय में वह गुदगुदी, मेरे शरीर में वह रोमाञ्च, और मेरे मन में वह उथल तुथल जो पूषण के दर्शन मात्र से हो जाता था, क्यों न हुआ? मैं पहले से ही प्रयत्न करती थी कि यह अवसर न आये; किन्तु आज मालूम हो गया कि वह मेरा प्रयत्न निष्फल था। मैंने धीरे २ रोबर्टस् कहा,

"रोबर्टस्! मेरा अहो भाग्य है कि तुमने यह प्रस्ताव किया। तुम भले आदमी हो, तुम्हारे प्रस्ताव को सभी भली स्त्रियां जिनका हृदय उनके वश में है, स्वीकार करने के लिये ललायित रहेंगीं। किन्तु, रोबर्टस्, दुःख न मानना, मेरे लिये, तुम एक प्रिय भाई छोड़ कर दूसरा नहीं हो सकते। मैं तुम्हें आशा देकर अधिक बन्धन में फसाना नहीं चाहती क्योंकि—क्योंकि—।"

इतना कह कर मैं आगे नहीं बढ़ सकी। रोबर्टस् कुछ चकित सा होकर बोला,

"होप! क्या कोई दूसरा है?"

मेरी आंखों में अश्रु भर गये क्योंकि पूषण के चित्र के साथ, उसकी लड़कों की सी भोलेपन स्त्री हृदय से निरभिज्ञता, और मुझे

अपनाने की अक्षमता ऐसे स्पष्ट हुये, कि मैं आवेश को रोक न सकी। रोबर्टस् ने समझा कि उसके प्रश्न से मैं दुःखी हुई हूँ, और उसने अनेक रीति से क्षमा की प्रार्थना की। मैं प्रयत्न करके सम्भल गई और मुसकराने का ढोंग कर के बोली,

"नहीं, रोबर्टस्! तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। मेरा दुर्भाग्य है कि जिसे मुझे सुख देना चाहिये, उसे मैं दुःख देती हूँ।"

रोबर्टस् ने कहा, "जो कुछ हो, होप, कम से कम आवश्यक अवसरों पर मुझे सेवा करने का मौका देना।"

इसके बाद हमलोग घर आये, और मैं उत्सुकता से इधर उधर देखने लगी कि कहीं पूषण तो आये नहीं हैं किन्तु यह देखकर कि उनका कहीं पता नहीं है मेरा हृदय मानो बैठ गया। उस रात को मुझे ठीक नीन्द नहीं आई, ओह मैं बार २ पुषण का स्वप्न देखती रही। दूसरे दिन रोबर्टस् चला गया। मैं समझ रही थी कि पूषण रूठ गये हैं और यदि बुलाया नही गया, तो मुझे बिना मिलन के ही कौलेज चला जाना होगा। इसलिये मैंने आग्रह करके माता से खाना पर आने के लिये, पूषण और गोपाल को निमन्त्रण भिजवा दिया। जब रात को वे आये, तो मैंभी अपना पूर्ण रीति से शृङ्गार करके आई! देखा कि पूषण का मुख विवर्ण हो रहा है, मुख पर अभ्यस्त मुसकान नहीं है, और मेरे हृदय में बड़ी वेदना हुई। मैं उनके बगल में बैठ गई और लगी इधर उधर की बातें करने। धीरे २ वह कालिमा कुछ हटी किन्तु पूरा प्रयत्न करने पर भी मेरे परिचित पूषण का दर्शन न हुआ। मैं कुछ हताश होकर गोपाल की ओर फिरी तो देखा कि उसकी आंखें अत्यन्त दयार्द्र भाव से मुझ पर बन्धी हैं। मेरी आंखों से मिलते ही उसने अपनी दृष्टि मां की ओर करली और उसके किसी प्रश्न का उत्तर देने लगा।

किसी किसी तरह खाना समाप्त हो गया और हमलोग बैठक (Drawing Room) में गये। वहां कौफी (Coffee) के बाद गोपाल ने कहा,

"क्यों न चान्दनी में बाहर बैठा जाय ?"

मांने कहा, "हां, हां चलो।"

गोपाल ने एक कुर्सी उठाई और पूषण ने दूसरी और सामने के लौन पर माता पिता के लिये रख दिया और हम तीनों इधर उधर घूमने लगे। जब हमलोग कुछ दूर चले गये, तो गोपाल को मालूम हुआ कि उन्होंने अपना सिगरेट केस मेज पर छोड़ दिया है, इसलिये वह माफी मांगकर घर की ओर चले गये। मैं तो समझ गई की यह गोपाल की चाल थी जिस में हम दोनों अकेले हो जांय। लेकिन हा ! यदि गोपाल जानते कि इसका क्या परिणाम होगा, तो ऐसा कभी न करते।

हम दोनों कुछ देर टहलते ही रहे। मुझ से न रहा गया और मैंने कहा, "पूषण ! चुप्पी क्यों साधी है ?"

पूषण बिना मेरी ओर देखे सूखे स्वर में बोले, "क्या कहूँ ?"

मैंने कहा, "कुछ भी तो बोलो ! क्या सोच रहे हो ?"

पूषण वैसे ही स्वर में बोले, "जानकर क्या करोगी ?"

मैं—"पूषण ! तुम नाहक अपने हृदय में मेरे प्रति क्रोध जमा कर रहे हो !"

पूषण—"मेरे हृदय से तुम्हें क्या मतलब ? अब तो मित्रों की कमी नहीं रही ! और नई मित्रताओं में नया रस रहता है।"

मुझे भी कुछ क्रोध हो गया। मैंने कहा, "मेरे मित्रों पर कटाक्ष करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है।"

[illegible] ! [illegible] मैं [illegible] हो गया हूँ।"

मैं इस अनाधार लांछना को सह न सकी। "तुम मूर्ख हो, आज मुझ से लड़ने की ठान कर आये हो। अब मैं तुम से कभी न बोलूंगी—तुम चले जाओ।"

"चला जाऊँ? हां—हां—ठीक ही तो! लेकिन मैं ऐसे नहीं जानेवाला। तुमने जो इस भोले हृदय की हालत कर दी है, जिस हरे भरे उद्यान को वीरान कर दिया है, जिस प्रेम मन्दिर को अशुद्ध करके उसमें आग लगा दी है, उसकी भीषण अवस्था देखे ही बिना, अपनी सफलता पर खुशी मनाये ही बिना, चली जओगी? नहीं—नहीं। यह कैसे हो सकता है? चलो उस कुञ्ज में, अपनी करनी देखकर तो जाना।"

"तुम पागल हो गये हो! मैं नहीं जाती।" इतना कहकर मैं दूसरी ओर फिरी और चलने वाली ही थी कि "नहीं मानती तो यहीसही" कह पूषण ने मुझे पकड़ा और उठाते हुये, मुझे उस कुञ्ज में ले जाने लगे। स्पर्श के साथ २ मेरे हृदय में, मेरे अङ्गों में बिजली दौड़ने लगी और आनन्द से आंखें झिपने लगीं। किन्तु स्त्रीत्व का गौरव तो रखना ही था। इससे मैं पूरी शक्ति से छट-पटाती, और पूषण को चपतें लगाती ही रही। किन्तु कितनी शक्ति थी उस विशाल शरीर में! मुझे लेजाकर बेंच पर लिटाते हुये, पूषण ने कहा,

"नहीं—नहीं, क्षण भर सुनना ही होगा—और सुनकर हंसी मचाना। मैंने तुम्हें देवियों सा पवित्र, वसन्तसा नवीन, पुष्पोंसा सरस समझ कर अपने हृदय मन्दिर में स्थापित किया था—पूजन करता था किन्तु तूने उस पवित्रता को लाञ्छित; उस नवीनता को कर्कश और उस सरसता को विषाक्त कर दिया·····।"

"पूषण! पागल न हो। मैं वैसी नहीं··· "

वह अनसुनी कर कहते गये, "तू सुन्दरी है—लाखों में एक। तू मेरी मृत्यु है, तुझ में मुझे जलना ही है। तू मेरे लिये नरक है, मुझे तड़पना ही होगा। तो मैं भी क्यों नहीं आज इस सौन्दर्य को चखूं जिसे सभों ने चखा, मैंही क्यों इससे वञ्चित रहूँ ?"

इतना कहते २ पूषण ने मुझे छाती से लगाकर इस कर्कशता से मेरे होठों, गालों, ललाट और केश का बार २ चुम्बन किया कि मैं प्रायः बेहोश हो गई। कुछ देर के बाद वह बोले।

"बस! हो गया। क्या कुछ और का भय था ? नहीं—नहीं, मुझ से असम्भव बातें नहीं होतीं। अब मैं सदा के लिये चला।" इतना कहकर वह शीघ्रता से बाहर निकल गये।

उस समय की मेरी हालत अवर्णनीय है। पूषण के वाक्वाणों से जर्जरित हृदय, खण्ड २ होकर आंखों से बह चला; सिसकियां बन्ध गईं। जीवन अन्धकार मय हो गया, आशालता सूखकर निर्जीव हो गई, और मनमें आया कि इस निरर्थक जीवन का अन्त कर देना ही श्रेष्ठ है। एक बार क्रोध ने शिर उठाया, "ओह, चलो अच्छा ही हुआ। क्या पृथ्वी सूनी है ?" किन्तु तत्क्षण ही मृत प्राय हृदय कराह उठा, "अरे दुष्ट! बिना प्राण के शरीर कैसे रह सकता, बिना सूर्य्य किरणों के कमल कैसे फुलेंगे ? अरे मैं कैसे जी सकती हूँ ? मैं मरुँगी, मरुँगी।" और मैं रोती रही।

मैं कितनी देर इस अवस्था में रही, मालुम नहीं; किन्तु कुछ देर के बाद मुझे आते पद शब्दों की आवाज सुन पड़ी। क्षणभर के लिये यह मूर्ख हृदय इस आशा से चमक उठा कि क्रोध कम होने पर अपनी गलती समझ कर पूषण फिरे हैं किन्तु शीघ्र ही पद क्रम दूसरे के प्रतीत हुये और मेरी निरासा गम्भीरतर हो गई। वे

पद कुञ्ज के पास आकर रुक गये। गोपाल की आवाज सुन पड़ी

"मिस होप! क्या आप हैं वहां?"

इस प्रिय मित्र की आवाज सुन कर मेरी रुलाई और उमड़ी किन्तु शिष्ट नियमों को तोड़ा नहीं जा सकता। इससे मैंने बड़े प्रयत्न से उसे पी लिया और आखों को पोंछती किसी तरह उठ बैठी। फिर आवाज को सम्भालती बोली, "आओ, गोपाल।"

गोपाल ने आन्दर आते कहा, "बहन, यह क्या? किसने तुम्हें दुखाया कि इस अन्धेरे में बैठी रो रही हो? चन्द्रिका कहां गये?"

मेरा कठिनता से प्राप्त आत्म संयम फिर टूट गया और मैं फिर रो पड़ी। गोपाल मेरे आवेश के अन्त होने की प्रतीक्षा में उद्विग्न हो खड़े रहे। जब मैं फिर स्वस्थ हुई, तो बोले, 'बहन! धैर्य्य धारण करो। यदि चन्द्रिका ने दुःख दिया है, तो वह पागल हो गया है, उसका तनिक भी ख्याल न करो। मैं जानता हूँ कि वह तुम्हारे बिना जी नहीं सकता इसलिये तुम दुखी न हो। यह भी मैं जानता हूँ कि इधर कई दिनों से वह अत्यन्त विह्वल हो रहा था। मेरी बात मान लो, वह शीघ्र ही तुम्हारी सेवा में आ जायगा, क्योंकि वह तुम्हारे बिना रह नहीं सकता।"

यद्यपि ये बातें मेरे दुखी हृदय पर मरहम की तरह पड़ी, मेरे हृदय में पूषण के अन्तिम बातों से एक भय अचानक प्रवेश कर गया। मैंने गोपाल से केवल यही कहा "भाई, तुम उनपर दृष्टि रखना। मैं तो इस समय कुछ कह नहीं सकती—अपने कमरे में जाती हूँ। मां से कह देना सर में दर्द है।" और मैं उठ कर चली। उस रात को मुझे नीन्द न आई। कईवार जी में आया की वेरोनल (Veronal) जो नीन्द के लिये खाई जाती है।

अधिक मात्रा में खालूं कि सब झंझट ही दूर हो जाये। किन्तु आत्मघात से जो मेरी स्वाभाविक-घृणा है उसने इस मुक्तिद्वार को भी खुलने नहीं दिया।

नवां अध्याय

मेरी डायरी से

अक्टूबर, ६, १६—। आज भी दिन भर इन्दु के दर्शन न हुये ! इस हृदय को मैं क्या करूँ ? कैसे समझाऊँ कि प्रेमी—सच्चा प्रेमी—तो केवल देता है कुछ लेने की इच्छा होती ही नहीं। इसके भीतर तो २४ घण्टे टीस बनी रहती है। अरे मूर्ख हृदय। तू क्या चाहता है ? यदि चाहता है, तो पुरुषार्थ कर, प्राप्त करने के यत्न ढूँढ़ निकाल ! यहां तो विरह में जलता रहता है, किन्तु इन्दु के सामने कांपने लगता है, मुंह से पूछने की भी शक्ति नहीं रहती ! आज तीन हफ्ते हो गये कि इन्दु कौलेज से फिरी, उसके कितने उपासक आये और गये, और उन्हें देख तू कुढ़ता ही रहा, किन्तु तुझे इतना पौरुष न हुआ कि तू अपने मनकी एक भी इन्दु के सामने रख सके ! कैसी चञ्चल हो गई है इन्दु ! वह इन्दु क्या हो गई जो मेरी राह देखा करती थी, जिसकी आंखें मुझे देखकर ही हर्ष से भर आती थीं, जो मेरे हृदय के इतनी पास पहुंच जाया करती थी। हाय ! अबतो दिन पर दिन व्यतीत हो जाते हैं और भेंट भी नहीं होती ! अधिकतर परिवर्तन तो तब से हुआ है जब से यह रोबर्टस आया है। कभी २ तो जी चाहता है कि उसे मल्लयुद्ध का निमन्त्रण देकर इस प्रश्न को हल कर डालूं—चाहे तो वही रहे, सुख भोगे, वा मैं ही रहूँ। यद्यपि यह लीओ से निश्चय बली है, मैं समझता हूँ कि मैं इसे भी हराऊंगा। किन्तु यह लीओ तो नहीं है—वह तो भला हृदय का, अच्छे शील का, उदार आशयों वाला प्रतीत होता है। इस हालत में मुझे क्या करना चाहिये ? यदि मैं यथार्थतः इन्दु में प्रीति रखता हूँ, तो

उसका सुख ही मेरा ध्येय होना चाहिये; और यदि उसे रोबर्टस् से ही सुख प्राप्त हो, तो मुझे उसी में सुखी होना चाहिये। किन्तु यह हृदय तो मानता नहीं। इसमें ऐसा क्रोध धधक रहा है कि मालूम नहीं क्या कर बैठूं। एक तूफान उठ रहा है, जो मेरे संसार को अन्धकारमय बना रहा है—न इन्दु का यथार्थ रूप, न मेरा ही पवित्र प्रेम सूझता।

अक्टूबर ६, १६—। इन कतिपय दिनों से मेरे मन में कैसी भावनायें उठ रही हैं? यदि रोबर्टस् मुझ से अधिक साहसी, अधिक गुणवान, अधिक प्रिय है, तो इन्दु उसे क्यों न स्वीकार करे? किन्तु इस विचार पर तो मेरे हृदय में आगसी लग जाती है। यह भी फुसफुसाहट हृदय से निकलने लगती है—सारा दोष इन्दु का है, उसने ही इस भोले आर्य्य हृदय को अपनी नैसर्गिक यूरोपियन ढोंग से फांसकर अब विश्वासघात कर रही है। उसके मन बहलावे का काम हो गया, अब उसे अपना स्वजातीय मिल गया, मुझ हिन्दुस्थानी को मक्खी की तरह निकाल फेंकने में उसे काहे की हिचक होगी? ऐसे सन्देह, ऐसी बातें जो मेरे मन में कभी स्वप्न में भी नहीं आती थीं, आजकल बार २ आकर मेरे हृदय को जला रही हैं! कभी २ विचार ऐसा भीषण रूप धारण करता है, कि इन सब दुःखों की औषध केवल मृत्यु ही प्रतीत होता है। तो क्या अपना प्राण देकर अपने शत्रुओं की राह साफ कर दूँ—और उस नारी—लाञ्छन को छोड़ दूँ कि वह और भी भोले भाले हृदयों का नाश बने?—लेकिन, धिक्कार है मुझे कि अपने को भूल कर ऐसी बातों को मन में आने देता हूँ! छिः छिः मैं कूया से क्या हुआ जाता हूँ?

× × × × ×

१४ अक्टूबर, १६—। मैं ता० १० के बाद आज ही डायरी

लिखने बैठा हूँ किन्तु प्रतीत होता है कि इन्ही कतिपय दिनों में अनेक अनेक युग व्यतीत होगये । दुःख सुख हो गया, नरक स्वर्ग में बदल गया, और मेरी मरणासन्न आत्मा पुनर्जीवित हो उठी । किन्तु बीती हुई बातों का लिख देना आवश्यक है जिसमें समय आने पर मुझे चितावनी मिलती रहे, और मैं दर्प, क्रोध, और कुविचारों का फिर शिकर न बनू ।

मैं जब ता० ११ को इन्दु के घर गया तो मालूम हुआ कि वह रोबर्टस् के साथ पिकनिक को गई है । मेरी क्रोधाग्नि भभक उठी और मैंने निश्चय किया कि अब जबतक अपना कर्त्तव्य निश्चय न कर लूंगा फिर न आऊंगा । किन्तु १२ ता० को एक निमन्त्रण मेरे और गोपाल के नाम से मिसेज वेस्ट का आया कि हम दोनों उस दिन, रात का खाना उनके साथ खांय । मैं कोई बहाना लिखने जा रहा था । किन्तु गोपाल ने बड़ा आग्रह करके मुझे ऐसा करने न दिया । खैर, मैं राजी तो हो गया किन्तु मेरा क्रोध संयम से बाहर हो रहा था, और जब मैं खाना पर गया, तो आज सब का अन्त करने का निश्चय करके गया । जब खाने पर हमलोग बैठे तो इन्दु ऐसा सजधज कर आई कि यदि मैं क्रोध के वश में न होता तो उसकी कितनी प्रशंसा करता । यद्यपि मैंने देखा कि रोबर्टस् नहीं है, यह सजधज मेरी क्रोधाग्नि के लिये घी का काम कर गई और वह फुसफुसा ने लगी, "पुंश्चली ! नये यार के चले जाने पर, पुराने यार की सुध आई है । इन बातों को लिखते तो मैं लज्जा से गड़ा जाता हूँ किन्तु इस डायरी में न लिखूँ तो आत्म प्रवञ्चना का दोषी होऊँ । मैंने यह भी देखा कि इन्दु मुझे प्रसन्न करने की बड़ी चेष्टा कर रही है, किन्तु द्वेष से, मुझे उस समय इसका विपरीत ही अर्थ मालूम हुआ । मेरे बगल में बैठी इन्दु की ओर मैंने शायद ही एकाधबार देखा होगा और इससे मैं कह नहीं सकता कि मेरे आचरण का

उस पर कैसा प्रभाव पड़ रहा था। खैर, मेरे लिये एक युग के बाद खाना समाप्त हुआ, और हमलोग ड्राइङ्ग रूम में गये

× × × × ×

हाय! क्रोध और ईर्षा के वश में होकर, मनुष्य कैसा घृणित पशु हो जाता है, और नीच से नीच काम कर बैठता है। आज मैं अपने घोर पतन की याद करके स्थान नहीं पाता जहां अपना मुख छिपाऊं किन्तु देवी इन्दु ने अपने अप्रेमय बड़प्पन के अञ्चल में इसे स्थान देकर अपने ही मधुर तेज से इसकी कालिमा धो डाली। उस दिन तो क्रोध और शोक में जलता, उसके हृदय को टूक २ कर, उसकी स्वर्गीय पवित्रता में निराधार लाञ्छना लगा, अहंकार से भरा मैं उस कुञ्ज से निकला और सीधे हाते के पिछले फाटक से निकल पड़ा। मैंने सोचा कि इस समय मैं मिस्टर वेस्ट के पास जाने योग्य नहीं हूं और अब मिलना ही क्या है? अब तो सभी बातों का अन्त ही हो गया। योहीं सोचता मैं तेजी से चलने लगा; डग २ पर हृदय कराह रहा था, प्रति हिंसा की आग धधक रही थी और सारे शरीर में बेचैनी दौड़ रही थी। न पथ का ठिकाना रहा, न आंखों के सामने गुजरते दृश्यों का, न जाने के लक्ष्य का। मैं नहीं कह सकता कि उस रात को मैं कहां २ घूमा और क्या २ किया; किन्तु जब वह भीषण अन्धकार कुछ हटा तो मैंने अपने को एक टूटे फूटे, सुनसान में स्थित, झोंपड़े में पड़ा पाया। जिस कमरे में मैं पड़ा था उसके दीवार तो खड़े थे किन्तु अधिक तर छप्पर गायब था केवल लकड़ियां यहां वहां देख पड़ती थीं। मालूम होता था कि दिन ढल गया था। मैं चकित होकर उठने लगा तो ऐसा लगा कि अङ्ग अङ्ग में हजारों बिच्छू मार रहे हैं। तब कलह की सब बातें भीषण वेग से मस्तिष्क में टकरा उठी, और मैं उन सभी भावों से भर उठा। मैंने सोचा कि भगवान ने ठीक ही

स्थान पर ला पटका है। यही स्थान मेरे इष्ट कर्म्म के योग्य है। जब इन्दु ही विश्वास के अयोग्य निकली तो और जी कर क्या होगा? एक बार अपनी वृद्धा माता की याद आई किन्तु उसका भी प्रतिकूल ही असर हुआ। वह तो मेरे विवाह की राह देखती होगी और अबतो वह असम्भव हो गया, तो एक नई गुत्थी क्यों पैदा किया जाय? मैं किसी २ तरह उठा और द्वार के पास आया। द्वार के पल्ले टेढ़े मेढ़े हो गये थे, अपने स्थान से हट गये थे। मैंने कोशिश करके उन्हें यथा स्थान किया और अन्दर से बन्द करने का प्रयत्न किया। किन्तु उन पल्लों में डन्टा नहीं था, और वे बराबर बैठते भी न थे। किसी २ तरह पूरा जोर लगाकर मैंने उन्हें भिड़का भर सका। तब मैंने लकड़ियों की जांच की, और एक जो न बहुत ऊंची, न नीची थी, और देखने में मेरे भार को सहने योग्य मालूम होती थी, मुझे अपने काम के योग्य जंची और मैंने अपने बेल्ट को खोलकर दृढता से उसमें बांधा। मैं अपनी लम्बी रेशमी रूमाल को निकाल कर उसे रस्सी की तरह बड़ डाला और अपनी गर्दन में फाँस लगानेवाला ही था, कि किसीने द्वार को एकबार खटखटा कर जोर से खोल दिया। फांस हाथ ही में रह गया, और दौड़ती हुई इन्दु मेरे पास आकर उसे छीन अपने पैरों से रौंदती हुई, रुके हुये आंसुओं सें भरी आवाज में बोली—

"ऐ मूर्ख, जो बुद्धिमानों का ढोंग किया करते थे; ऐ कायर! जो किसी जमाने में बीरों के बीर बने थे! ऐ पतित! जो दूसरों को उठाने के योग्य जंचते थे! अब यहां तक गिर गये? मुझे यही देखने को रह गया है? हाय, हाय! स्त्रियों का हृदय कैसा मूर्ख होता है, कि बिना जांच किये, बिना परिणाम का बिचार किये ऊपरी और भीतरी का बिना भेद लगाये, मिट्टी के मूर्तियों पर धोखे की टट्टियों पर, अपने तन मन धन को न्यछावर कर देती है..."

मैंने कहा, "ऐ इन्दु ! शून्य जीवन के भय से..."

वह अनसुनी सी कहती गई, "और अब यह ! छिः छिः ! मेरे आशैशव के व्यवहारों को ठुकरा कर, मेरे नैनों के स्पष्ट निमन्त्रण की अवहेलनाकर, मेरे हृदय के पुकार को अनसुनी कर, मेरे स्त्रीत्व को झूठी लाञ्छनाओं से धरातलशायी कर, मेरे उमड़ते प्रेम का निरादर कर..."

मैं गिड़गिड़ा कर बोला, "मेरी रानी ! देवी ! क्या तुमने अपनी असीम दया से इस पतित को अपने उदार हृदय तक उठाने आई हो ?"

वह बोली, "क्या अब भी नहीं समझे ? तुम्हें क्यों इतने दिनों से पास रखती आई, क्यों तुम्हारे बिना मुझे चैन नहीं होता था, क्यों इतने युवक आये और गये, और मैं..."

मैंने कहा, "तात्पर्य्य, इन्दु ?"

इन्दु के मुख पर वही लालिमा दौड़ गई। उसने कुछ झेंपते हुये धीरे २ कहा, "तात्पर्य्य, पूषण ! यही कि—जब चाहो—यह बिचारी, तुम्हारी धर्म्म पत्नी—"

मेरा हृदय अकथनीय हर्ष और उल्लास से भर गया। मैंने कहा, "मेरी रानी ! मैं मूर्ख हूं, अपवित्र हूं, तुम्हारे अयोग्य हूं, तथापि तुमने यह उच्च पद दिया। ऐ देवी ! क्या मेरी धर्म्म पत्नी होगी ?

यह कहकर मैं उसके पैरों पर गिरकर उसके गौन के छोर को चूम लिया और उठकर उसे कलेजे से लगा लिया। उसकी आंखें आंसू से भर आई थीं, जिन्हें मैंने अपने चुम्बनों से सुखा दिया। वह भी मुझसे लिपट गई, और हम दोनों के लिये संसार रहा ही

नहीं ।

× × × × ×

हमलोग कितनी देर इस हालत में रहे, मैं कह नहीं सकता किन्तु जब आवेश कुछ कम हुआ, तो इन्दु अपने को छुड़ाकर कुछ अलग खड़ी हो गई, और कुछ मुसकाती, शर्माती, बोली,

"पूषण, बगल के कमरे में जाकर इन गन्दे कपड़ों को बदल आओ ।"

मैंने अपने कपड़ों को देखा, तो उन्हें धूल और मिट्टी से लथ पथ देखा ।

मैंने कहा, "मैं कितना मूर्ख हूं, इन्दु ! मैंने तुम्हारे कपड़े भी खराब कर दिये ! लाओ, पहले इन्हें साफ कर दूं ।"

यह कह कर मैं अपनी रुमाल निकालने के लिये जेब में हाथ दिया तब उसे जमीन पर पड़ी देखकर, अत्यन्त लज्जित हो गया ।

इन्दु पहली बार हंसती हुई बोली, "आप जाइये भी, मैं साफ कर लूंगी !"

मैं इन्दु के सामने से हटना नहीं चाहता था, किन्तु क्या करता ? मैं दूसरे कमरे में गया । इस घर में छप्पर का नाम निशान भी नहीं था लेकिन यह देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि कमरा हाल का ही झाड़ा बुहारा, साफ सुथरा किया मालूम होता था । एक दीवाल के दरारों में दो डन्डे लगाय गये थे, और उसपर एक तख्ता बिछा था जो खासा टेबिल हो गया था । उसी के सटे एक खाट जिस पर सफेद चादर बिछी थी, पड़ी थी । उस पर मेरे धुले कपड़े करीने से लगे थे । एक कोने में एक बालटी में पानी और मग रखे थे और पास ही एक केस में साबुन रखा था । मैं समझ गया कि यह सब इन्दु के कोमल

करों का किया हुआ था और अब मुझे आश्चर्य्य होने लगा कि इन्दु कैसे और कब आई। अभीतक तो इस प्रश्न का समय ही नहीं मिला था किन्तु अब कौतूहलसे मैं परीशान हो उठा। मैंने जल्दी २ मुंह-हाथ धोया और कपड़े बदले। कपड़ों के नीचे मैंने एक आइना और कंघी भी पाया जिससे मेरा नेपथ्य सम्पन्न हो गया। तब मैं इन्दु की खोज में बाहर निकला तो देखा कि वह हाथ में एक टिफिन की टोकरी लिये मेरी ओर ही चली आ रही है। मैं लपक कर उसे अपने बाहुपाश में बान्ध कर उसके होठों का गहरा चुम्बन किया और उसने गद्गद कण्ठ से कहा,

"प्यारे, अन्दर चलो, यहां कौन न देखले !"

मैंने उसे छोड़ दिया और हम दोनों अन्दर गये। वहां वह टोकरी को नीचे रखकर, उस विचित्र टेबिल पर एक साफ तौलिया बिछाने लगी। मैंने अवसर समझकर, कहा,

"तुम्हें मेरा पता कैसे लगा और तुम कब आई, इन्दु ?"

वह प्लेटो को निकालती बोली, "समझ जाओ, तो कुछ..." इतना कहते कहते उसकी आंखें मेरी आंखों के नीचे दब गईं और एकबार फिर वह सुन्दर लालिमा उसकी छाती और गर्दन से उठकर गालों पर दौड़ गई। मैंने कहा, "क्या, गोपाल ?"

उसने आंखें नीची किये, सिर हिलाकर स्वीकार किया और मैं इनाम वसूल करने आगे बढ़ा। वह बोली, "क्या मुझे काम न करने दोगे ? देखो हाथ में छुरी कांटे हैं, कहीं लग जाय तो ?"

मैं जाकर उसकी जूड़ा के नीचे चुम्बन लिया।

उसने बनावटी गुस्से में कहा, "जनाब, शरीफ की तरह बैठ जाइये और खा-पीकर जो जी आवे कीजिये।"

मैंने कहा, "भाई ! मैं तो दास हूं—जो कहो। किन्तु गोपाल है कहां ?"

उसने कहा "यहीं कहीं होंगे। बुला न लाओ ?"

मैं बाहर आया, और पुकारा, "गोपाल, गोपाल !" एक ओर कुछ दूर से प्रत्युत्तर हुआ, "आया।" और गोपाल जल्दी जल्दी चलता मेरे पास आ गया। वह आते ही मेरा गाढ़ालिङ्गन करके भीतर मेरे साथ २ आया। भीतर आकर वह बोला।

"बहन ! वर-कन्या की बधाई !"

इन्दु ने बड़ी ही नम्रता से कहा, "भइया, तुम्हारी कृपा, तुम्हारा आशीर्वाद है।"

इन्दु ने तीन प्लेटों को तैयार कर रखा था, और तीन प्यालियों में चाय भी भर रखा था। मैंने इन्दु को अपने और गोपाल के बीच बैठाया। यद्यपि वह खाना ठण्ढा था, तथापि उसके रस और स्वाद को मैं आजीवन न भूलूँगा। बातों ही बातों मुझे मालूम हुआ कि यह सब कार्य्यवाही गोपाल का था; उन्होंने बिलखती इन्दु को ढाढस दिया, रात भर मेरे अनुसन्धान में घूमें, और मेरी पीछा की; और जब मैं बेहोश की तरह पड़ गया, तो वह इन्दु के पास जाकर, मेरा शोचनीय हालत का वर्णन करके, उसे किसी बहाने ले आये। यह भी मालूम हुआ कि जब से इन्दु आई मेरे पास से हटी नहीं। गोपाल को कई बार होस्टल आना जाना पड़ा जिसमें वे सामान सब लाये जांये, जिनकी मेरे जगने पर आवश्यकता होती।

अक्टूबर १६, १६— आज इन्दु अपने कालेज चली गई। मैं उसे स्टेशन पहुचाने गया था। मेरा संसार कैसा सूना २ सा लगता है ? किन्तु पहले के वियोग में और आज के वियोग में कितना अन्तर है ! पहले तो हृदय मानो चङ्गपर चढ़ा रहता था— आज पुनर्मिलन की आशा से यह सुनसान भी रञ्जित है। तूफान

के बाद शान्ति आ गई है। मिलन के बाद हम दोनों में विवाह के विषय में बातें हुईं और इन्दु के आग्रह पर यह तै हुआ कि हम दोनों की परीक्षा के बाद विवाह की बात इन्दु के पिता माता और मेरी माता से कही जाय और तब दिन का निश्चय हो।

इन दो दिनों में मैंने स्वर्ग के सुख भोगे। इन्दु का पूर्ण आत्मसमर्पण, उसके उदार हृदय की गहरी प्रीति उसके प्रत्येक कर्म्म में, उसकी प्रत्येक अङ्ग-भङ्गी में, उसके बड़ी आंखों की सुहास-युक्त दृष्टि में, उसकी ठठोलियों में अभिव्यक्त होते थे और मेरा हृदय भगवान की ओर कृतज्ञता से भर आता था, और कभी २ ऐसी इच्छा प्रबल हो जाती थी कि इन शरीरों के बन्धनों से मुक्त होकर हम दोनों एक हो जाते। यह बात नहीं थी कि हम रात-दिन प्रेम व्यञ्जना में ही लगे रहते थे, न यही कि हमारा समय प्रेम की बातें दोहराने में ही व्यतीत होता; किन्तु हमारे हृदयों की वह समता, वह एकता हो गई जब शब्द निरर्थक हो गये, व्यञ्जनायें निष्प्रयोजन हो गईं, जब एक दृष्टिपात में, एक स्पर्श में, हृदय की सभी संदेश, सभी आशा, सभी प्रेम-कहानी, सभी आत्मसमर्पण प्रत्यक्ष की तरह झलक उठते थे।

दसवां अध्याय

मेरी आत्मकथा

गोपाल, लीओ के भागजाने के बाद के चार वर्षों की घटनाओं का यथायोग्य वर्णन करना मेरे लिये इस समय असम्भव हो रहा है, क्योंकि मेरे पास इतना समय नहीं है। किन्तु मुझे विश्वास है कि तुम उन दिनों की सभी बातो को भलीभांति जानते हो, क्योंकि मेरा बाह्य और आन्तरिक जीवन तुम से छिपा नहीं था। तुम्हे विदित है कि कैसे वह प्रेम-बीज जो हमारे और इन्दु के हृदयों में बाल्यावस्था में ही स्थान पाया था, और जिसके तुम कुछ दिन प्रतिद्वन्दी बने थे, धीरे २ बढ़ता २ हम दोनों का जीवन ही बन गया था, और उसने इस संसार को ही हमारे लिये स्वर्ग बना दिया था। तथापि यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो, मेरी डायरी, जिसे मैं तुम्हारे पास भेज रहा हूँ, देख लेना और अपनी स्मृति को पुनर्जागरित कर लेना। अपनी इस आत्मकथा का क्रम बनाये रखने के लिये तुम्हें इतना ही स्मरण दिला देता हूँ कि जिस दिन तुम्हारी कृपा से दो मुग्ध हृदय एक दूसरे का साक्षात्कार पाकर एक हो गये, वह तो आज मुझे किसी दूसरे जन्म की कथा प्रतीत होती है। उसके बाद के कतिपय दिन तो स्वप्न की शीघ्रता से व्यतीत हो गये। यद्यपि दो अल्प दिनों के बाद ही इन्दु अपने कौलेज को चली गई, उन्हीं दो दिनों में मुझे स्पष्ट हो गया, कि बल्यावस्था हँसकर कच कर गई, और प्रौढता ने अपना अधिकार पूर्ण रीति

गङ्गोत्री के स्वच्छ जलधारा के समान उज्ज्वल थी, समस्त लोक के सौन्दर्य्य स्वप्न के समान सुन्दर थी, तब भी मुझे तृप्ति न होगी। इसलिये मैं उन घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन दे देता हूँ, जिनका उल्लेख मैंने डायरी में नहीं किया है, क्योंकि जब हम मसूरी गये, तो डायरी का लिखना भी छूट गया।

जब इसबार इन्दु मसूरी गई, तो मुझ में पहले की सी बेचैनी नहीं हुई—क्योंकि हृदयों का साक्षात्कार हो गया था। और प्रति दिन ही इन्दु के सुन्दर पत्र आते, और मैं अर्द्ध मिलन का सुख भोगा करता। हम दोनों ने इस प्रेम से अपने विद्यार्थी जीवन को पवित्रतर और ऊर्द्ध-गामी ही बनाने का दृढ संकल्प कर लिया था जिसका फल यह हुआ कि हमारी दृष्टि आगामी परीक्षा से कभी न हटी और अन्ततः हम दोनों के ही परचे उत्तमोत्तम उतरे। किन्तु उन दिनों भी हमारे प्रति दिन के पत्र न रुके। कैसी विलक्षणता थी इन्दु की, कि उसकी एक सुन्दर पंक्ति में, एक ही शब्द विन्यास से, ऐसे रस टपक पड़ते थे, कि मेरा हृदय उससे ओत-प्रोत हो जाता और दस पन्नों के पत्रों की आवश्यकता ही नहीं रहती।

मेरी परीक्षा पहले हुई। उसके समाप्त होने के पहले ही इन्दु ने एक पत्र में लिखा कि मिस्टर और मिसेज वेस्ट उस साल की गर्मी की छुट्टियाँ मसूरी में ही बिताने वाले थे और एक प्रेम-मधु से सिञ्चित हृदय में अपने प्रीतम की पुकार उठरही थी; क्या प्रीतम उस पुकार को सुनेंगे? भला ऐसे मधुर निमन्त्रण को मैं छोड़ सकता था? किन्तु इन्दु की परीक्षा अभी एक मास के बाद होने वाली थी और हम दोनों ने निश्चय किया था कि परीक्षाओं के पहले मिलने का प्रयत्न नहीं करेंगे। यह विचार कर मैंने अपने उत्तर में

अपनी लालसा प्रकट करते हुये लिखा कि उसकी परीक्षा के समाप्त होते २ मैं गोपाल के साथ ही पहुँच जाऊँगा । इस अवसर में मैं माता से मिल लेने की व्यवस्था की । गोपाल, तुमसे बातें हुई तो तुम भी सहमत हो गये और परीक्षा समाप्त होते ही हम दोनों घर को चले गये। मैंने इन्दु को लिख दिया कि यदि वह उषा रानी को कुछ दिन रोक रक्खे तो अच्छा हो।

घर पर कोई विशेष बातें न हुई । माता ने मेरे विवाह की बातें चलाई, किन्तु मैंने यह कह कर टाल दिया कि जब तक मैं यह न जान लूँगा कि लड़की का स्वभाव ऐसा है कि वह माँ की सेवा जी जान से करेगी, तब तक मैं विवाह नहीं करूँगा । माता ने कहा, "बेटा हिन्दू लड़कियों के विषय में यह कैसे हो सकता है?" मैंने कहा, "तब मैं उनसे विवाह हीं नहीं करूँगा ।"

एक बार इच्छा हुई कि इन्दु की बातें कहूं किन्तु हृदय की कायरता से कह न सका। ऐसे तो इन्दु और मेरे मिलने की बात अम्मा जानती थीं किन्तु हमारे प्रेम की बात तो वह नहीं जानती थीं। इन्दु ने कई बार मेरी माता से मिलने की इच्छा प्रकट की थी किन्तु अभी तक हम लोगों ने कोई सुअवसर नहीं पाया था। मैं तो इन्दु के सरल स्वभाव, बड़ों की सेवा, सुश्रूषा में तत्परता, और सौजन्यता और मधुरता को भली भांति जानता था; और मुझे कुछ भी संशय नहीं था कि जब मेरी मां उसे देखेंगी तो बिना मोहित हुये नहीं रहेंगी। इसलिये मैं एक मास समाप्त होते ही शान्त और मिलनोत्सुक हृदय को लिये मसूरी को चला। लखनऊ में गोपाल भी साथ हो गये। दूसरे दिन हमलोग देहरादून उतरे और शीघ्र ही मसूरी को रवाना हो गये। मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा जब लन्दौर के पास पहुँचते ही मैंने इन्दु और उषा रानी को

सड़क पर इधर उधर घूमते देखा। वे निश्चय मेरी प्रतीक्षा में ही आई थीं क्योंकि मैंने अपने पहुँचने के समय का संकेत कर दिया था। उन्हे देखते ही हम दोनों घोड़ों से उतर पड़े और वे हमारी ओर बढ़ीं। मेरी आंखों ने इन्दु की आंखों को पाकर और कुछ भी देख न सकीं, वह यात्रियों से भरा राजपथ, वह पर्व्वत श्रेणियों का सुन्दर दृश्य, गोपाल और उषा रानी, मानोक्षण भर के लिये वहां थे ही नहीं, मानो युग बीत गये और हम एक दूसरे को देखते, हृदयालाप करते रह गये। उसके लाल कमल के समान गाल, उसकी नीलाकाश की गम्भीरता रखने वाली हंसती आंखें, उसके सुडौल शरीर की मोहकता, सभी प्राकृतिक सौन्दर्य्यों का शिरोमणि हो रहे थे। वह तुरत सम्भल गई और कुछ झेपती सी हाथ बढ़ाये आगे बढ़ आई ओर बोली, "ऐ पूषण !"

मैंने उसके हाथ को दृढ़ता से थाम्भा और धीरे २ कहा "मेरी रानी ! मेरी रानी ! कैसी सुन्दर हो !"

उसने भी धीरे से कहा "मेरे प्राण ! अभी छोड़ो, गोपाल से मिलूं।"

इसके बाद हमलोग बारी २ एक दूसरे से मिले और तब उस होटल की ओर चले जहां मेरे लिये कमरे पहलेसे ही ठीक हुये थे। वहां जान बूझकर गोपाल उषा रानी के साथ पीछे पड़ गये और मुझे और इन्दु को दो एक क्षण का एकान्त मिल गया और इन्दु ललित भावभङ्गी और पूर्ण आत्म-सम्पर्ण के साथ, मेरे बाहु पाश में आगई। पाठक ! क्या तुमने कभी इस शरीर, इस संसार के पूर्ण विस्मरण के सुख का अनुभव किया है ? यदि नहीं तो हमारे उस समय के सुख का तुम्हे अनुमान नहीं हो सकता और मैं तो वर्णन ही नहीं कर सकता।

तब वे सुन्दर और सुखमय दिन प्रारम्भ हुये जिन्हे मैं आजीवन

भूल नहीं सकता, जो इस दुर्दिन में भी जब संसार मेरी दृष्टि के सामने तितर बितर हुआ जाता है, जीवन की नीव ही उखड़ी जाती है, मेरे हृदय में नया धैर्य्य, नया विश्वास देने का प्रयत्न करता है। इन्दु ने मुझे नाच सीखने पर बाध्य किया; और मुझे निपुण बनाने के लिये मेरे साथ रिंक पर घण्टों नाचती और मुझे निपुण होते देख कर कैसी मधुर हंसी हंसती। उधर उषा गोपाल के साथ नाचती और गोपाल के भद्देपन पर चुटकियां लेती। गोपाल—तुम भूले न होगे। कितनी वार मिस्टर और मिसेज़ वेस्ट पार्टियां देते, कभी पिक-निक को जाते, और हम दोनों निश्चय बुलाये जाते। युरूपियन और हिन्दुस्तानी दोनों ही निमंत्रित होते, और इन्दु किसी न किसी रीति से मेरे पास कुछ समय निश्चय बिताती। यद्यपि अब भी पार्टियों में वह बराबर मेरे साथ ही रह न सकती थी, तथापि अब मेरे हृदय में कोई तूफान नहीं उठता था। हां, कभी २ केवल हमी चार, इन्दु, उषा, मैं और गोपाल दिन २ भर की सैर को निकल जाते, कभी प्रपातों को देखने, कभी जंगलों की सैर करने, कभी शिकार खेलने के लिये, और तब मुझे इन्दु के साथ एकान्त मिल ही जाता, जिसे मैं उस के चरणों केपास सुन्दर हरे घास पर लेट कर, उसके नीले गम्भीर नयनों से नीलाकाश की तुलना करता, और उन्हेंही श्रेय देता, कुछ बीनते हुये उसके सुन्दर निपुण करों का मिलान निकलते हुये स्निग्ध पल्लवों से करता; और उन्ही को श्रेष्ठ समझता! कभी उसे देखते २ वह प्रपात की आवाज़, मधुर वाद्यध्वनि में परिणत हो जाती, कभी हंसते हुये चन्द्र के किरणों की हंसी उसकी मधुर मुस्कान के सामने फीकी पड़ जाती।

इन अन्धकारमय दिनों में उन दिनों की याद आने पर मैं अपनी लेखनी को न रोक सका, गोपाल! क्षमा करना। किन्तु

कहो तो; यह दैव का कौन सा न्याय है कि वह इस मेरे विशुद्ध सुख को भी सहन नहीं कर सका? मैं लोक के ऐश्वर्य्य को तिलाञ्जली देने में नाहीं नहीं करता, मैं स्वर्ग सुख का भी लोलुप नहीं था—मैं तो उसी नयनालाप से सन्तुष्ट था—फिर यह कोप क्यों?

एक दिन की बात मुझे और बातों से स्पष्टतर याद है। उस दिन मैं इन्दु के साथ अकेले ही निकल पड़ा था। पास के जंगलों में घूमते २ बहुत दूर चले गये और इन्दु के स्वेदयुक्त सुन्दर मुख को देख कर मैंने जान लिया कि यह थक गई है। विश्राम के योग्य कोई स्थान पाने की इच्छा से मैं इधर उधर देखने लगा। पास में ही किसी छोटे झरने की आवाज़ सुन पड़ी और मैंने कहा

"प्रिय, तुम थक गई हो, चलो उस झरने के पास विश्राम करें"

"हां, पूषण, मैं थक गई हूं, चलो"

मैंने उसे गोद में उठा लिया; और उसने मेरे मुख को चूम लिया। झरने के पास ही एक स्वच्छ शिला खण्ड था, जिस पर मैंने उसे लिटा दिया। अपनी जेब से छोटे बिस्कुट के डिब्बे को निकाला और गले से पानी के बोतल को उतारा। अपने कोट को लपेट कर उसके शिर के नीचे रख दिथा। एक बिस्कुट उसके मुख में देते हुये मैंने कहा,

"इन्दु! मैं तुम्हे बराबर कष्ट देता हूं। इतनी दूर तुम्हे घसीट लाना ठीक नहीं था।"

"मधुर भाषी! न तुम्हारा कसूर है, न मेरा। हृदय के उमङ्ग में समय और दूरी का पता ही न चला।"

मैंने उसके मुख में दूसरा बिस्कुट दिया! उसने कहा "अजी, यह क्या? तुम नहीं खाते?"

"तुम्हे खिलाने ही से मेरा हृदय भर जायगा।"

"क्या खूब! एक बिस्कुट मेरे हाथ में दीजिये।"

मैंने डिब्बा बढ़ा दिया। उसने एक बिस्कुट निकाला और और मुझे पास बैठने को कहा। मैं शिला के पास घुटने टेक कर बैठ गया और वह मुझे खिलाने लगी, और मैं उसे। खाना पीना हो जाने पर मैंने कहा, "प्रिय! अब कुछ देर सो जाओ, तब थकावट दूर हो जायगी।"

इन्दुने कहा, "तुम भी किसी चट्टान पर लेट जाओ।"

"नहीं प्रिय! मैं तुम्हारी रखवारी करूंगा।"

मैं कह ही रहा था कि उसकी आंखें झिप गईं और श्वांस गहरे चलने लगे। मैं उसे देखने लगा। इतने दिन साथ रहने पर भी उसे देखने की इच्छा की तृप्ति नहीं हुई। अहा, उन बड़ी २ आंखों की बन्द पलकों के केश स्वर्ण की तरह चमक २ कर उन गुलाब की तरह खिले गालों पर कैसा जादू भर रहे थे! वे बिम्बाधर, नींद में भी सहज मुसकान से मण्डित, मानों मेरे अधरों को निमन्त्रण दे रहे थे। उस घने पेड़ों की घनी छाया की गोधूली में, वह सुन्दर, उज्ज्वल शरीर विद्युत्-शलाका की तरह चमक रहा था और वे यौवन के उभार में बढ़ते हुये स्तन मधुर श्वास प्रश्वास से ऊपर उठते और गिरते, मेरे हृदय में अपूर्व उथल पुथल मचाने लगे। मैंने अपनी आंखों को बरबस दूसरी ओर हटाया, किन्तु वे घूम फिर कर उस सौन्दौर्य्य की राशि पर आजुटतीं; मेरे बाहु उसे अङ्क में लेने के लिये स्पन्दित होने लगे, मेरे शरीर में ऐसी कंपकंपी शुरू हुई, मेरी आंखों में ऐसा तनाव हुआ, और मेरे मुख की विकृति मुझे ऐसी स्पष्ट मालूम हुई कि मेरा अन्तः करण चकरा उठा। इस नई, अज्ञात अवस्था को देखकर, मैं, वहां से हटने के लिये, दृढ़ निश्चय कर, इधर उधर घूमने लगा। किन्तु जैसे २ उस शिला के पास आता, मेरी अवस्था और बिगड़ जाती। इसलिये मैं कुछ ही दूर पर

स्थित एक लता की ओट में चला गया और वहां पड़े एक शिला खण्ड पर बैठ, अपने आवेश को रोकने का प्रयत्न करने लगा। इसी समय एक मधुर "पूषण, "पूषण", सुनाई पड़ा। मैंने कहा 'इन्दु! इधर आओ।" मेरी आवाज़ कैसी बेसुरा, कर्कश सुन पड़ी?

इन्दु ने कहा, "उस अन्धेरे में क्या करते हो? यहां आओ।" मैंने कहा, "नहीं, तुम्ही आओ!"

"बात कहो, क्या है?"

"इन्दु....."

"हां"

"इन्दु.....मैं....."

"हां"

"अपनी पत्नी चाहता हूं।"

"प्रियतम! धैर्य्य धरो।"

"असम्भव हो गया! तुम इतनी सुन्दरी क्यों हुई?"

"तुम्हारे लिये"

"प्राण! आओ।"

"मैं तो तुम्हारी हूं ही, धैर्य्य धरो।"

"नहीं, आओ।"

वह कुछ न बोली। वह आकर घुटनों के बल बैठ गई। उसके भी सब अङ्ग वैसे ही कांप रहे थे, और आंखें चढ़ गई थीं

उसने कहा, "प्रिय पति! मैं तुम्हारी हूं, जो जी आवे करो, किन्तु जब इससे तुम्हारी आंखों में तुम्हारी पत्नी का मान घट जावे तो थोड़ा धैर्य्य से काम लो।"

ओह, मेरा हृदय कैसा भाथी के समान चल रहा था, उसे अङ्क में खींच लेने के लिये कैसे अङ्ग प्रत्यङ्ग व्याकुल थे। किन्तु उस सुनसान बन में, वह कैसी बलिदान की मूर्ति सी लगी, कैसी पतली दुबली असहाय बालिकासी प्रतीत हुइ, उसके पूर्ण आत्म-

समर्पण के भाव से रञ्जित उसकी विस्फारित नयनों में कितना प्रेम, विश्वास, और दर्द छलक रहे थे कि मेरा ज्वर मानो क्षण भर में काफूर हो गया

मैं चट उसके पैरों पर जा पड़ा और कहा "देवी ! सचमुच तुम देवी हो। मैं तुम्हारे अयोग्य हूं—तुम कैसे मुझे प्यार करने लगी ?"

वह हंस कर बोली, "इसी से कि तुम असहायों पर ज़ोर नहीं कर सकते, और सभी की इज़्ज़त के रक्षक हो !"

मैंने उसके कर को चूम लिया और उसने मेरे होठों का चुम्बन किया। तब हम खुशी २ घर फिरे और राह में ही तै हो गया कि आज ही मैं मिस्टर वेस्ट से विवाह की चरचा करूं। मैंने अपने संशय को प्रत्यक्ष किया,

"रानी ! क्या तुम्हारे माता पिता मुझे अपना दामाद बनाना चाहेंगे ?"

इन्दु ने कहा, "क्यों नहीं, पूषण ? मैं तो तुम्हे चाहती हूं, तो मेरा विवाह दूसरे के साथ कैसे होगा ?"

"मैं जो हिन्दुस्तानी हूं।"

"मैं तो इसका कारण नहीं कह सकती, किन्तु मैंने बालकपन से ही अपने को हिन्दुस्तानी ही समझा है। तुम जानते ही हो, मैं इन्दु ही कहलाना पसन्द करती हूं। यदि तुम्हे पति बनाने में मुझे झिझक नहीं होता, तो दूसरों को क्या ?"

"मधुर भाषिणी" कहकर मैंने उसके कोमल कर को प्रेम से दबाया और प्यासी आंखों से उसके सुन्दर होठों को देखा। वह हंस कर मेरे गर्दन में हाथ डाल कर मेरे सर को नीचे करती बोली, "लो,"।

होटल पहुचने पर मैंने देखा कि मिस्टर वेस्ट कहीं गये हैं किन्तु मिसेज़ वेस्ट वहां हाजिर हैं। इन्दु सीधे अपने कमरे में

चली गई और मैं बैठने के कमरे में मिसेज़ वेस्ट के पास गया। उन्होंने मुझे बहुत आदर से पास में बिठाया और कहा, "आशा करती हूं कि सैर मनोरंजक था। इन्दु कहां है ?"

मैं "वह अपने कमरे में चली गई। हां, आपकी कृपा से हम लोगों ने सुन्दर जङ्गलों का खूब सैर किया। मिस्टर वेस्ट नजर नहीं आते ?"

मिसेज़ वेस्ट : "वे अभी तो पास ही के दूकान पर बुरूट और तम्बाकू लाने गये हैं। शीघ्र ही लौटेंगे। अब आप चाय पीकर जाइयेगा।"

मैं—"मिसेज वेस्ट ! मुझे कुछ निवेदन करना है।"

मि० वे०— हां, हां, कहिये।"

मेरी जिह्वा तालू में सटने लगी। मैंने कहा

"मैं—मैं—मैं जानता हूं कि यह—धृष्टता—किन्तु आपकी उदारता—मेरा हृदय—"

इन्दु की माता जोरों से हँस उठी— "मिस्टर सिंह ! मालूम होता है कि आपने मेरी कोई चीज चुराई है।"

इन शब्दों की ऐसी चातुरी थी, कि मेरी जिह्वा खुल गई मैंने कहा, "मिसेज वेस्ट ! निश्चय मैंने आपका अमूल्य रत्न चुराया है और अब आपके आशीर्वाद का भिक्षुक होकर आने की धृष्टता करता हूं। मैं इन्दु को प्यार करता हूँ। बिना इन्दु के मेरा जीवन निरर्थक है। मेरा संसार इन्दुमय है। माँ, मुझे निराश न कीजिये।"

मि० वे०— "क्या इन्दु से बातें की है ?"

मैं— "जी, हां। आपके और मिस्टर वेस्ट के आशीर्वाद की ही कमी है।"

मि० वे०— बेटा, मैं इसी दिन की प्रतीक्षा में थी। क्योंकि जिस दिन तुम पहले पहल आये, उसी दिन मैंने समझ लिया था कि इन्दु दूसरे की न होगी। मेरी इन्दु ऐसी ही है।"

इसी समय मिस्टर वेस्ट "प्यारी" कहते अन्दर घुसे किन्तु मुझे देखकर रुक गये। मैंने उठकर अभिवादन किया और उन्होंने हाथ मिलाकर मुझे बैठने को कहा।

मिसेज वेस्ट ने कहा, "आर्थर! ये तुमसे कुछ बातें करना चाहते हैं। मैं कुछ काम से जाती हूँ।" और वह अपने कमरे में चली गई।"

मिस्टर वेस्ट ने कहा "क्या है, चन्द्रिका?"

मैंने अपने प्रेम का यथा शक्ति वर्णन किया, और कहा, "महाशय! यद्यपि गुणों से मैं हीन हूँ और इन्दु के योग्य नहीं हूँ, तथापि मैंने उसे अपनाने का जीवन का ध्येय कर लिया है और वह दया करके मुझे ऊपर उठाने को तैयार है। मैं वादा करता हूं कि उसे सुखी करना ही मेरे जीवन का एक मात्र उद्देश्य होगा।"

मिस्टर वेस्ट ने कहा, "यह तो अचानक बात उठी! चन्द्रिका! क्या जानते हो, क्या मांग रहे हो?"

मैं— "महाशय! आपके अमूल्य रत्न को मांग रहा हूँ।"

मि० वे०— "चन्द्रिका! तुम मेरे प्राण को मांग रहे हो! (आपही आप) इन्दु, अभी बच्ची है। फिर यह जात पांत वाला बखेड़ा—गोरा—काला वाला बखेड़ा—ओह!"

मैं— "महाशय! इन सन्देहों से दो जीवनों को नष्ट न कीजिये!"

मि० वे०— "चन्द्रिका! ये छोटी बातें नहीं है! फिर, इन्दु सुख में पली है क्या तुम उसे सुखी रख सकते हो? मैं तो केवल

यही जानता हूँ की तुम हमारे कौलेज के एक बुद्धिमान और नेक लड़के हो !"

मैं— महाशय ! मैं दरिद्र नहीं हूँ। मेरी जिमिन्दारी गृहस्थी से पचीस तीस हजार की सालाना बचत होती है, और मैं उसका अकेला स्वामी हूँ। इन्दु के भोग के लिये कुछ कमी न होगी किन्तु धन से सुख तो होता नहीं।"

मि० वे०— "अभी तुम बच्चे हो; जब बाल बच्चे वाले हो जाओगे तो धन की जरूरत जान जाओगे। खैर, इन्दु के स्त्री धन के लिये क्या विचार किया है ?"

मैं— "महाशय ! अब तो सभी उसी का होगा !"

मि० वे०— "तुम हिन्दुओं में स्त्रियों का तो कुछ होता नहीं"

मैं— "सभी दे दूंगा !"

मि० वे०— बड़ा मूर्ख लड़का है ! कम से कम आधी देनी होगी ! क्या यह विचार किया है कि किस धर्म्म के अनुसार विवाह होगी ?

मैं— नहीं यह तो प्रश्न ही नहीं उठा

मि० वे०— इसी से तो कहा की दोनों ही बच्चे हो। अच्छा इन्दु को बुलाओ, साक्षात हो जाय।"

मैं तेजी से इन्दु के कमरे की ओर चला। द्वार बन्द देखकर खटखटाया। इन्दु ने भीतर से कहा; "आओ।"

जब मैं भीतर घुसा तो इन्दु को जङ्गले के पास खड़ा द्वार की ओर उत्सुकता से देखते पाया। मेरे प्रसन्न मुख को देखकर वह स्वस्थ हो गई और मैंने उसे बातों का संक्षिप्त वर्णन दे दिया। तब वह मेरे साथ बैठक में आई। इस समय मिसेज वेस्ट भी वहां फिर आई थीं।

इन्दु के पिता ने उससे कहा, "इन्दु ! क्या तू यह विवाह चाहती है ?"

इन्दु का मुख लज्जा से ऐसा सुन्दर हो गया कि मैं उसकी ओर एकटक देखता ही रह गया। उसने धीरे से कहा "हां डैडी।"

मि० वे०—"क्या तुमने सब बातों पर सोच विचार किया है ?"

इन्दु ने अब मेरी ओर आत्मीयता और गर्व्व से देखा।

मि० वे०— "देखो, रंज न होना किन्तु पिता के हैसियत से मुझे सभी बातें स्पष्ट कर देना चाहिये। मैं चन्द्रिका की निन्दा नहीं करने बैठा हूं। यदि तुम्हें इस विवाह में सुख होगा, तो मैं बाधा नही डालूंगा। तुम यूरुपियन हो, सुन्दरी हो, तुम चाहो तो तुम्हे अपनी जाति के बहुतेरे सुन्दर, सुशील, धनी युवकों में मन का चुनाव करने का अवसर मिल सकता है। उस हालत में, जैसे सभी यूरूपियनों का जीवन सुख से अपनी जाति के सन्मान के साथ व्यतीत होता है, तुम्हारा भी होगा। यदि इसके विपरीत चलोगी, तो लोकाचार को बड़ा धक्का लगेगा। और तुम्हारा समाज तुम्हारे प्रतिकूल हो, तुम्हे गढ़े में ढकेलने का प्रयत्न करेगा। उधर चन्द्रिका का समाज तुम्हारे समाज से भी कट्टर है। वह तुम दोनों को कदापि अपनी गोद में नहीं लेगा। इस हालत में तुम दोनों ही सब कुछ खो बैठोगे। छोटी २ त्रुटियां बड़ी २ मालूम पड़ने लगेंगी और सम्भवतः तुम्हारे सुख में बाधा बनने लगेंगी। क्या इस अज्ञात पथ पर चलने का तुम्हे साहस है ? मेरी समझ में तुमने इस बात पर बिचार नहीं किया है।"

इन्दु के मुख पर गर्व्व भरी मन्द मुसकान नाचने लगी और स्नेह भरे नयनों से मुझे निहारती, सिर को ऊँचा कर, वह बोली,

"डैड्डी ! इस विषय में आप निश्चिन्त रहिये। जिस दिन पूषण मुझे भीड़ से निकाल कर घर लाये, उसी दिन से मैं सोच रही हूं और मेरा निश्चय आजका नहीं है। आप जानते ही हैं, मैं अपने समाज में बहुत कम मिला करती हूं—और उसका यही कारण है। समाज का विरोध का मुझे कुछ डर नहीं है।"

मिस्टर वेस्ट ने कहा, "होप, तुम्हारा स्वभाव मैं जानता हूँ। जब तुम्हारी ऐसी धारणा है तो मुझे और कुछ कहना नहीं है। चन्द्रिका, इधर आओ।" उन्होने इन्दु के हाथ को पकड़ कर मेरे हाथ मे देते हुये कहा, "यह मैं अपने प्राण को तुम्हे देता हूँ। तुम्हे सुख हो" इतना कहते २ उनकी आवाज भर गई।

मैंने कहा, "महाशय ! मैं आपको कैसे धन्यवाद दूं ! जब तक मेरे तन में प्राण है, इन्हे सुख देना ही मेरा कर्त्तव्य होगा। इन्दु ! मां से आशीर्वाद लो।" और हम दोनों मिसेज वेस्ट के पास घुटने टेक कर बैठ गये। उन्होने आशीर्वाद देते हुए कहा, "आर्थर ! देखो तो इनकी कैसी सुन्दर जोड़ी लगती है।"

इसके बाद तै पाया की काशी वापस जाकर विवाह का दिन अगले जाड़े में ठीक किया जाय और हमलोग आपस में तै करलें कि किस रीति से बिवाह होगा।

एगारहवा अध्याय

मेरी आत्मकथा

जब गर्मी की छुट्टियों के दिन समाप्त होने पर आये तो हम लोग सभी बनारस वापस आ गये। इन्दु, मैं और गोपाल तीनों ने ही अपनी परीक्षाओं में औवल दर्जा पाया था। इन्दु ने स्थिर किया कि अब वह कालेज का पढ़ना बन्द कर देगी क्योंकि "अब तो मुझे हिन्दू गृहस्थी और हिन्दू आचार विचार सीखना है।" यह कह कर उसने विवाह की रीति के झगड़े को एक ही वाक्य में खतम कर दिया। मैंने उसे एक बात भी इस विषय में नहीं कहा था, किन्तु ऐसा ही उसका हृदय था। मुझे भी तो एम० ए० पढ़ने की आवश्यकता न थी, किन्तु गोपाल और इन्दु के सहवास के लिये मैंने एम० ए० में नाम लिखा लिया। इस तरह से वे सुखमय दिन जो मसूरी में शुरू हुए, बनारस में भी जारी रहे।

अब तो मैं खुलेआम भावी दामाद के आदर को पा रहा था। और हमारे और इन्दु के आने जाने और मिलने में कोई प्रतिबन्ध न रह गया। इसलिये हम प्रतिदिन कहीं न कहीं घूमने जाते, कभी घोड़ों पर, कभी साईकिल पर, कभी नाव पर और आनन्द से हृदय छलक पड़ता। ऐसे आनन्द के समय बज्रपात हुआ और मेरा सुख सदा के लिये बिदा हो गया। अब वह घटना प्रणाली आरम्भ हुई जिसने आज मुझे जीवित रहने पर भी मुरदा बना दिया है।

एक दिन मैं प्रातःकाल के नित्य क्रियाओं से छुट्टी पाकर अपने प्रतिदिन के सुख स्वप्न में निमग्न होने वाला ही था कि डाकिया आकर एक पत्र मेरे हाथ में रख गया। न जाने क्यों, मैं इस पत्र

को देखते ही काँप उठा और मेरे मन में दुर्भावनायें उठने लगीं। पत्र मेरी माता की ओर से था। उसमें लिखा था :—

"तुम्हें देखे बहुत दिन हो गये। देखने को बहुत इच्छा हो रही है। मैं वृद्धा हुई। कब मेरी खोज हो जाय, कुछ ठीक नहीं। इससे जहाँ तक शीघ्र हो सके मुझे दर्शन दो।"

मैं अपनी माता के स्वभाव को भली-भाँती जानता था। जहाँ बड़े धीर मनुष्य भी अधीर हो उठते थे, वहाँ भी उनका हृदय स्थिर ही रहता था। उनके स्वस्थ रहते ऐसे पत्र का आना असम्भव था। मेरा हृदय अज्ञात विपत्ति के भय से व्याकुल हो गया। मेरी आँखों से अश्रु बिन्दु टपक पड़े। कुछ देर तक उस पत्र को मैं पढ़ता ही रहा—मानो उसके अर्थ को समझ हीं नहीं पाता था। तब मैं बड़े वेग से उठा और अपने सामानों का बाँध-बूँध करने लगा। थोड़ी ही देर में मैंने सब सामान को ठीक कर लिया और टाईम टेबुल देखा तो मालूम हुआ कि १ बजे दिन के पहले कोई ट्रेन ही नहीं है।

अब तक तो तैयारी की धुन में मैं सब कुछ भूल गया था। किन्तु जब मैं अपनी कुर्सी पर बैठा तो दो प्रतिद्वन्दी भावनायें मुझ पर अधिकार करने लगीं। कभी तो मेरी माता की रुग्न, क्षीण, पीड़ित छबि आँखों के सामने नाचती; कभी वह मधुर मूर्ति जिसके नचाये मेरा हृदय नाचा करता, मेरे हृदय को पुनर्जीवित कर देती। इस अवस्था में मैं यह तय नहीं कर सका कि इस दुःख के समाचार को, और अपने भय को लिये इन्दु से मिलूँ या केवल पत्र द्वारा खबर दे दूँ। इसी समय मेरे दुर्बल हृदय के दुःखों को अपनाने वाले, दुर्दिन की घटाओं से व्याप्त अवसरों पर भी हँसने वाले, जिनके अभाव में मैं नहीं जानता कि मेरा जीवन कैसा रहता, वह तुम,

गोपाल मेरे कमरे में आये । आते ही तुमने पूछा, "चन्द्रिका, कि पूषण ?" किन्तु मेरे मलिन मुख को देखकर कहा, "क्या आज दुलत्ती लगी है ।" यह छोटी सी बात मुझे कैसे स्मरण आ रही है ?

तुम्हे देखकर मेरी आँखें भर आई और मैंने तुमसे विपत्ति की बात कह दी। तब तुम्हारा हृदय कैसा द्रवित हुआ और तुमनें माफी माँगकर मुझे कितना समझाया, कितना ढाढ़स दिया और मुझे इन्दु से बिदा हो आने और समाचार सुना देने के लिये भेजा। जब इन्दु ने इस समाचार को सुना तो वह उद्विग्न हो उठी और हृदय की पीर से उसका मुख सूख गया।

उसने कहा, "तुम्हारे दुःख से मेरा हृदय कैसा करने लगा। मैं एक बिनती करती हूँ । मुझे भी साथ ले चलो, मैं अपने सास की कुछ सेवा कर लूँ।"

यद्यपि मैं इन्दु के हृदय को भली भाँति जान गया था, तथापि एक युरोपियन सतरह वर्षीया बाला के मुख से ऐसे सेवा भाव का प्रस्ताव सुनकर मेरा हृदय आश्चर्यित और गद्गद भी हुआ। मैंने उसे छाती से लगा लिया और कहा,

"इन्दु ! यह तुम्हारे ही योग्य विचार है—किन्तु—

"पूषण ! इसमें किन्तु "परन्तु" की गुंजायश नहीं। क्या तुमने जिन हिन्दु धर्म की पुस्तकों को पढ़ने के लिये दिया है उनमें स्त्रियों का प्रथम धर्म पति सेवा और उसके बाद बड़ों को सेवा नहीं बताया गया है ? मैं तो मन से तुम्हारी पत्नी हूँ अब न जाने ऐसे सेवा का सौभाग्य फिर आवे या न आवे।

मैं उसे अपनी गोद में बैठाते हुये कहा, "प्रिये ! चलो—किन्तु माता पिता से तो पूछ ही लेना चाहिये।

तब हम दोनों हाथ में हाथ डाले मिसेज वेस्ट के बैठक में गये

और उनसे इन्दु ने सब बातें कह डालीं और मेरे साथ जाने की इच्छा प्रकट की। मिसेस वेस्ट ने कहा, "होप, जरा अपने पिता को तो बुला ला, बेटी।"

इन्दु शीघ्रता से अपने पिता के कमरे में गई और थोड़ी देर में मिस्टर वेस्ट को लिवा लाई। मिसेज वेस्ट ने उनको सब बातें समझा कर, कहा

"आर्थर, तुम इन्दु के स्वभाव को जानते हो। यह अपनी सास की सेवा करने जाना चाहती है।"

मि० वे०— साधारणतः इसमें तो कोई अड़चन नहीं होती किन्तु शायद चन्द्रिका ने अपनी माता से इस विवाह की बात नहीं कही है। विचार यही करना है कि एकबएक इन्दु का वहां जाना उनके स्वास्थ्य के लिये कैसा होगा। मेरी दृष्टि में तो यही अच्छा है कि चन्द्रिका आगे जावे और पीछे से उनके खबर देने पर होप जाय।"

इन्दु ने मुझपर जिज्ञासा की दृष्टि डाला। मैंने उसके हृदय की बात समझ कर कहा, "प्रिय! बड़ों की बात माननी चाहिये। मैं तो तुम्हें अभी ले चलता, किन्तु शायद पहले से खबर न रहने से तुम्हें तकलीफ होने लगे।"

इन्दु ने कहा, "पूषण! क्या कहते हो! जहाँ तुम रहोगे वहां मुझे कैसे तकलीफ हो सकती है। मुझे तो वहीं सुख होगा।"

मैंने कहा, "इन्दु! क्या मैं तुम्हारे हृदय को नहीं जानता? मैं भी क्या तुमसे अलग रह सकता हूँ? यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो तैयार हो जाओ—चलो।"

मि० वे०—होप! बच्चों की तरह काम न करो! एक दो दिन पीछे जाने से कोई नुकसान तो नहीं है? तुम्हारी गाड़ी कब है चन्द्रिका?"

मै०— "एक बजे ।"

यह कह कर मैंने घड़ी को जो देखा तो १२ बज के १५ मिनट हो गया था। मैंने इन्दु से कहा, क्या तुम्हारी तैयारी १५ मिनट में होगी ?'

इन्दु ने कहा, "क्यों नहीं ? छूटी भटकी चीजें पीछे चली जायेंगीं।"

मिसेज वेस्ट ने कहा, "प्रिय बच्ची ! अभी चन्द्रिका को जाने दो। यह जाकर वहां की स्थिति देखकर पत्र वा तार भेजें तो चली जाना।"

मैंने इन्दु की ओर देखा। वह कुछ अप्रतिभ सी होकर बोली "अच्छा पूषण ! जाकर भूलना मत कि मैं छटपटाती रहूंगीं। शीघ्र ही आने के लिये तार भेजना।"

तब मैं इन्दु के माता पिता से बिदा हुआ और इन्दु मुझे पहुंचाने फाटक तक आई।

बारहवाँ अध्याय

मेरी आत्मकथा

क्या एक ही हृदय में एक ही साथ हर्ष और दुःख स्थान पा सकते हैं ? क्या ज्योति और अन्धकार का सहवास हो सकता है ? औरों की बात तो मैं नहीं कह सकता किन्तु जब मैं इन्दु से विदा लेकर रवाना हुआ उस समय मेरी हालत विचित्र हो रही थी। सफल मनोरथ प्रेम का उन्माद वियोग की टीस से खण्डित होकर भी हृदय में एक कटु-मधुर अवस्था पैदा कर रहा था, किन्तु साथ ही साथ ऐसा प्रतीत हो रहा था कि रूलाई दूर नहीं है, उमङ्ग के पैरों को पकड़ कर चिपट गई है। पद २ पर उन अन्तिम पलों की याद आती थी, जब इन्दु कभी हँसती, कभी खिन्न होती, कभी सकुचाती, मुझे विदा करने फाटक तक आई। वह आत्म-बिसर्जन जिससे हमारा आलिङ्गन सार्थक हुआ था; वह सहज, सरल, सतृष्ण दृष्टि जिसमें हम,रे अन्तःकरण के गर्भस्थल में निगूढ प्रेम प्रत्यक्ष दीख पड़ता था; वह विशुद्ध, निष्कपट, निर्विकार चुम्बन जो परस्पर आत्मविसर्ज्जन का साक्षी बना था, मेरे मानसपट पर बार २ नाचने लगा। किन्तु साथ ही साथ बीच में माता के रुग्न शय्या की तस्वीर खिच जाती थी और द्वैध भाव से भरकर हृदय विमूढ हो जाता था।

मैं फाटक पर ही इन्दु को छोड़कर बिदा हुआ था। कुछ दूर जाकर मैंने फिर कर देखा तो वह वहीं पर खड़ी मुझे एकटक निहार रही थी—मानो उसे अपने तन की भी सुधि न हो। एकबार हृदय चाहा कि दौड़कर फिर जाऊं किन्तु समय का अभाव था,

इससे मैंने रूमाल हिलाकर और चूमकर अन्तिम विदाई ली और घूमकर तेजी से चल पड़ा और चाह रहते हुये भी फिरकर नहीं देखा। जब मैं बोर्डिङ्ग हौस पहुंचा तो देखता क्या हूं कि ऐक्के पर मेरे सामान लद चुके हैं और गोपाल व्यग्रता से इधर उधर चहल क़दमी भी कर रहे हैं। मुझे देखकर वे बोले

"भला पहुंच तो गये! समय बहुत कम है, एक्के पर बैठ जाओ। मैं स्टेशन तक चलूंगा, रास्ते में बातें होंगी।"

मैं फौरन एक्के पर बैठ गया और गोपाल मेरे बगल में आरहे। एक्का रवाने हुआ। मैंने इन्दु के विचारों की सराहना की और वे मेरे पीठ को थपथपा कर बोले, "भगवान जोड़ी को सुखी और चिरंजीवी बनावें।"

मैंने कहा, "भइया! आज का दिन विचित्र है—सुख और दुःख साथही साथ आये हैं।"

गोपाल ने कहा, "घबराना ठीक नहीं। मां अच्छी हो जायेंगी। हां, यह दूसरी बात है कि तुम्हारे इस प्रस्ताव को वह पसन्द न करें।"

मैं—नहीं जी! मुझे तो इसपर विश्वास है, कि मेरी मां मेरे सुख की राह में अड़चन न डालेंगी। हां एक बात हो सकती है, वह इन्दु को देखना चाहें। इन्दु मेरे साथ ही आना चाहती थी कि मां से भेंट हो जाय किन्तु उसके पिता ने कहा कि इस बीमारी की हालत में जब तक मां स्वयं न खोज करें, इन्दु को लेजाना ठीक नहीं।"

गोपाल :— मैं भी यही ठीक समझता हूं।

मैं— तब यह बात तै है कि यदि मां इन्दु से मिलना चाहेंगी तो मैं तुम्हारे और इन्दु के पास तार दूंगा और तुम कृपाकर उसे मेरे पास पहुंचा देना। तुम यदि पहुंचने का समय तार से जता दोगे तो मैं स्वयं स्टेशन पर आऊंगा।

गोपाल :— हां, हां, मैं निश्चय पहुंचा दूंगा।

इतने में हम स्टेशन पहुंच गये और झट टिकट ले प्लैट फारम पर आ खड़े हुये। गाड़ी आने में देर न हुई और मैं गोपाल को बिदा करके अपने स्थान पर जा बैठा। जैसे २ गाड़ी दूर भागती गई, हृदयाकाश मानो एक निविड तिमिर से ढंकता गया और वे आनन्दमय मुहूर्त्त किसी पूर्व जन्म के स्वप्न की तरह प्रतीत होने लगे। हर्ष दुःख में, आशा, निराशा में, शान्ति उद्वेग में बदल गये। न जाने क्यों आगामी विपत्ति की आशङ्कायें बार २ उठने लगीं। हृदय को बार २ समझाने पर भी कि मां अच्छी हो जायेंगी, इन्दु से फिर मिलन होकर जीवन सार्थक हो जायगा, मेरे हृदय में धैर्य्य नही आता था। तुम्हें जानना चाहिये कि मैं स्वभावतः न तो कायर हूं, न अधीर। किन्तु मै परिवर्तनशील संसार के दिये हुये दानों को बराबर आनाकानी किये बिना ही अग्रसर होकर लेता आया हूं, चाहे वह दुःखमय हो, चाहे सुखमय। इस विस्तृत खेल को, जिसे हम जीवन कहते हैं, खेलने की निपुणता इसी में है कि यहां जैसा जब आवे उसका सामना करने को हम नित्य प्रति तैयार रहें। उस समय की बातें याद करके मैं यही कह सकता हूँ कि कीट, पतङ्ग, पशु-पक्षि की तरह मानव हृदय भी आगामी विपत्ति का आभास पहले ही पा जाता है।

यथा समय गाड़ी आकर मेरे गांव के स्टेशन पर रुकी और मैं कुली की तलाश में प्लैट फारम पर उतरा। देखता क्या हूँ कि मेरे पिता के समय का बूढ़ा नौकर कलुआ व्यग्रता से इधर उधर डब्बों में झांक रहा है। मैंने आवाज दी और वह दौड़ता आया।

मैंने पूछा, कल्लू! समाचार कैसा है?"

उसने सलाम करके कहा, "आगये भइया! तो अच्छा ही है। सामान उतार लूं।"

सामान उतारे गये और हम घर को रवाना हुये। मैंने कलुआ से फिर पूछा,

"अम्मा को क्या तकलीफ है, कल्लू ?"

कलुआ बोला, "भइया! मालिकिनि बूढ़ी हुईं उनकी तकलीफ का क्या कहना है? किन्तु तुम जानते ही हो, वह दुःखों को घोंट जाती हैं, मुह पर नहीं आने देतीं। इधर कुछ दिनों से वह घुलती जाती थीं। मैंने कईबार डाक्टर, वैद्य बुलाने का प्रयत्न किया, गुमाश्ता जी एक बार बूढ़े बैद्यजी को ले भी आये, किन्तु मालकिनि ने दवा खाने से इन्कार कर दिया। मुझे तो चिट्ठी लिखने नहीं आता नहीं तो कबका तुम्हे खबर मिल गई रहती। खत की बात कहने पर मालिकिनि कहने लगती "कलुआ! क्यों घबराता है? बच्चे को क्यों घबराया जाय? कुछ हो तब तो!"

मैंने कहा, 'क्या खाती पीती हैं?"

कलुआ बोला, 'तुम जानते ही हो, बरसो से वह एक ही शाम भोजन करती थीं। वह भी धीरे २ कम होने लगा था। कभी दूध, कभी दही, कभी फल ही खाकर रह जाती थीं। आजकल तो बहुत कहने सुनने पर साबुदाना खा लेती हैं।"

मैं - कल्लू! मुझे पहले खबर मिल गई होती! गुमाश्ताजी को किसी तरह खबर भेज देना चाहता था।"

इतने में मैं घर पर पहुंच गया। आज के आने में और पहले अनेक बार के आने में कितना भेद मालूम होता था! पहले जब कभी आया था चाहे मेरे आने की पहले से खबर हो वा नहीं, मां को निश्चय प्रतीक्षा करते सदर दरवाजे के अन्दर पाता था। वह हँस कर कहा करती थीं "जब तुम काशी छोड़ते हो, तभी मुझे खबर हो जाती है।" मातृ-हृदय बच्चे के लिये कितना उत्सुक रहता है! निश्चय वह बेतार का टेलीफोन-रिसीवर का काम करता है।

आज वह माता अपने अभ्यस्त स्थान पर आने में अशक्त होकर अपनी चारपाई पर मेरी बाट जोहती है ! मेरी आंखें अश्रु बिन्दुओं से भर आईं।

मैं दौड़ कर अन्दर दाखिल हो गया और सीधे मां के कमरे में चला गया। दासी के सहारे, मां उठकर बैठने का प्रयत्न कर रही थी। मैंने मना करते हुये, शिर को उनके पैरों पर रखते हुये, उन्हें अश्रुओं से सींचने लगा।

मां ने भर्राई आवाज़ में कहा, "बेटा, लाख बर्ष जीओ, भगवान तुम्हें सुखी करें। रोते क्यों हो, देखो मैं अच्छी हो रही हूं।" मैंने कहा, "अम्मा ! तुमने मुझे पहले खबर क्यों न दी ? मैं बड़ा कपूत हूं कि तुम्हारी ऐसी हालत में मैं तुम्हारे पास न रहा।"

मां ने कहा नहीं, "बेटा। कुछ बात भी हो, तब तो खबर दूं। तुम्हे तो अभी पढ़ना है। आओ बैठो।" और मुझे खींचकर अपनी गोद में बिठा लिया। फिर उन्होंने दासी से कहा, "सिबू की मां ! रजिया को कह बच्चे के लिये नाश्ता लाये।"

मैंने देखा, मां बहुत दुबली हो गई हैं। उनके मुख पर मुर्दनी सी छाई है और उन्हें बैठने में कष्ट हो रहा है। मैंने झट उन्हें लिटा दिया। अङ्ग स्पर्श से कुछ बुखार भी मालुम हुआ। मैंने दासी को पुकार कर कहा कि कलुआ को कह दे कि वैद्यराज और डाक्टर साहब को फौरन बुला लाये।

मां ने कहा "बेटा, कुछ खालो, आराम करलो, तब और बातें होंगी। ऐसे उतावले क्यों हो रहे हो ? मैं तो बूढी हुई, मेरे सब काम भगवान ने पूर्ण कर दिये—मेरे लिये इतनी सिर-खप्पी

क्यो ? अब तो एकही बात शेष है—तुम्हारे हाथों यह शरीर पार लग जाय !"

इसी समय रजिया नाश्ता की चीजें लेकर आई और एक मेज पर सज कर मेरे सामने रखदी। मां के बार २ आग्रह करने पर रुचि न होते हुये भी मैं खाने लगा। बीच २ में मैं मां को देखता और बीमारी की बात पूछता। मालूम हुआ कि एक मास पहले एक दिन मां को बुखार सा प्रतीत हुआ और भूख प्यास जाती रही पेट की क्रियायें गड़बड़ हो गईं। शरीर की शक्ति घटने लगी। दो दिन तीन दिन पर नित्य प्रति बुखार आने लगा। धीरे २ शक्ति घटते २ खाट पकड़ने की नौबत आ गई। अब मुझे बुलाने की आवश्यकता समझ कर मां ने पत्र भेजा था। फिर भी, मां ने कहा, कोई घबराने की बात नहीं। बुखार छूटते ही वह फिर चङ्गी हो जायेंगी। मैंने कहा, "अम्मा ! तुम अपनी बिमारी को बातों में उड़ाने की कोशिश न करो। अभी तुम्हे मेरे साथ रहना शेष ही है। तुम जल्द चंगी हो जाओ, मां।"

मां ने कहा, "हां, बेटा।" कहते २ उनकी आंखें झिपने लगीं। मैंने समझ लिया कि उनकी दुर्बलता इतनी बढ़ गई है कि इतना भी परिश्रम उनके लिये बहुत हो गया। जब उनका श्वांस ठिकाने से निद्रा में चलने लगा, मैं धीरे से उठा और आंगन में आकर रजिया को भेज दिया कि वह अम्मा के पास ठहरे और सिबू की मां को मेरे पास भेज दे। उसके आने पर मैंने सब बातें निश्चित रूप से जानने का प्रयत्न किया। उसने जो कहा उसका सारांश यह था कि इधर कितने दिनों से वे पिताजी की याद किया करती थीं, कई बार उनके स्वप्न देखे। कहा करती थीं कि उनके बिदा हुये बहुत दिन हो गये, अब अकेला नहीं रहा जाता, उनसे

मिलने के लिये जी घबराता है। उनकी आँखें जब तब आंसुओं से भर आया करती थीं। गृहस्थी के कामों में अरुचि हुई जारही थी। फिर जब बीमार पड़ीं तो खाना-पीना, दवा-दारु सब छोड़ बैठीं। सिबू की मां की हठ पर कभी २ साबूदाना खा लेतीं किन्तु दवा खाने के लिये किसी तरह तैयार न थीं। इन बातों को सुनकर मेरा हृदय बैठा जाता था। क्या माता से भी विछोह इतना जल्दी होने वाला है? क्या मां ने मेरी ममता एकबारगी भुला दिया? क्या जीवित रहने की इच्छा के बिना भी यह शरीर जीवन को रोक सकता है? मेरे हृदय में नैराश्य ने स्थान करना आरम्भ कर दिया। मैं धीरे २ बाहर आया और डाक्टर-वैद्य की राह देखने लगा।

थोड़ी देर में गुमाश्ता जी वैद्य और डाक्टर को लेकर पहुंचे। दोनों ही हमारे पुराने परिचित और घर के स्थायी चिकित्सकथे। कुशल प्रश्नों के बाद, उनलोगों ने कहा कि मां की बीमारी की खबर उन्हें मिली थी और वे आये भी थे किन्तु मां ने दवा खाने से इन्कार कर दिया। जिस दशा को मैंने देखा था उसे वर्णन करते मैंने कहा,

"आपलोगों को पूरा परिश्रम करना होगा। जिस तरह हो, मां को चंगा करना ही होगा।" मेरी आखें डबडबा आईं

बूढे डाक्टर ने कहा, "भइया, घबराओ नहीं। मनुष्य के हाथ में यत्न करना ही भर हैं। चंगा करना न करना भगवान का काम है। हमलोग तो कुछ उठा न रखेंगे।"

वैद्यजी ने कहा, "दवा खिलाने का भार तुम्हे लेना होगा।

मैं उठा और मां के कमरे में दबे पांव गया। देखा, मां जग गई हैं और सिबू की मा से धीरे २ कुछ कह रही हैं।

मैंने कहा, "अम्मा, जग गईं! कुछ भी नीन्द नहीं आई!"

मां ने मुसका के कहा, "नहीं, बेटा, सोई तो खूब लेकिन थोड़ी ही देर। आखिर कितनी देर सोऊं। रात दिन तो सोई ही रहती हूं।"

मैंने कहा, "अम्मा ! वैद्यजी और डाक्टर साहब आ गये है। मैं उन्हें लिवाये आता हूं। सीबू की मां, जरा अम्मा के कपड़े ठीक कर दो।"

मैं जाकर वैद्यजी और डाक्टर साहब को ले आया। दोनों ने बारी बारी परीक्षा की। अम्मा से प्रश्न भी किये। इसके अनन्तर हम बाहर फिर आये।

वैद्यजी ने कहा, "भइया, कमजोरी तो बहुत बढ़ गई है ज्वर भी काफी है।"

डाक्टर साहब ने कहा, "हृदय की गति भी ठीक नहीं है।"

वैद्य ने कहा, "यकृत भी कार्य ठीक नहीं करता।"

डाक्टर साहब ने कहा, "भइया, जरा मां की रुचि जान आओ कि वह किसकी दवा खाना चाहेंगी"

मैंने समझा ये अकेले में कुछ बातें करना चाहते हैं इससे मां के पास चला गया और पूछा, "अम्मा ! किसकी दवा शुरु हो ?"

मां ने कहा, "बेटा, तू मुझे दवा खिलाने पर क्यों रीझ गया ? क्या मेरी उम्र पर दवा खाई जाती है ? मुझे तो तुलसीदल और गङ्गा जल चाहिये। भगवान की इच्छा हुई तो उसी से अच्छी हो जाऊंगी।"

मैंने कहा, "अम्मा ! ऐसा न कहो। देखो ! अच्छी दवा पड़ी और भगवान प्रसन्न रहे, तो तुम जल्दी चंगी हो जाओगी, और मेरे खुशी का ठिकाना नहीं रहेगा।"

मां कुछ देर चुप रहीं। मैं बोलता गया, "मां ! अब मेरा पढ़ना समाप्त हो गया। अब मैं घर आऊंगा, तुम्हारी सेवा

करूंगा। क्यों मुझे इस सुख से वञ्चित रखना चाहती हो ?"

मां की आंखें डबडबा गई। और वह भारी आवाज में बोली "बेटा ! कैसी बातें सोचता है। मैं आराम हो जाऊंगी। तुझसे मुझे बहुत सुख मिलें हैं, और क्या चाहिये। किन्तु यदि तुझे इसी में सुख है कि मैं दवा खाऊं, तो खा लूंगी। वैद्यजी को मेरे पास भेज दे, यदि वे उस तरह से दवा बना दें जैसे मैं कहती हूं, तो मैं खालूंगी।"

मैं फिर बाहर आया और डाक्टर साहब और वैद्यजी को प्रतीक्षा करते पाया। मैंने वैद्यजी को सब बातें समझा कर कहा; "वैद्यजी ! अब मेरी मां का जीवन और मेरा सुख आपके हाथ में है।" वैद्य के चले जाने के बाद मैंने डाक्टर साहब से पूछा, "डाक्टर साहब ! क्या अम्मा का रोग असाध्य है ?"

डा० ने कहा, "बेटा, असाध्य तो नहीं, कष्टसाध्य कहा जा सकता है। किन्तु जब तक सांस है तबतक आस है।" यह कहकर डाक्टर साहब चले गये और मेरा हृदय अत्यन्त खिन्न होकर ऐंठने लगा। मनुष्य के वश में क्या है ?—जीवन ? सुख ? दुख ? खाना, पीना, सोना इत्यादि क्या कोई भी उसके वश में है ? आज अगर तुम खूब सोने की प्रतिज्ञा करो, तो तुम पावोगे कि तुम्हे सोने के समय ही अचानक यात्रा करनी पड़ जायगी, या ऐसी कोई घटना हो जायगी कि तुम्हें नीन्द ही नहीं आयेगी। क्या जब हुमायूं एक अबला की पुकार पर बहादुरशाह से युद्ध छेड़कर उसको हराया, कभी स्वप्न में भी सोच सका होगा कि वह एक दिन पहाड़, जङ्गल, मरुभूमि पर मारा २ फिरेगा ? नीतिकार कहते हैं "उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः" "दैव दैव आलसी पुकारा" इत्यादि किन्तु विचार तो करो कि कितने उद्यम सफल होते हैं और कितने

निष्फल और तब कहो कि यह सच है कि नहीं कि मनुष्य इस तरङ्गित प्रपञ्च-समुन्द्र पर काष्ठ के हीन टुकड़ों की तरह अज्ञात, अननुमेय शक्तियों का शिकार हुआ इधर से उधर मारा फिरता है। फरक यही है कि बिचारा टुकड़ा तो यह सोच नहीं सकता कि वह अपनी शक्ति से इधर उधर दौड़ा फिरता है किन्तु मनुष्य अपनी बुद्धि बल से यह दृढ निश्चय कर बैठता है कि जो कुछ हूं, मैं ही हूं; जो कुछ करता हूं मैं ही करता हूं। ज्ञानी कहते हैं कि संसार इसी अहं-भाव पर तो बना है, और इसी से तो सुख दुःख प्रतीत होते हैं। सत्य क्या है, कौन कह सकता है? किन्तु जहां प्रत्यक्ष भेरी बजा रहा है, वहां अनुमान पर खड़ा होना मूर्खता नहीं तो और क्या है? "हम", "तुम" पर बने हुए इस संसार में "हमारा" "तुम्हारा" कुछ भी मूल्य नहीं है।

दिन व्यतीत होने लगे! मेरे घर आने के हर्ष से हो, या दवा के बल से हो, मालुम होने लगा कि मां अच्छी हो रही हैं। एक दिन मां ने कहा

"बेटा, मुझे अब कुछ करना शेष नहीं रहा। तुम्हे पालकर बड़ा कर दिया, पढ़ा लिखा भी दिया, केवल तुम्हारी शादी नहीं कर सकी हूं। भगवान की कृपा हुई, तो वह भी देख लेना चाहती हूं।"

मेरे हृदय पर सांप लोटने लगा। कहीं अम्मा ने किसी लड़की को चुन तो नहीं रखा है? मैंने गोपाल से तो पूर्ण जोर देकर कहा था कि मेरी अम्मा मेर सुख की राह न रोकेंगी, किन्तु अब जब अपनी अर्जी पेश करनी थी तो हृदय, मातृ-हृदय पर चोट पहुंचाने और असफल-मनोरथ होने के भय से कांपने लगा। यह भी भय होने लगा कि अचानक इस बंश और जाति के नियमोंके

विरुद्ध प्रस्ताव के सुनने से कहीं बीमारी खराब न हो जाय। इसलिये; मैं बात उड़ाते हुये, कुछ हँस कर कहा,

"अम्मा, क्या अब मेरा प्रेम काफी नहीं है? अभी तुम्हे चंगा कर लूं, तब और कोई बात करूं।"

अम्मा ने मुस्करा कर कहा, "बेटा, मैं तो बार २ कहती हूं कि मैं चंगी हूं, तुम मानते नहीं। अब इससे और क्या चंगी होऊंगी?"

मैंने कहा, "अच्छा, मां, चलने फिरने, खाने पीने लगो तो जो जी आवे करना।"

इसी तरह मैंने उस दिन तो जान छुड़ाली, लेकिन मैंने यह भी समझ लिया कि अब यह प्रश्न हल होकर ही रहेगा। मैं सोचने लगा कि इन्दु की बात कैसे योग्य सौन्दर्य्य और माधूर्य्य के साथ मां के सामने लाई जाय। ऐसे तो हमारे प्रथम मिलन की अद्भुत बातें अम्मा को मालूम थी; किन्तु मैंने अपने प्रेम की बात अम्मा पर जाहिर नहीं किया था। बहुत सोच कर मैंने निश्चय किया कि इन्दु के आने की बात कह कर ही उसकी चर्चा मां के निकट आरम्भ किया जाय। इसलिये मैंने अपने दैनिक पत्र में इन्दु को सब बातें समझाते हुये प्रार्थना की कि तुम शीघ्र ही गोपाल के साथ आने का ठीक रखो और मेरे तार की प्रतीक्षा करो। यहां पर मुझे कह देना जरूरी है कि इन्दु के पत्र प्रतिदिन आते और मैं भी एक पत्र प्रतिदिन उत्तर में भेजता। वे पत्र कोई कागज के टुकड़े नहीं थे, उनपर लिखी हुई पंक्तियां कलम और स्याही की कारगरी नहीं थीं। वे परस्पर प्रेम मिलन थे, हृदय हृदयके आलिङ्गन थे।

एक दिन मैं अम्मा के पास बैठा सुअवसर देख रहा था कि इन्दु की बात छेड़ूँ, कि कलुआ आकर उस दिन की चिट्ठियां हाथ में थमाकर चला गया! इन्दु का पत्र खोलकर मैं पढ़ने लगा। उसने लिखा था कि वह तो आने के लिये कबकी तैयार बैठी है, और छटपटा रही है और तार की प्रतीक्षा कर रही है। इस पत्र में एक बुरी खबर थी कि लीओ फिर उसके घर पर आने वाला है और न जाने क्यों इस समाचार से उसका हृदय घबरा रहा है। मैं इस खबर से चिन्तित हुआ ही था कि अम्मा ने पूछा "बेटा, किसका पत्र है?"

मैंने कहा, अम्मा, ! क्या तुम्हें मेरे प्रोफेसर की पुत्री इन्दु याद है? मैंने उसका जिक्र तुमसे बहुत पहले किया था।"

"क्या वही लड़की जो भीड़ में भूल गई थी?"

"हां, अम्मा! अब तुम्हारी बीमारी की हाल सुनकर लिखती है कि मैं तुम्हारी मां को देखना चाहती हूं और उनकी सुश्रूषा करनी चाहती हूं।"

"अरे वह तो अङ्गरेज की लड़की न है?"

"हां, तो। लेकिन वह एकदम हिन्दुस्तानियों की तरह रहती है। सारी भी खूब पहनती है।"

"क्या उत्तर दोगे?"

"वही तो सोच रहा हूं।"

"यदि वह स्वयं आना चाहती है, तो रोकना अशिष्ट होगा।"

"वह रोगी-सेवा में निपुण है, जब कभी कोई विद्यार्थी अधिक बीमार होता है, तो वह सुश्रूषा में भाग निश्चय लेती है। रोगी के घर में गुलदस्ता लगाना, समय पर दवा पिलाना, बुखार का चार्ट बनाना, अपने जिम्मे रख लेती है।"

"बड़ी अच्छी लड़की है!"

"उसमें दया कूट २ कर भरा है ।"

"किन्तु, बेटा, इस घर में वह कैसे रहेगी ? उसे तकलीफ न होगी ?"

"क्यों ? उसे तो एक कमरा, एक गोसलखाना चाहिये इसका प्रबन्ध हो ही जायगा ।"

"अगर उसे तकलीफ न हो तो आवे ।"

यह कहते २ अम्मा की आंखें लग गईं । मैं भी दासी को नियुक्त करके बाहर गया और एक तार लिख कर भेज दिया । शीघ्र पुनर्मिलन की आशा से मन नांच उठा । उस दिन इस नवीन आशा पर नये २ हौसले की इमारतें बनती बिगड़ती रहीं, नये २ उमङ्गों के चित्र खिंचते रहे । प्रियतमा कभी नवीन आव भाव से आती, कभी चूमती, कभी आलिङ्गन करती, कभी रुष्ट होकर अलबेली चाल से चल देती । पर हाय मैं क्या जानता था कि मेरी दुनिया के चलाने वाले क्रूर हंसी को छिपा कर ऐसा नाटक तैयार कर रहे थे जिसे देखकर यह मूर्ख हृदय कराह २ कर चिल्लाता रहे—"अरे मृत्यु ! तू मुझे ग्रास क्यों नहीं करता ।"

उस दिन खाना खाने के समय मां की नीन्द न खुली । मैं पास में ही बैठा रह गया कि मां उठें तो कुछ खिलाऊं । एकबार आंखें खुली भी तो कुछ खाने से इनकार कर दिया । तीसरे पहर एकबार मैंने उनके चरणों को स्पर्श किया तो वे कुछ ठंडे प्रतीत हुये । मैंने समझा बुखार उतर गया । मैंने हाथों को देखा, तो उन्हे भी ठंडा पाया । मेरा हृदय व्याकुल हो उठा । मैंने सीबू की मां को आज्ञा दिया कि गोमाश्ता जी को भेजकर वैद्य-डाक्टर को बुलाओ । इसके बाद मैं अम्मा को जगाने का प्रयत्न करने लगा । कुछ प्रयत्न करने पर, मां की आंखें खुलीं और वह कुछ क्षीन स्वर में बोली, "क्या है बेटा ।"

"अम्मा ! आज तुमने कुछ खाया नहीं। मैंने अनाररस बनाया है, पीलो।"

"जी तो नहीं चाहता, बेटा ! अच्छा थोड़ा गङ्गा जल छोड़ दो तब तुम्हारा मन रख दूं।"

मैंने वैसा ही किया और अनार-रस का ग्लास मां के मुंह तक लेगया। उसने दो घूंट पीकर मुंह हटा लिया। इसी समय सीबू को मां आकर बोली कि वैद्य-डाक्टर आये है।

मां ने बहुत धीरे २ कहा, "बेटा, वैद्य-डाक्टर को छोड़ो अब तो जाने का समय आरहा है, भूमिशय्या दो और रामनाम सुनाओ।"

मेरी आंखो से आंसू टपकने लगे। सीबू की मां ने आकर कहा, "वैद्यजी आ गये।" इशारे से बुलाने को कहकर, मैं भूमि-शय्या तैयार करने लगा और "सीताराम" कहना शुरू किया। इतने में वैद्यजी आ गये और नब्ज देखकर कहा,

"कमजोरी बढ़ गई है। मैं एक दवा देता हूं सब ठीक हो जायगा।"

माँ ने आंखें खोलकर धीरे २ कहा, "दवा—नहीं।—गङ्गाजल।"

वैद्यजी चुप रहें। मैंने मां को उठाकर धीरे से भूमि-शय्या पर लिटाया। उसने इशारे से मुझे पास बुलाया और जब मैंने अपना शिर पास कर दिया तो बड़े कष्ट से हांफते २ अपने हाथ को उसपर फेर दिया। कुछ बोलीं भी, जो मैं सुन न सका। तब वह हाथ गिर गया और उस प्रेममयी की आत्मा अनन्त से मिलने चली गई।

००००◉००००

तेरहवां अध्याय

मेरी आत्मकथा

अपनी सन्तति के लिये माता का प्रेम कैसा विशुद्ध, पवित्र निर्म्मम, अलौकिक वस्तु है। तो क्या स्त्री-पुरुष का परस्पर आकर्षण, जिसे प्राचीन आर्य्य कवियों ने "काम" कह के ही जाना है, "प्रेम" के नाम से कहने योग्य है? मै जानता हूँ कि पश्चिमीय सभ्यता ने इसे इतना उच्च पद दिया है कि इसे ईश्वर तत्व तक कहने का साहस किया है। किन्तु अपनी बीती सोच कर इन पर न केवल हंसी आती है वरंच उनकी मूर्खता पर क्रोध भी आता हैं। परन्तु—मैं अधिक कुछ कहने का साहस न करता क्योंकि तुम कहोगे कि मैं बार २ वही पचड़ा पागलों की तरह छेड़ता रहता हूं। फिर भी मुझे आशा है कि इन पंक्तियों को पढ़ कर तुम सब समझ जाओगे।

दूसरे दिन मैंने इन्दु को खबर दे दी कि मा का स्वर्गलाभ हो गया। कुछही देर बाद मुझे गोपाल का तार मिला कि इन्दु अचानक बीमार पड़ गई है। मेरे तो होश उड़ गये। इधर मां का विछोह, उधर प्रेयसी की यह हाल। क्या अदृष्ट मेरे सर्वस्व को ही नष्ट-भष्ट करने पर तुला था? जी चाहता था कि मैं उड़कर काशी पहुंच जाऊं किन्तु श्राद्ध के पहले जाऊं तो कैसे जाऊं। मैंने सब बातें समझा कर गोपाल को तार दिया और प्रार्थना की कि इन्दु की देख रेख करे और मुझे पत्र द्वारा सब बातें लिखे। इसके बाद मैंने एक लम्बा प्रेम-पूर्ण पत्र इन्दु को लिखा और दूसरा गोपाल को।

किसी २ तरह बारह दिन व्यतीत हुये। इन्दु का कोई भी पत्र नहीं आया और मेरा हृदय प्रति दिन डाकिया की राह जोहने और नैराश्य से ऐंठने में व्यतीत करने लगा। जब एक दिन गोपाल का पत्र मिला तो हृदय की पीर से मैं बेहोश की तरह हो गया। उसने लिखा था—

प्रिय चन्द्रिका,

तुम्हारे तार और पत्र मिले। तुम्हारे दुःख से मेरा हृदय भी रो रहा है क्यों कि मातृ-वियोग क्या है मैं जानता हूँ। मेरी भी स्नेहमयी माता एक दिन मुझे रूला कर चली गई। मैं क्या करता? क्या इस संसार के चलाने वालों में हृदय के पीर का कुछ भी मूल्य है? देखने में तो ऐसा नहीं मालूम होता। वहां की रीति तो यह मालूम होती है कि यदि किसी अभागे पर एक विपत्ति आइ हो तो उस पर दो चार और लद जाना चाहिये जिसमें वह उठ न सके। किन्तु मनुष्य का मनुष्यत्व भी इसी में है कि सब को हंस कर सह ले और दुःखों के ऊपर उठ जावे। दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख—यही तो इस जीवन का क्रम है। यह जान कर अपने हृदय में दुर्बलता नहीं आने देना। मिस होप भी इधर बीमार हो गई है और मैं समझता हूं कि यदि तुम श्राद्ध के बाद ही चले आओ तो अच्छा हो। उनकी बीमारी का कुछ ठीक पता नहीं लगता। वह जब तब बेहोश हो जाया करती हैं और नींद में उठकर घूमने लगती हैं। इधर लीओ भी आगया है और शुश्रूषा के बहाने बहुत समय उनके पास ही में बिताता है। पहले तो मिस होप ने मुझसे कहा था कि वह उससे भय करती हैं और चाहती हैं कि वह जल्दी चला जाय या तुम जल्दी चले आओ। किन्तु उनकी बिमारी जैसे २ बढ़ती गई, वह अन्यमनस्क,

निस्तेज होती गई। किन्तु घबराने की कोई बात नहीं है। तुम शीघ्र आवो।

तुम्हारा—
गोपाल

किसी २ तरह श्राद्ध समाप्त हुआ। मैंने इन्दु और गोपाल को तार दिया कि मैं आ रहा हूं और उसी दिन गृहस्थी का भार गोमाश्ता जी पर छोड़ कर मैं काशी को रवाना हो गया मैं कितनी वार काशी गया था और कितनी वार वापस आया था किन्तु इस वार का जाना कुछ और ही था। हृदय हृदय नहीं था प्राण संशय के चपेटों में अटक रहे थे, और अपनी सुध बुध जाती रही थी। विचार निर्जीव, इन्द्रियां शिथिल, और बुद्धि विमूढ़ कभी अम्मा के अन्तिम दिनो की बातें याद आतीं और आंखो में आँसू भर आते, कभी इन्दु की विदाई के दिन की छटा हृदय पर अंकित हो उठती कभी दुःखी चित्त उसकी आकृति को रोगग्रस्त, दीन, निष्प्रभ, मुरझाये पुष्प की तरह दयनीय रूप में देख २ कर, और भी दुःखी हो उठता।

मेरी गाड़ी १२ बजे रात को काशी पहुंची। गोपाल स्टेशन आये थे। हम दोनों सीधे बोर्डिङ्ग हौस चल पड़े क्योंकि गोपाल ने कहा कि इस समय इन्दु के पास जाना ठीक नहीं। जब हम दोनों चारपाइयों पर लेट गये, मैंने पूछा,

"गोपाल, इन्दु की अब क्या हाल है?"

"क्या हुआ है, इस का तो ठीक पता नहीं चलता। कोई डाक्टर कहता है कि किसी प्रकार का शौक (Shock) हुआ है; कोई कहता है कि हिस्टीरिया (Hysteria) है। देहात की लड़की होती तो लोग कहते कि भूत लगा है। जो कुछ हो, मुझे तो प्रतीत होता है,

इसका कुछ न कुछ सम्बन्ध लीओ के आगमन से अवश्य है।"

"यह रोग शुरू कब से हुआ ?"

"करीब-करीब १५ दिन हुये। तुम्हारे कहने और मिस होप के आग्रह से मैं दो दिन एक दिन पर निश्चय वहां जाता था। मिस-होप तुम्हारे विछोह के दिन गिना करतीं और इस प्रतीक्षा में भी थीं कि तुम उन्हें बुलाओगे। अफसोस, तुम्हारे तार आने के पहले ही उनका स्वास्थ बिगड़ चुका था और वह बेहोश होने लगी थीं।"

"लीओ कब आया ?"

"लगभग २५ दिन हुये।"

"उसे वेस्ट साहब ने इतने दिन कैसे रहने दिया।"

"तुम जानते ही हो, वह उनके मृत मित्र का पुत्र है और मिस होप की बीमारी में शुश्रूषा करने का ढोंग रच रखा है।"

"मुझे तो कुछ समझ में नहीं आता। तुम जानते ही हो इन्दु कितनी शान्त प्रकृति की लड़की है! उसे हिस्टीरिया होना एक तरह असम्भव सा प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि शायद Shock ही हो। किन्तु किस बात का ?"

यही तो आश्चर्य्य है। तुम्हारी माता की मृत्यु के पहले ही उनकी हालत में परिवर्तन हो गया था।"

"गोपाल मेरा हृदय बार २ कहता है कि यह सब काण्ड उसी दुष्ट लीओ से ही उत्पन्न हुआ है। तुम्हे याद होगा कि प्रारम्भ में ही उसने मुझे धमकाया था कि इन्दु के पास न फटको। क्या उसने कुछ शरारत, कोई जुर्म तो नहीं करना शुरू किया है ?"

"जैसे ? ज़हर ?"

"मैं यह असम्भव नहीं समझता। क्या इन्दु के खून इत्यादि की जांच हुई है ?"

"नहीं। डाक्टरों में यह विचार ही नहीं हुआ।"

"भइया! मेरा हृदय कैसा कर रहा है। यदि लीओ से भेंट हो गई, तब तो उसकी खैर नहीं।"

यों ही कुछ देर बातें होती रहीं और गोपाल सो गया। मुझे तो नींन्द आई नहीं और मैं केवल करवटें बदलता रहा। देखते देखते पूर्व में उषा की मधुर ज्योति थिरकने लगी। अन्धकार आपे में ही सिमटने लगा। एक २ कर खग-वृन्द उठने और घोंसलों में चह-चहाने लगे। रात्रि के मोहक प्रभाव को पराजित करता हुआ जीवन-स्रोत नवीन होकर, पुष्टतर होकर दिगन्त व्याप्त करने लगा। कैसा सुखमय समय! बीते दिन यह समय मेरे हृदय में कैसी गुदगुदी पैदा करता था? किन्तु उस दिन तो मेरे और प्रकृति के बीच एक ऐसी दीवार खड़ी हो चुकी थी, जिसने दृष्टि को उधर जाने ही नहीं दिया।

करवटें बदलने से थक कर, मैं उठा और नित्य: क्रिया से छुट्टी पा लेना ही आवश्यक समझा। यह सोचकर कि इन्दु के पास जाने का योग्य समय अभी देर से आवेगा, मैंने काफी ढिलाई की; तथापि जब सूर्य्योदय में काफी देर थी तभी मैं नित्य: क्रिया से निपट गया। कपड़े इत्यादि से भी लैस हो गया। गोपाल अभी तक घोर निद्रा में खर्राटे भर रहा था। मैं व्याकुलता में इधर उधर घूमने लगा। मेरे चित्त की उद्विग्नता का अनुमान इसी से होगा कि कुछ देर इधर उधर घूमने के बाद मैंने अपने को अचानक उस परिचित, प्रिय फाटक पर पाया जिसने हमारे अनेक मिलन और विछोह को देखा था, जिसकी आड़ में हमारा प्रेम अंकुरित हुआ, बढ़ा, और पुष्पित हुआ। जब मैंने अनुभव किया कि मैं अभीष्ट स्थान पर पहुंच गया हूं तो क्षण भर स्तम्भित सा खड़ा रहा।

बङ्गले में निस्तब्धता छाई थी। सब दर्वाजे बन्द थे। फूलवारी सूनी वीरान सी मालूम होती थी। एकबार जी चाहा कि जाकर द्वार खटखटाऊं और लोगों को जगाऊं, किन्तु फिर विचार हुआ कि ऐसा करना, न केवल अशिष्टता होगी, वरंच इन्दु को भी दुःख हो सकता है यदि असमय नींद टूट जाय। क्योंकि रोगियों को प्रातःकाल ही में कुछ नींद आया करती है। ऐसा सोच कर मैं फाटक के इधर उधर घूमने लगा। कितना समय बीता जब खानसामा इत्यादि आये, मुझे मालूमनहीं,— मुझे तो एक २ पल वर्षों के बराबर मालूम होता था— किन्तु उनके "सलाम" की आवाज से जब मेरी मोह निद्रा टूटी, तो मैंने देखा कि दिन हो चुका है।

खानसामा ने सलाम करते हुये कहा "हजूर आ गये? कब से घूम रहे हैं? चलिये, अन्दर चलिये।"

मैंने कहा, "करीम! मिस बाबा रात कैसी थीं?"

करीम ने कहा, "रात, तो, हजूर! पहले से अच्छी मालूम हुई। लेकिन कुछ ठीक तो नहीं रहता कब कैसी हालत हो जाय!"

करीम ने ड्राइङ्ग रूम खोला और मुझे बैठाकर, कहा, 'मैं मिस बाबा को देखकर खबर कर देता हूं।" थोड़ी ही देर में वह घबराया सा आया और बोला; मिस साहब तो अपने कमरे में नहीं हैं।" शायद बाहर निकल गई हैं। मैंने साहब को खबर कर दी है।" यह कह कर वह बाहर गया ही था कि मि० वेस्ट ड्रेसिङ्ग गौन पहने कमरे में दाखिल हुए। उनके मुख पर चिन्ता की रेखायें व्यक्त थीं, और उनकी स्वाभाविक हंसती आकृति गम्भीर हो गई थी। मुझसे प्रेम से हाथ मिला कर वे एक सोफा पर बैठ गये और मुझे बगल में बिठाया और कहने लगे :—

"बेटा, तुम आ गये इससे मुझे बड़ी ढाढ़स हुई। होप की

हालत विचित्र हो गई है। पहले तो प्रतिदिन तुम्हारी बातें करती और तुम्हारी राह देखती रहती थी, किन्तु इधर कुछ दिनों से तो ऐसा मालूम होता है, जैसे उसकी कुछ खो गई है और वह ढूंढ रही है किन्तु स्मरण नहीं होता। शायद तुम्हें देखकर वह स्वस्थ हो जाय।"

उनकी और बातों से मालूम हुआ कि उसे न तो बुखार हो आया, न कोई शारीरिक कष्ट ही हुए और न यही मालूम होता कि वह पागल हो गई है।

मैंने पूछा, "सुनता हूं लीओ आया था। क्या वह अभी है या चला गया?"

वेस्ट साहब, कल्ह शाम को तो वह चला गया।

इतने में खानसामा आया और बोला, "हजूर! मिस साहब तो हाते में कहीं नहीं मिलीं।"

यह सुनकर मिस्टर वेस्ट का चेहरा घबराहट से सूख गया। मैंने सान्त्वना देकर कहा कि यदि इन्दु का दिमाग नहीं बिगड़ा होगा, तो इसमें घबड़ाने की बात नहीं है— थोड़ी देर में वह आ ही जायगी। थोड़ी देर में मिसेज वेस्ट भी आईं और मुझसे बड़े प्रेम से मिलीं किन्तु इन्दु की बात सुनकर वह भी घबराईं। कुछ देर बाद गोपाल भी आगये। सभी इन्दु की प्रतीक्षा करने लगे। चाय का समय आ गया, और टेबिल पर रख गया किन्तु इन्दु का उस समय भी पता नहीं था। मिस्टर और मिसेज वेस्ट की आकृतियां रोनी सी हो गईं फिर भी मिस्टर वेस्ट सम्भल कर बोले,

"प्रिय! चलो, तब तक चाय तो शुरू करें। वह आ ही जायगी। नहीं तो पता लगाया जायगा।"

हम सब चाय मेज पर गये किन्तु खाया तो किसी से जाता नहीं था। मैंने पूछा,

"महाशय, क्या मैं जान सकता हूं कि लीओ कहां रहा करता है और कौन धन्धा करता है ?"

मिस्टर वेस्ट कुछ आश्चर्यित से बोले "हां, हां— वह देहरादून रहता है। धन्धा तो कुछ नहीं है। उसके पिता ने उसे काफी रुपये रख छोड़े थे इससे धन्धे क जरुरत भी नहीं है। किन्तु इस समय तुम्हे इसकी क्या आ पड़ी।"

मैंने कहा, एक कारण है जो मैं यथा समय बता दूंगा। इस समय तो क्षमा कीजिये।"

इसके बाद कोई कुछ न बोला किन्तु सभी की आखें बार २ घड़ी पर जाती और हृदय की अशान्ति को प्रकट करती, क्रमशः नव, दश, ग्यारह बजे। मैं अब अपने को रोक नहीं सका, और खड़ा हो गया। बोला,

"महाशय ! अब आज्ञा दीजिये। यहां बैठना निरर्थक है। मैं चला, और वादा करता हूं कि या तो इन्दु को साथ लेकर फिरूंगा वा नहीं तो फिर मुख नहीं दिखाऊंगा। जो सन्देह मेरे हृदय में उठा है, वह मुझे बेचैन कर रहा है।"

मिसेज वेस्ट रोने लगीं; मिस्टर वेस्ट की आंखें डबडबा आईं। मैं दोनों को नमस्कार करके चल पड़ा। जब मैं बाहर आगया तो गोपाल भी निकला और मुझे पुकार कर रोका।

चौदहवां अध्याय

मेरी आत्मकथा

उस दिन की बात मैं क्या कहूँ ! मेरे हृदय में कैसा तूफान उठा था, मैं वर्णन नहीं कर सकता ! तुम, गोपाल, तो मेरे साथ ही साथ, जब का धुन होकर पिसते रहे; तुम से कुछ कहना नहीं है। किन्तु तुम भी उस अन्धकार का अनुमान नहीं कर सकते उस भीषण क्रोधाग्नि के दाह को नहीं भाप सकते, जो मेरे हृदय को अपने २ आवरण में लपेट रहे थे। इसी से कभी २ मेरे अशिष्ट उत्तरों को सुन कर तुम्हारी आंखें दुःख से तन जातीं थीं, और तुम भी चुप्पी साध लेते थे। मैं जानता हूँ कि कितनी बार तुमने अपने प्रेम और उदारता से प्रेरित होकर, मेरा ध्यान कुछ खाने, कुछ आराम करने, कुछ सोने की ओर खींचने का प्रयत्न किया किन्तु अशिष्टताओं का ही उपहार पाया। गोपाल ! क्या तुम उन्हें क्षमा कर सकोगे ? अबतो ये चुने गिने क्षण इस निर्थक जीवन के शेष रह गये हैं—मैं हृदय से क्षमा की प्रार्थना कर रहा हूँ। जब उस दिन और रात की गलियों का छानना, सड़को पर धूल फांक २ कर एक्केवालों, गड़ी वालों, टांगेवालों से पूछना, स्टेशनों पर प्रत्येक गाड़ी के समय दौड़ २ कर जाना, याद आते हैं, तो तुम्हारा साहसी, किन्तु भूख-प्यास और थकावट से क्लान्त चेहरा मेरी आंखों के सामने नाचने लगता है। मैंने तुम्हारे साथ कितना अन्याय किया है, हाय ! और फल तो नरक ही मिला। विदेशी औरतों के पीछे पड़नेवालों को जो मूर्ख कहते हैं, ठीक तो उन्हीं की हुई !

जब मैं तुम्हें सोता छोड़कर धीरे से निकल भागा, उस समय रात के ढाई बज चुके थे। मैंने निश्चय कर लिया था कि देहरादून जाऊंगा और अकेले ही जाऊंगा। क्योंकि जो मुझे करना था, वह इतना भयङ्कर था, कि उसमें तुम्हें शामिल करना तुम्हारे साथ और भी अन्याय करना होता। मैं जानता हूँ कि मेरे इस तरह भागने से तुम्हें मार्मिक दुःख हुआ होगा। इसके लिये भी मैं क्षमा की प्रार्थना करता हूँ। मुझे आशा है कि जब वह कर्म्म समाप्त हो जायगा, और तुम सुनोगे, तो इस अभागे को तुम निश्चय क्षमा करोगे।

जब मैं स्टेशन पहुँचा तो लक्सर की गाड़ी के आने में देर न थी। मैंने तुरत टिकट कटा कर प्लाटफारम पर डट गया। थोड़ी देर में गाड़ी आई और मैं एक सेकण्ड क्लास के डब्बे में घुस गया। गाड़ी भरी न थी और मुझे अच्छा जगह मिल गया। बनारस स्टेशन पर तो लीओ और इन्दु की कुछ खबर नहीं मिली, क्योंकि आजकल देहरादून और मसूरी जानेवाले अङ्गरेज यात्रियों की भर-मार थी और किसीने यह ध्यान देकर नहीं देखा कि कौन २ जा रहा है। जब दूसरे दिन मैं लक्सर पहुँच कर गाड़ी बदलने के लिये उतरा, तो वहां भी पता लगाने का प्रयत्न किया, किन्तु वहां के लो-गों से भी मालूम हुआ कि अनेक अङ्गरेज जोड़ी गई लेकिन यह कहना असम्भव था कि जिस जोड़ी की मैं खोज कर रहा था, वह गई कि नहीं। मैंने शोचा जो हो, अब तो बिना पता लगाये मैं फिरता नहीं, चाहे इस कार्य्य में मेरा जीवन ही समाप्त क्यों न हो जाय। अस्तु मैं तो देहरादून की गाड़ी में रवाना हुआ। हृदय अपने ही बोझ से दबा जाता था; जो रमणीयता आंखों के सामने प्रतिक्षण नये २ रूपों को धारण कर रही थी, सुदूर क्षितिज में उगती और विलीन होती पर्व्वतों की श्यामला रेखा, दोनों पार्श्वों में विस्तृत

उपत्यका की अकृत्रिम सजावट, और छोटी बड़ी नदियों की बक्र-गति से गङ्गा की ओर दौड़ना,—मानो ये थे ही नहीं। ऐसा प्रतीत होता था कि वह हरहराती, भकभकाती गाड़ी एक शून्य लोक में,शून्य हृदयता के साथ, मुझे अपने मनोरथ सिद्धि की ओर, उड़ाये लिये चली जा रही थी। बार २ इन्दु की वह छटा जो उस दिन विदा होते समय देखा था सामने आ जाती; कभी २ ऐसा प्रतीत होता मानो वह भयभीत की तरह हाथों को फैलाकर मुझे बुलाती आंखों में कातर दृष्टि भर कर मेरी सहायता की प्रार्थना करती।

यथा समय ट्रेन देहरादून पहुंची। मुझे पूरी आशा थी कि देहरादून ऐसे छोटी जगह में लीओ का पता लगाना कोई कठिन बात न होगी। और हुआ भी एसा ही। स्टेशन के स्टेशन मास्टर और बाबू सभी लीओ कार्टर को जानते थे। उसका बङ्गला बाजार से हट कर युरोपियनों के हल्के में था। पूछने से मालूम हुआ कि अभी चार दिन हुए वह अपनी बीमार बहन को लेकर आया है। मैं इतना पता लगाकर स्टेशन से बाहर हुआ और पास ही के एक होटल में दाखिल हुआ। स्नानादि के बाद, मैंने एक तांगा कियां और युरोपियन हल्के के लिये रवाना हुआ।

लीओ का बङ्गला जमीन के काफी बड़े टुकड़े पर बना था। देखने में काफी भड़कदार भी था। उसके ढूंढने में मुझे अधिक कठिनाई न हुई। तांगे को फाटक के पास ही रोक कर जब मैं अन्दर घुसा तो देखा कि लान और फूलों की क्यारियों की सजावट बड़ी निपुणता और रसिकता से की गई है। द्वार पर मैंने एक खानसामे को बैठा पाया। जब मैं सामने आगया तो वह उठा और झुककर सलाम करते हुये पूछा, "हुजूर किसे खोजते हैं? साहब तो यहां हैं नहीं।"

जिस शीघ्रता से उसने इन बातों को कहडाला, उससे मुझे सन्देह होने लगा कि इसे चितावनी मिल चुकी है कि अज्ञात मनुष्यों से अधिक बाते न करे। इससे मैं भी सजग होकर पता लगाने का स्थिर किया।

मैंने आश्चर्यित होने का मुद्रा बना कर कुछ ग्लानि भरे स्वर में कहा, "यह तो बड़े आश्चर्य्य की बात है! शहर छोड़कर तो वे निश्चय नहीं गये होंगे!"

उसने कहा, "आपको कोई जरूरी काम है क्या? साहब भी तो जरूरी काम से गये हैं।"

मैंने कहा. "फिरेंगे तो! मैं उनकी प्रतीक्षा करूंगा। इतना कह कर मैं बरामदे में चढ़ गया।"

बेरा कुछ घबरा कर बोला, "हुजूर! वह तो शहर में नहीं हैं, प्रतीक्षा से क्या होगा?

मैंने कुछ झुंझलाने का ढंग बना कर कहा, "यह तो खूब। मुझे तो इतनी दूर से सैर करने का निमंत्रण देके बुलाया, और मेरे आने के पहले ही चले गये! वाह!"

वह कुछ सोच कर बोला, "हजूर का नाम क्या है? कहां से आ रहे हैं?"

मैं इसके लिये तैयार था। मैंने कहा, "मैं खण्डिकर साहब हूँ।"

उसने कुछ स्वस्थ होकर कहा, "साहब, मैंने तो आपका नाम कभी सुना नहीं।"

मैंने कहा, "खैर, नाम से तो कुछ काम नहीं। मैं शिकार और सैर की सब तैयारियां करके आया हूं। आज तक मुझे ऐसा मौका ही नहीं हुआ था, कि जिसने बुलाया उसके यहां जाऊं और उसका पता ही न मिले।"

उसने कहा, "हजूर से कहा न, कि कुछ ऐसाही जरूरी काम पड़ गया।"

"खैर, अगर तुम यही बतादो कि कहां गये, मसूरी वा ऋषिकेश की ओर, तो उससे भी काम चल जाय क्योंकि इतनी दूर से शिकार और सैर को आकर अब तो मैं फिरता नहीं।"

उसने कहा "यह तो हुजूर, मालूम नहीं, कैसे बताऊं ?"

मैंने कहा, "देखो, अगर मुझे फिर जाना पड़ा, तो तुम्हारे साहब तुम पर सख्त नाराज होंगे और मुझे बहुत दुःख और नुकसान भी होगा। अगर तुम यह भी बतादो कि मसूरी की ओर गये या ऋषिकेश की ओर, तो यह (मैंने १०) का नोट दिखाया) इनाम दूँगा और उनसे भेंट हो गई तो इतना और दूँगा। इन्हीं दो तरफों में से एक तरफ जाने की बात चल रही थी।"

वह कुछ देर चुप चाप मेरी ओर देखता रहा। उसकी आकृति से ही मैं जान गया की उसके भीतर लोभ और स्वामी के भय में भीषण संग्राम हो रहा है। इससे मैं कुछ अन्यमनस्कता दिखाने के लिये, इधर उधर देखने लगा।

वह धीरे २ बोला, हजूर! मैं तो ठीक जानता नहीं किन्तु गाड़ीवान को स्टेशन जाने का हुक्म होते सुना था।"

सम्भव था कि यह मुझे धोका दे रहा हो, किन्तु चारा ही क्या था? स्टेशन पर पूछ ताछ से शायद विदित हो जाय कि लीओ उधर सचमुच गया या नहीं। मैंने नोट बढाते हुये पूछा "किस समय की ट्रेन से गये ?"

उसने कहा, "शाम को रवाना हुये।"

एकबार जी में आया कि पूछूँ कि साथ में कौन २ गया किन्तु तत्क्षण ही यह विचार उठा कि शायद इस प्रश्न से उसके मन में कुछ संदेह पैदा हो, इससे मैंने नोट को धीरे २ उसके हाथ

में रख कर रवाना हो गया। होटल आने पर मैंने पता लगाया कि अब ट्रेन ऋषिकेश जाने की कब मिलेगी। मालूम हुआ कि तीन बजे तीसरे पहर दिन को और ६ बजे शाम को ऋषीकेश रोड को ट्रेन जाती है। इसलिये मैंने पहले भोजन समाप्त किया और तब स्टेशन पर पता लगाने चला। वहां मालूम हुआ कि उस दिन शाम को जो बुकिङ्ग बाबू ड्यूटी पर थे, वह तो इस समय ओफ-ड्यूटी थे, घर पर होंगे। मैं ढूँढता २ उनके क्वार्टर्स पर पहुंचा, तो मालूम हुआ कि अभी खाना खाने बैठ गये हैं—थोड़ी देर बैठने को कहते हैं। ऐसे समय में प्रतीक्षा करना कैसा दुःसह होता है सभी जानते हैं। एक २ मिनट एक २ घंटा मालूम होता था और जब अन्दर में पति-पत्नि का काना-फुसी और हंसने की आवाज आती थी तो मेरी दशा असह्य हो जाती थी। मालूम हुआ जैसे घण्टों बीत गये तब कहीं किरानी बाबू बाहर निकले और मेरे अंग्रेजी ठाठ को प्रणाम करके कहा,

"क्षमा कीजियेगा साहब! मैं खारहा था। क्या हुक्म है? मैंने कहा, "मैं आपको अधिक तकलीफ देने नहीं आया हूं। मुझे दो एक जरूरी बातें पूछनी हैं। ज़रा बैठ जाइये। आप तो लीओकार्टर साहब को जानते होंगे?"

उसने हंसकर कहा और बैठते हुये कहा, "हां हां। उन्हे कौन नहीं जानता। बड़े साहब हैं।"

मैंने कहा, "मैं उनका मित्र हूं। उन्होने पत्र लिखा थो कि सेर और शिकार की तैयारी कर रहा हूं, आइये। कुछ और मित्र भी आयेंगे। यह भी लिखा था कि मसूरी की ओर जाना होगा कि ऋषी केश की ओर यह आपलोगों के आने पर तै होगा। मैं जो आज आया तो देखता हूं घर पर कोई नहीं है। मालूम हुआ वह परसों शाम को ही हड़बड़ी में कहीं चले गये।

उसने कहा "तब इसमें मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूं ?"

मैंने कहा, "उस दिन शाम को तो आपही की ड्यूटी न थी ?"

"हाँ, ड्यूटी तो हमारी ही थी, किन्तु यह तो नहीं कह सकता कि कार्टर साहब कहाँ गये।

"उनको टिकट तो आपही ने दिया होगा ?"

"आये तो थे ही लेकिन यह तो मुझे याद नहीं कि कहां का टीकट लिया। बिना किताब देखे तो ठीक कहा नही जा सकता। हा, यह याद आता है कि उन्हे मैंने दो फर्स्ट और तीन थर्ड दिया था।"

"मैं इसी तीन बजे की गाड़ी से उनके पास जाना चाहता हूं। यदि आप चलकर मेरी सहायता कर दें तो मैं आपको ५) दूंगा।" इतना कह कर मैंने ५) का नोट उनके सामने रख दिया।

वे नम्र होकर बोले, "साहब ! यह तो आपकी मेहरबानी है मैं तो यों ही चलकर बता देता।" नोट को सम्भमालते हुये उसने फिर कहा, "हुजूर स्टेशन चलें, मैं तुरत आता हूं।

मैं पहले होटल पर गया और गोपाल के नाम एक पत्र लिख कर मैनेजर को दिया और कहा कि ये मेरे मित्र यहा आनेवाले हैं उन्हे कृपाकर दे दीजियेगा। वैसाही दूसरा पत्र मैंने डाक के हवाले किया। तब अपना सामान स्टेशन ले आ और वेटिङ्ग रूम में रखवाकर बुकिङ्ग औफिस के पास बाबू की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर में अपने कार्टस से उन्हे आते देखकर मेरे जी में जी आया। वह दफ्तर में गये और किताब निकाल कर मेरे सामने रखते हुये, कहा, "ऋषी केश रोड।"

मैं खुश होकर कहा, "मुझे भी वही का एक फर्स्ट दे दीजिये"

उन्होंने कहा, "इस समय मेरी ड्यूटी नहीं है। जिनकी ड्यूटी है, वह आते ही होंगे। आप जरा बैठ जांये।"

इतना कहकर उसने सलाम किया और अपना रास्ता लिया। मैं बैठकी का समय किसी २ तरह इधर उधर घूमकर बिताया आखिर समय पर मैं टिकट लेकर अपने डब्बे में जा बैठा। जिस समय मैं डब्बे में बैठा, मेरी समस्त शक्तियां, इन चार दिनों की परीशानी, अनशन उद्योग आदि के कारण एक बारगी शिथिल हो गई। हाथों को हिलाने की भी रूचि न रही। केवल भीतर की धधकती क्रोधाग्नि निष्ठुरतापन्न होकर दृढ़ निश्चय में परिवर्तित हो रही थी। इससे कब गाड़ी खुली मुझे मालूम नहीं हुआ किन्तु ऋषीकेश रोड का नाम सुन कर मेरा आलस्य दूर हो गया और मैं जल्दी से उतर पड़ा। स्टेशन पर पूछ ताछ से मालूम हुआ कि एक अंग्रेज और उसकी बहन जो बीमार थी परसों शाम की ट्रेन से उतरे थे और ऋषी केश की ओर गये। मैं भी रवाना होने में देर नहीं किया। ऋषा केश रोड से ऋषी केश आठ मील है किन्तु सड़क पक्की है और वहां पहुँचने में दो घण्टे से अधिक नहीं लगा।

ऋषीकेश छोटी सी बस्ती है! गङ्गा के तटपर बसी है। चारों ओर पर्व्वतों और जङ्गलों की शोभा है। यहां काली कमली वाले का एक अच्छा धर्म्मशाला है। प्रतिदिन मध्याह्न के समय एक घण्टी बजाई जाती है जिसे सुनकर मीलों की दूरी पर रहने वाले साधु महात्मा खाना खाने के लिये काली कमलीवाले के प्रशस्त भोजनालय में आते हैं और अपना २ खाना लेकर या तो चले जाते हैं या वहीं खाकर चले जाते हैं। कोई यह नहीं जानता की कौन कहां रहता है। मैं धर्म्मशाला में अपना सामान रखकर, वहां के मैनेजर के पास गया और कहा कि मुझे बद्रिकाश्रम की

राह पर जाना है। ५, ६ कुलियों की आवश्यकता है, मेरी सहायता कीजिये। उन्हों ने कहा "मैं कुलियों के मेंटों को अभी बुलाये देता हूं—आप उनसे ठीक ठाक कर लीजिये। किन्तु बद्रिकाश्रम जाने का तो यह समय नहीं है!"

मैंने कहा, "मुझे बद्रिकाश्रम जाना नहीं है।" फिर कुछ सोच कर कहा, "मुझे कार्टर साहब के पास पहुंचना है। उन्हों ने मुझे बुलाया है"

मैनेजर ने कहा, "यह बात! अभी कल्ह ही तो वे अपने पहाड़ी बंगले को गये हैं। साथ में उनकी स्त्री भी थीं!"

यह बात सुन कर मेरा हृदय कैसा करने लगा सो कहने की बात नहीं है किन्तु अपने को संभाल कर मैंने कहा, "उसी बद्रीले पर जाना है। कितने दिन लगते हैं?"

"आराम से जाने के लिये १५ दिन की राह है! तेज जाने से १० दिन में भी हो सकता है।

यह बात सुनकर मेरे हृदय में उल्लास का संचार हुआ। अब तो लीओ मुझ से बच नहीं सकता था, अब तो हमारे उसके बीच आखिरी फैसले का समय आयेगा ही। इस उल्लास में मैं ऋषीकेश के छोटे जंगलों में घूमता फिरता गङ्गा के किनारे पहुंचा। पृथ्वी फिर शोभा-मण्डित मालूम होने लगी, पर्व्वतों की मूक हरियाली की पुकार फिर भी हृदय में संगीत का काम करने लगी, और पत्थरों और शिला-खण्डों से संकीर्ण तल पर कहीं द्रुतगति से हरहराती, कहीं गहराई के कारण धीर गति से बहती गङ्गा की रजत धारा फिर भी मानों किसी अपर लोक का संदेश चतुर्दिक में फैलाने लगी! ऐसा प्रतीत होने लगा मानो किसी इन्द्रजालिक ने स्वप्नों को गूंथ कर, एक चित्र बना दिया है। कुछ देर मैं घाट पर बैठा, मोहित होकर चुपचाप इस शोभा को पीता रहा। फिर

गङ्गा में उतर गया और उस अति-शीत, अति स्वच्छ अति मधुर जल में जिसमें देखने पर तलपर की एक २ चीजें स्पष्ट देख पड़ती थीं, जी भर,स्नान किया ! हृदय आनन्द और श्रद्धा से भर गया। जिस कारण से हमारे पूर्व्वजो ने इस नदी-रत्न को इतनी बड़ी पद्वी दी है वह प्रत्यक्ष समझ में आने लगा। मैं भी विद्यापति के साथ कह सकता था।

"पुनि पुनि बिनमओं विमल तरङ्गे
पुनि दरसन होउ पुनमति गङ्गे।"

कैसा सुन्दर, कैसा अमल, कैसा पावन स्थान, इस भौतिक शरीर के अन्तिम निवास का ! स्नान समाप्त होने पर नजाने कैसे इस अभक्त, अश्रद्धालु हृदय में एक-ब-एक यह प्रार्थना निकली, "मां गङ्गे ! तुमने कोटि २ को तारा है, मुझ अभागे को शरण दो ! या तो इन्दु मुझे मिल जाय, या मुझे अपनी गोद में जगह दो !" मालूम हुआ कि इस द्वैध प्रार्थना पर गङ्गा किल-किला कर हँस रही हो।

यह देखकर कि कुछ देर हो गई, मैंने कदम बढ़ाया और शीघ्र हीं धर्मशाला में पहुंचा। वहां आकर देखा कि दो कुलियों के सर्दार मेरी प्रतीक्षा कर रहें हैं। मैं तुरत उन्हें अपने कमरे में ले गया और वहां बातें शुरु की। मैंने सोचा था कि मुझे तो अधिक कुलियो की आवश्यकता न होगी, केवल एक या दो कर लेने चाहिये। किन्तु यह इतनी सहज बात न थी क्योंकि सरदारों ने पहले जानना चाहा कि मैं कहां जाऊँगा; कुली एक ही ओर के लिये होंगे या दोनों तरफ के लिये, कितने दिन सैर में लगाने की इच्छा है, कुछ साथ में खाने पीने के सामान है या नहीं इत्यादि। मैंने कहा—

'देखो जी, मैं अकेला हूं, मेरे सामान भी थोड़े ही हैं और इसी से मैं समझता हूं कि दो कुलियों से ही मेरा काम चल जायगा।

एक सर्दार ने कहा, "हजूर! यह तो रेल, चाहे तांगे की सवारी है नहीं, और न यहां पक्की सड़क ही है। खाने के कुछ सामान तो लेही जाना चाहिये, नहीं तो चट्टियों पर के सामान लेने पड़ेंगे जिससे बीमारी हो सकतीहै। अगर बद्रिकाश्रम जानाहै। मैंने बात काटकर कहा, "नही, मुझे तो कार्टर साहब के बङ्गले पर जाना है।"

मैंने देखा कि यह सुनकर दोनों सर्दार एक दूसरे का मुख देखने लगे और उनका रंग कुछ फीका पड़ गया। मैं जान गया कि इसमें कुछ भेद छिपा है। किन्तु मैंने उनके उत्तर की प्रतीक्षा करना ही ठीक समझा। कुछ देर के बाद एक ने कहा;

"हजूर! वह तो बड़ा निकट जगह है और रास्ता भी बिकट है!"

मैंने कहा, "बिकट क्या है? अभी कलह ही तो कार्टर साहब कुलियों और एक युवती के साथ गये हैं।"

दूसरे ने कहा, "कार्टर साहब को क्या? वह तो भूतों के मालिक ही हैं।"

यह सुनकर मैं बड़ा बिस्मित हुआ। इस बीसवीं सदी में भी भारतवर्ष के रहने वाले ऐसी बातों में विश्वास करते हैं। ये कुली तो जंगलों के रहने वाले थे; अगण्य पर्वतों के निःशब्द गाम्भीर्य के सामने, अनन्त जंगलों की चुभती हुई नीरवता में पलकर यदि उनकी आँखें दृश्य जगत के पार जाने के प्रयत्न में, सूक्ष्म शक्तियों को ढूँढ़े तो इस में आश्चर्य ही क्या? किन्तु उन्हें असभ्य कहने वाले नगरों के पार्श्ववर्ति गावों के रहने वालों में भी तो यह विश्वास प्रश्नरूप से रहता ही है। किन्तु आश्चर्य यह था कि कार्टर की वह प्रसिद्धि कैसे हुई?

मैंने भय दूर करने की नीयत से कहा, "भूतों का भार मैं लेता हूँ। तुमलोग चलो तो। कुछ नहीं कर सकेंगे।"

पहले सर्दार ने कहा, "यह हम जानते हैं, फिर भी हमलोग उस बङ्गले पर रात में नहीं रह सकते।"

मुझे मालुम हुआ कि निश्चय कार्टर कोई शैतानी करता है जिससे इन गँवारों में भूत का भय उत्पन्न हो गया है। मैंने कुतूहल वश पूछा,

"आखिर तुम्हें प्रमाण क्या है कि कार्टर भूतों के मालिक हैं?"

पहले ने कहा, "कितनी बातें हुईं कहां तक कहूं! देखिये न, एक हमारी हीं जाति की सुन्दर युवति है। वह एकबार कुछ बेचने बंगले पर गई और दुर्भाग्यवश उसे कार्टर ने देख लिया। न जाने उसने उसपर कौन भूत चढ़ा दिया, कि तब से वह न तो अपने पिता माता की आज्ञा मानती, न समझाने बुझाने को सुनती और न उनकी मार पीठ से ही डरती। कार्टर बङ्गले पर आये नहीं, कि वह घर छोड़ छाड़ कर वहाँ पहुँचीं नहीं और जबतक कार्टर चले नहीं जाते वह घर नहीं फिरती।"

दूसरे सर्दार ने कहा, "एक दिन एक २०, २५ वर्ष का युवक उसके बङ्गले के हाते में आ पड़ा। कार्टर साहब ने न जाने क्या किया कि वह उस दिन भागा, लड़खराता, गिरता पड़ता अपने घर पहुंचा, और उसी दिन से पागल हो गया। कितने ओझा बुलाये गये, कुछ न हुआ। जब उसके घर वाले उसे लेकर कार्टर साहब के पास गये, और बहुत रोये गिड़गिड़ाये, तब उसने कहा कि इसे मेरे पास छोड़ दो, मैं अच्छा कर दूंगा। तब से जब कार्टर आते हैं वह बङ्गले पर बराबर हाजिर रहता है।"

पहले ने कहा, "तभी से कोई भी उस बङ्गले की ओर देखता भी नहीं, वहां पर रहना तो दूर रहे।"

मैंने देखा, ये बहस से कायल होने वाले नहीं ! इससे मैंने कहा, "अच्छा, तुमलोगों का मुझ पर अभी विश्वास नहीं होता। तो मैं भी हठ नहीं करूंगा कि तुम बङ्गले पर रहो। तुम आकर सबसे नजदीक चट्टी पर ही टिकना और जब मैं आने लगूँगा, तो मेरा सामान यहां पहुंचा देना।"

इस बात पर दोनों सर्दार राजी हो गये और यह तै हुआ कि वे ५ कुली देंगे। मेरे मन में हुआ कि जिस स्थिति का मैंने वर्णन सुना, उसमें यह आवश्यक था कि एक ऐसा भी मनुष्य हो जो मेरा पार्श्ववर्ति रहे और समय पड़ने पर मेरी सहायता करे। किन्तु अपने शारीरिक और मानसिक बल पर मुझे इतना विश्वास था, और लीओ को इतना नीच-दृष्टि से देखने की आदत हो गई थी कि मैं इस विचार को जमने नहीं दिया। मैंने केवल एकबार यों ही पूछ लिया कि तुमलोगों में से कोई शरीर रक्षक का काम करने वाला हृष्ट पुष्ट व्यक्ति मिल सकता है। उन सभों ने उत्तर दिया कि नहीं।

सरदारों के चले जाने के बाद मैंने बैठ कर एक पत्र गोपाल के नाम लिखा जिस में जितनी बातें मालूम हुई थीं उनका उल्लेख कर दिया और अपना प्रेम को जताते हुये यह भी लिख दिया कि न जाने अब फिर भेंट होगी या नहीं इस से अन्तिम बिदाई मागता हूं और ईश्वर से तुम्हारी भलाई की प्रार्थना करता हूं। दूसरा पत्र मैंने बेस्ट साहब को लिखा और उसे डाक के हवाले किया। यह शोच कर को गोपाल यहां निश्चय आयेंगे, उनका पत्र मैंने मैनेजर के हवाले किया और कह दिया कि मेरे मित्र दो चार दिन में निश्चय आवेंगे, उन्हें यह निश्चय दे दीजियेगा।

•••○◉○•••

पन्द्रहवा अध्याय

मेरी आत्मकथा

दूसरे दिन उषा की ज्योति चारों ओर फैल गयी जब हमारे कुली आ जुटे और हम लोग उस राह पर रवाना हुये जो ऐसी भवितव्यताओं से भरी थी जिन का मुझे स्वप्न में भी ख्याल नहीं हुआ था। मुझे बिदा करने वाले गङ्गा का व्यापी कलरव और गम्भीर पर्व्वतों की सजीव शान्ति को छोड़ कर कोई नहीं था। जब हम लक्ष्मण-झूला की राह पर पहले पर्व्वत पर पहुचे तब उस सोते हुये जङ्गल में नव जीवन का सञ्चार होने लगा। एक एक कर पक्षिगण अपने २ अड्डों से जागने की सूचना देने लगे। मेरा हृदय भी एक अपूर्व्व उल्लास और उत्कण्ठा से भर गया। जी चाहता था कैसे यह लम्बी सफर शीघ्र समाप्त होगी, और मुझे फिर प्रियतमा के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होगा। कभी यह सोच कर कि कहीं दुष्ट लोग उस पर अत्याचार न कर बैठे, मेरे पैर आप ही आप यों भागने लगते कि कुलिओं का मेट कह बैठता, "साहब, इतनी तेज चलियेगा, तो तुरत थक जाइयेगा"। कभी २ उस भावी लीला के साथ युद्ध के अनेक चित्र यों आंखो के सामने आने लगते कि मैं अपनी सुधि खो कर कभी रुक जाता द्रुत गति से चलता, कभी २ मन में जो बातें उठती जोर से कह बैठता और आप ही आप लज्जित हो जाता।

जब चढ़ाई के अन्त पर पहुँच कर लक्ष्मण झूला के झूलते पुल पर हम पहुचे तो एक बार सौन्दर्य्य के उपहार को देख कर पैर आप से आप रुक गये और हृदय से एक सुख का निश्वास

निकल गया। दो ऊँचे पर्याप्त जङ्गलोंसे सुसज्जित पर्वतों को काटती हुई घहराती, उछलती, कूदती बक्र गति से दौड़ती गङ्गा की रजत रेख सैकड़ों फुट नीचे दृष्ट हुई और आँखो को बरबस अपने वक्षः स्थल पर खीच ले गई। कुछ दूर दाहिनी ओर स्वर्गाश्रम का सुन्दर छोटा मकान गङ्गा के बाये तट पर शोभाय मान था। एक छोटी नइया पश्चिम किनारे से छुटी और पलक मारते २ कैसे यहां वहां जल के ऊपर निकले हुये चट्टानो को बचाती, निकल गई देख कर मैं अवाक रह गया। एक क्षण तो ऐसा हुआ कि मेरा हृदय भय से मुंह पर आ गया और जब वह पार हो गई तभी सुख का सांस लिया। कुलियों ने कहा कि स्नान करना हो तो यही कर लीजिये क्यो कि आगे चल कर गङ्गा में उतरना कठिन हो जायगा। इस से पुल पार कर मैं नीचे उतरा और गङ्गा की गोद में उस सुख को पाया जो और कहीं न मिला। शरीर के साथ हृदय भी ठंढा हो गया और एक बिचित्र उल्लास रोम२ में व्याप गया

स्नान करके जब हमलोग चले तो सूर्य्य निकल चुका था। यह सोच कर कि लीओ केवल ४८ घण्टे आगे गया है, और इन्दु बीमार की हालत में है, मैंने अनुमान किया कि तेजी से चलने पर और आराम करने का समय कम कर देने पर उसे रास्ते में पकड़ लेना कोई कठिन काम न होगा। किन्तु आगे चल कर मैंने पाया कि यह मेरी भूल थी क्योंकि इन कुलियों को अपने अभ्यस्त चाल से हटाना, और उनके बन्धे अड्डों पर बन्धे आराम के समय को काटना, दुष्कर काम था। वह राह बराबर ऊपर उठती, गंगा के अगल-बगल जंगलों में होती, किन्तु बराबर ऊपर ही चढ़ती चली गई है। कहीं पर काफी चौड़ी; कहीं पर अत्यन्त पतली, कहीं पर अथाह गर्तों के ऊपर, कहीं पर हँसती उपत्यकाओं से होती जाती है। कहीं २ पर राह एक दो हाथ ही चौड़ी होने के कारण, हजारों

फुट नीचे के गर्त को देख कर पैरों में कँप-कँपी आ जाती थी, कहीं कहीं पर दूर में हजारों फुट नीचे खेत और चरते हुये भेड़ और मवेशी चित्रलिखित की तरह छोटे २ दीख पड़ते थे। कभी २ दूर में झरनों की मधुर झर-झराहट, थके और सूर्य्य किरणों से पीड़ित हृदयों को नई आशा और नया उत्साह प्रदान करती थी। जल शीकरों से आई, वन पुष्पों से सुगन्धित वायु, गर्म हुये, झुलसायें अंगों पर कैसा रसायन लेप का काम करता था। और रह-रह कर गंगा की झाँकी। अपने देश में, अपने घर में कैसा २ खेल करती है गंगे! इन आकाशचुम्बी पर्वतों और घने जंगलों के भीतर तेरी वह छटा क्या कभी भूल सकती है? पद २ पर कालिदास के अद्वितीय वर्णनों का स्मरण हो आता था—

भागीरथी निर्झर शीकराणां;
बोढा मुहुः कम्पित देवदारुः।
यद्वायुर न्विष्टमृगैः किरातै
रासव्यते भिन्नशिखण्डि वर्हः॥

दूर में चमकते बर्फ से ढके चोटियों की शोभा का कैसे वर्णन करूँ? सूर्य किरणों का उनपर थिरकना, एक माया लोक की सृष्टि करना क्या मनुष्यों की भाषा में वर्णन किया जा सकता है।

तीन २ चार २ मील पर चट्टियाँ थीं जहाँ यात्री ठहर सकते थे और जहाँ आवश्यक चीजें दूनी कीमत पर मिल सकती थीं। हमलोग मध्याह्न के समय दूसरी या तीसरी चट्टी पर पहुँचे और दो एक घण्टे वहीं बिताने का निश्चय किया। झटपट खाना बना और भोजन कर सभी आराम करने लगे। मैं तो गहरी नीन्द में सो गया क्योंकि इस अनभ्यास्त परिश्रम से मैं एक दम थक गया था और मेरा पैर मानों जल रहा था। मैंने मेठ को कह दिया था कि मुझे तीन बजे जगा देना क्योंकि उसी समय चल देना

होगा । उसने ऐसा ही किया और हमलोग ३ बजे फिर रवाने हुये। सूर्य्यास्त के पहले ही हमलोग जिस चट्टी पर पहुँचे वहीं रात के लिये टिक गये। पता लगाने पर मालुम हो गया कि परसों रात को लीओ एक चट्टी पर ठहरा था। मैं उससे एक चट्टी आगे जाकर ठहरा। मैंने सोचा, "४८ घण्टे में से एक घण्टा तो बचा सका।"

दूसरे दिन उसी तरह प्रातः ही उठ नित्यः क्रिया से छुट्टी पाकर हम रवाने हो गये और सन्ध्या को एक चट्टी पर ठहरे। प्रत्येक दिन का यही नियम हो गया। जहाँ सौन्दर्य्य और शान्ति का राज्य ही है, वहां के प्रत्येक झांकी का वर्णन करने का प्रयत्न करना मूर्खता ही समझा जायगा, विशेषतः मेरे लिये क्योंकि मैंने कवि का हृदय तो पाया नहींहै और न मुझ में गद्य ही लिखने की निपुणता है। अब मुझे समय भी तो नहीं है। मैं केवल यही कह कर अपनी कहानी में प्रवृत्त हो जाऊंगा कि जिन २ सौन्दर्य्य गाम्भीर्य्य, और बीभत्स दृश्यों को मैंने देखा, उन्हें चिरकाल तक, उनके बीच रहकर देखने की ऐसी प्रबल इच्छा हुई कि मैंने प्रण किया कि यदि इन्दु से सकुशल पुनर्मिलन हो गयातो निश्चय उसके साथ यहां आऊँगा और कुछ समय यहीं बिताऊँगा। इस रीति से बारह दिन चलने पर मालूम हुआ कि अब लीओ हमलोगों से केवल १२ घण्टे आगे रह गया है। मैंने गणना किया तो मालूम हुआ कि और दो दिन चलने पर हमलोग उसके बङ्गले पर पहुंच जायेंगे और इस बीच में २ घण्टे का बचाव हो जायगा।

मैं ऊपर लिखना भूल गया कि जिस दिन मैं ऋषीकेश आया उसी दिन से यह जीवनी लिखना शुरू कर दिया है। एक कारन तो यह है कि मुझे रात्री में जल्दी नीन्द ही नहीं आती, और जब आती तो भयानक स्वप्नों से टूट जाया करती और यह एक समस्या

हो गया था कि उधर की लम्बी रात कैसे कटे। दूसरा कारण यह था कि यदि दुर्भाग्य वश, हम न फिरे, तो गोपाल के लिये मैं कुछ छोड़ जाऊँ जिससे वह अपने प्रति मेरे श्रद्धा और प्रेम को जान जाय और यह समझ कर कि मेरे लिये कोई दूसरा मार्ग ही नहीं था, अपने दुःख को कम कर सके।

एक दिन की बात है कि हमलोग दोपहर को खा-पीकर आराम कर रहे थे, और मैंने इस जीवनी में दो-चार पंक्तियां जोड़ रहा था कि सहसा मेरा ध्यान लिखने से हट गया और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई मेरी ओर घूर रहा है। मैंने लिखना छोड़ कर ऊपर को देखा। देखता क्या हूं कि एक सन्यासी वेश-धारी, जो देखने से ४० वर्ष से अधिक उम्र के नहीं मालूम होते थे, चुपचाप खड़े मेरी ओर देख रहे हैं। आंखें चार होते ही, वह कुछ मुस्कुराये ऐसी मुस्कुराहट तो मैंने आज तक देखी न थी—वह केवल होठो की मुसकान नहीं थी; वह आंखों की, समस्त आकृति की भी मुसकान थी जिससे समूचा मुख एक अनिर्वचनीय भाव से खिल उठा था।

वह अत्यन्त मधुर, परिशकृत स्वर से बोले, "मुझे कुतूहल हो रहा था कि यों दत्तचित्त होकर क्या लिख रहे हो।"

मैंने अभिवादन करते हुये कहा, "महाराज! आइये, विराजिये। यह तो यों हीं कुछ है—दो पहर काट रहा हुँ।

वह बैठते हुये बोले, "यों ही कुछ का मतलब, बताना नहीं चाहते। खैर, कहाँ जाने का विचार?"

मैंने कहा, "दो दिन की और यात्रा है। क्या आप लोअो कार्टर को जानते हैं?"

"कुछ जानता भी हूँ। कुछ सुना भी है।"

,,मुझे उसी के पास बंगले पर जाना है।"

"क्या वह आपका मित्र है "?"

"नहीं। कुछ प्रयोजन आ पड़ा है।" मुझे झूठ बोलने का साहस न हुआ। "महाराज! इन कुलियों की बात से यह मालुम होता है कि कार्टर से इधर के लोग बहुत डरते हैं यहाँ तक कि उसे भूतों का स्वामी समझते हैं। आज कल तो भूतों में विश्वास करना असम्भव हो गया है।"

"तामसिक प्रकृति के लोग आसुरी शक्तियों की पूजा करते ही हैं, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।"

"तो क्या कार्टर ने सचमुच भूतों को इष्ट किया है?"

"कार्टर ने कुछ पतित योगियो का साथ किया है और योग की प्रथम सिद्धि जिसे तुम लोग Hypnotion कहते हो, सीखा है।"

"तो क्या वह सभी को अपनी शक्ति के बस में कर सकता है?"

"नहीं शक्तिशाली मनुष्यों पर उसका बस नहीं। और उसकी शक्ति तो क्षीण हो रही है क्योंकि वह अपनी शक्ति का दुर्व्यवहार करता है। जो शक्तियों का सञ्चय करता है वह तो ऊपर उठता चला जाता है; जो उनका व्यय करता है, वह अधो गति जो प्राप्त होता है—यह साधारण नियम है।"

मैंने कहा, "स्वामी जी! मैं यह तो जानता था कि वह दुष्ट-स्वभाव का है किन्तु इस पर सहसा विश्वास नहीं होता कि इस बीसवीं सदी का कोई अंगरेज बच्चा ऐसी बातों में न केवल विश्वास ही करेगा वरन उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करेगा।"

स्वामी ने कहा, "यह समझने की बात है कि जिन शक्तियों से यह संसार चलता है, वे तो बराबर ही हैं, और उनका प्रयोग बराबर होता रहता है। मनुष्य का जीवन उन्हीं से बनता बिगड़ता

है फिर भी मनुष्य उनका प्रभाव उनके फल से ही जानते हैं। उन शक्तियो को अपने वश में करके उनका व्यवहार मनुष्य की भलाई के लिये करना ही तो तुम्हारे विज्ञान का उद्देश्य है! जब तक किसी शक्ति को तुम जान नहीं पाते उस पर हंसते हो। जान लेने पर वह हंसी की बात नहीं रहती।"

मैं कुछ देर इन्ही बातों पर विचार करता चुप रहा। फिर मैंने बड़े आग्रह से कहा, "स्वामी जी! आपलोग तो अन्तर्यामी होते हैं। मुझे आशीर्वाद दें कि मैं सफल मनोरथ होऊं।"

स्वामी हंस पड़े। बोले, "भइया! अन्तर्यामी तो केवल एक ही है। मैं तुम्हारे हृदय की बात क्या जानूं? किन्तु मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हारा कल्याण हो।"

मैंने कहा, "स्वामी जी! मैं कृत्य हुआ। एक बात से मुझे आश्चर्य होता है। आपलोग जो अनेक शक्तियों के भण्डार हैं, कार्टर के ऐसे आततायियों को दण्ड नहीं देते!"

स्वामी फिर कुछ मुस्करा कर बोले, "दण्ड देना तो दो ही का काम हैं—भगवान अथवा राजा। हमलोग दण्ड देने वाले कौन? यह प्रश्न तभी उठता है जब हम ईश्वर की शक्तियों को काम करते देख नहीं पाते और समझने लगते हैं कि कुछ होता ही नहीं। किन्तु यह बात नहीं। प्रत्येक दुष्कर्म्म के नाश का बीज उसी में रहता हैं।"

इतना कह कर स्वामी जी उठे। मैं उठकर उनके चरणों को स्पर्श किया और वह फिर भी आशीर्वाद देकर चले गये। उनके जाने के बाद हम भी कूच कर गये; किन्तु उस दिन मैं उनकी बातों पर ही सोचता रहा। क्या लीओ ने इन्दु को Hyprotise किया था? यह बात सोचते ही, मेरा क्रोध द्विगुण हो गया और लीओ रूपी पैशाचिको शक्ति को पृथ्वी से हटाने की मेरी प्रतिज्ञा दृढतर

हो गई। हृदय उतावला होने लगा और रक्त द्वेषाग्नि से खौलने लगा। किन्तु उस समय तो कुछ कर नहीं सकता था, इससे आप ही आप जलता रहा।

दूसरे दिन जब हमलोग अन्तिम रात्रि एक चट्टी पर बिता रहे थे तो मैंने देखा कि कुछ कुली हमारे कुलियों के साथ घुल-मिल कर अपनी भाषा में बात कर रहे हैं और किसी २ बात पर कह-कहे भी लगा रहे हैं। बीच २ में कार्टर साहब का नाम भी आता और मेरी शय्या की ओर भी संकेत होता, जहाँ मैं इस जीवनी के अन्तिम पृष्ठों को लिख रहा था। मैं कनखियों से देख रहा था कि वे कार्टर के नाम पर अपने स्वर को नीचा कर लेते और उनकी आकृति फीका पड़ जाती। मैंने उस समय कुछ पूछना ठीक नहीं समझा किन्तु दूसरे दिन जब हम इस यात्रा के अन्तिम भाग पर रवाना हुये, तो मैंने मेट को बुला कर बातें करना आरम्भ किया।

मैंने पूछा, "रात जिनसे तुम्हारी बातचीत हो रही थी, वे कौन थे?"

उसने उत्तर दिया, "साहब वे तो लीओ साहब के कुली थे, जो उन्हें पहुँचा कर फिरे आते थे।"

मेरा हृदय धक् धक् कर रह गया। मैंने पूछा,

"उनके साथ जो मेम साहब थीं, उनके बारे में क्या कहते थे?"

"वे कहते थे कि वह तो बराबर झम्पान में सोती ही जाती थीं केवल पड़ाओं पर कार्टर साहब उन्हें जगाकर कुछ खिला दिया करते थे।"

"बंगले पर लोग कब गये?"

"कल्ह शाम को"

"वहाँ पर कितने नौकर-चाकर हैं?"

"वे कहते थे कि साथ में जो एक विश्वस्त नौकर था वह तो रहा ही, यहां का भी एक नौकर और एक दाई है जो रात को घर चली जाती है। एक विश्वस्त चौकीदार रात में रहता है।"

यह सुनकर मैंने एक संतोष की आह ली और सोचने लगा कि अब मुझे क्या करना चाहिये। क्या सीधे कार्टर के बंगले पर चल चलूँ और जैसे हो इन्दु को बल पूर्वक छुड़ा कर ले भागूँ? अथवा पहले इस बात को जांच कर लूँ कि उसने मेरा प्रणय भूलकर कार्टर को स्वयं वरण किया और उसके साथ आई? यद्यपि इस प्रश्न पर हृदय घोर विरोध कर उठता और ऐसी सम्भावना को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं होता, परन्तु मेरी बुद्धि बारम्बार इस पर जोर देती। अंग्रेज युवतियों के लिये यह तो असम्भव नहीं था; प्रत्युत यह प्रतिदिन के जीवन की बात थी कि कोई युवती यदि आज एक पुरुष के प्रेम में अपने को आसक्त समझती है तो कल्ह उसे अपनी भूल समझ कर दूसरे ही को अपना प्रियतम जान लेती है। यदि ऐसा हुआ तो अनार्य रीति के अनुसार मेरा बलत्कार करना असभ्यता, बर्बरता समझी जायगी। इस रीति से मैं बड़े संकट में पड़ा कि क्या करूँ। बहुत कुछ सोचकर मैंने निश्चय किया कि मुझे आखिरी पड़ाव पर ही अपना निवास स्थिर करना चाहिये और गुप्त रीति से इन्दु और कार्टर के व्यवहारों की जाँच करनी चाहिये। यह निश्चय कर मैंने स्थिर किया कि जिस तरह हो अपने सर्दार को अपना शरीर रक्षक और सहायक बनाना ही होगा। इसलिये जब मै दूसरे दिन चला तो सर्दार को बातों में बझाकर साथ में कर लिया और धीरे २ प्रीति और प्रलोभन दिखाकर उसे अपने वश में कर लिया। जब वह राजी हो गया, तब मैंने अपनी पूरी कहानी सुना दी। उसे सुनकर, उस जंगली सर्दार का खून गरम हो गया और अपने क्षात्र स्वभाव को यों प्रकट किया :—

"साहब ! अब आप को कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। यह ऐसा मामला है जिसमें हम जंगली, सभी की सहायता, बे पैसे कौड़ी के करना धर्म समझते हैं। हमलोग नहीं जानते थे कि वह मिस बाबा आपकी बाग् दत्ता है नहीं तो हमलोग पहले ही इसका प्रयत्न करते। अब मैं प्राण पर खेल कर भी आपकी सहायता करूंगा।

इसके बाद मैंने अपने नियत कार्य-क्रम को उसे समझाया और यह इस समय तक की कथा उसे दिखा कर कहा,

"इसे मैं तुम्हें देकर यहां से रवाने होउँगा। यदि मैं किसी विपत्ति में फँस जाऊँ, तो कृपाकर ऐसा प्रबन्ध कर देना कि वह मेरे मित्र गोपाल के पास पहुंच जाय; इस पर उनका पता लिख दूँगा आशा है कि वे दो एक दिन के भीतर ही यहां आ जायेंगे, यदि एक हफ्ते के भीतर वे न आवें तो इसे डाक में छोड़ देना।"

यह सब आवश्यक बात समझा कर; जब तक खाना बन रहा था, मैंने इन अन्तिम पंक्तियों को लिख डाला। इसके साथ मैंने एक पत्र भी गोपाल के नाम लिख दिया जिसे मैं नीचे देता हूं :—

प्रिय गोपाल,

न मेरे हृदय में शान्ति है; न आंखों में नींद। मैं जिस पथ पर चला हूं उससे फिरने की आशा नहीं; न मुझे फिरने की इच्छा ही है। इसलिये, गोपाल, मैंने निश्चय किया है, कि इस समय जब सारे संसार का जीवन नींद की गोद में बेसुध खर्राटे भर रहा है और मृत्यु की विभीषिका का नमूना बन रहा है, मैं अपनी हृदय की पीर तुम्हें सुनाउँ। जब काल के लपेट में पड़कर मेरी स्मृति लुप्त-प्राय हो जायगी तो शायद इन पंक्तियों

को पढ़कर, तुम्हारे लिये मैं फिर जो उठूँ, शायद उन निश्छल भाव भरे, छात्र जीवन के दिनों की याद आजाय, जो मेरे अन्तिम घड़ियों के लिये, पूर्व्व जन्म के सुख-स्वप्नों की तरह प्रतीत होते हैं।

मैं अपनी हालत कैसे वर्णन करूं? तुमने नरक, अथवा "हेल" (Hell) अथवा दोजक की बात सुनी है। पर मेरी बात मान लो; ये केवल मूर्खों को भुलाने के लिये कल्पित किये गये हैं। मुझे तो अपने इसी जीवन से स्पष्ट हो गया है, कि न तो नरक दूसरे लोक में है, न दूसरे जीवन में, यही लोक, यही जीवन नरक हो जाता है, जब वह चन्द्रिका जिसके विहसन में तुम्हारे कुमुद-हृदय का विकास था, कलुषित हो जाती है; जब वह रवि राग जो तुम्हारे जीवन का जीव था, हृदय का घमण्ड था, यौवन का आधाधार था, तुम्हारे विमुख हो जाता है।

गोपाल! इन घोर वेदनाओं से निकली चीखों से रुष्ट न होना; और न उन पर हँसना हीं। माता की दी हुई हृदय की कोमलता आजीवन नहीं छोड़ती; और न शुष्क हृदयों को आर्द्र करने के निष्फल प्रयत्न से आंखें ही रुकतीं। लेकिन क्यों—किसके लिये यह ऐंठन, यह वर्षा?

तुमसे छिपा नहीं है—एक दिन इस हृदय पर भी हरियाली छाई हुई थी—ओह, कैसी हरियाली! इसी अन्धकारमय जीवन पर उस समय स्वर्गीय छटाओं का प्रकाश था; इसी शुष्क हृदय पर मधुर आमोदों का सिञ्चन था; जब प्रातः वायु अनन्त सुखों का सन्देश दिया करती थी; जब खग वृन्दों का गीत स्वप्न लोकों का आनन्द स्वरुप जान पड़ता था। जब जीवन आशा-पङ्खों पर उड़ उड़ कर, इस लोक में अन्य लोक देखा करता था, जहां प्रत्येक पुष्प के यौवन में, प्रत्येक तरंगिणी के भंग में प्रत्येक जीव के निःश्वास में

अद्भुत सौन्दर्य और मधुरता का निवास था। जब एक ही प्रतिमा चतुर्दिक में पूजित दीख पड़ती थी, जब जगत प्रेममय था, और प्रेम ही जगत था।

किन्तु आज तो वह प्रेम अपने नग्नरूप में नाच रहा है-एक निरर्थक शब्द, एक व्यर्थ मृगतृष्णा, भोले हृदयों का हवाई राज मन्दिर, कवियों का उन्माद, युवकों की निराधार भ्रान्ति। आश्चर्य तो यह है कि उन सरल हृदय और उदार मानस वालों को पता नहीं चलता कि वे अपनी ही अन्तर्ज्योति इस बाह्यलोक में स्थापित करके उसी का पूजन कर रहे हैं. जब तक वे अनन्त आशायें टूट नहीं जाती और गगन चुम्बि हौसले धूल में नहीं मिल जाते। तब जगत जीर्णारण्य हो जाता है और स्वर्ग-स्पर्द्धि विचार निरावलम्ब निराधार, इतर-तितर मारा फिरता है। और क्यों ?—एकभ्रान्ति के मिट जाने से।

गोपाल तुम्हें विदित है कि तुम मेरे दुःख-सुख के साथी, मेरे हृदय के गूढ़ से गूढ़ भावों को जानने वाले हो। तुम्हारे प्रेम और हृदय के भोलेपन की स्मृति इस टूटे-फूटे समय में मेरे अन्तर्दाह पर अमृतधारा की तरह बरस पड़ती है। इसी से तुम्ही इन मेरी अन्तिम पंक्तियों के पढ़ने के योग्य पात्र हो। यदि तुम्हारे समान अमूल्य मणि के रहते भी; यह जीवन घृणित हो गया है, यदि इस स्वार्थ विजयी मित्रता की ज्योति से भी इस हृदय का अन्धकार नहीं हटता, तो तुम्ही कहो, गोपाल, कि इसके अभाव से मेरी कैसी दशा होती! तुम इस बात पर दुखी न होना; क्योंकि यदि राज योग्य व्यञ्जनों से प्यास न जाय तो इसमें व्यञ्जनों का क्या दोष? यदि सूर्य को देख कर समुद्र में उच्छ्वास न उठे तो इसमें सूर्य का क्या

दोष ? तथापि दोनों ही स्थिति के कारण हैं और उनके बिना न प्यास ही सम्भव है न उच्छ्वास ही।

मुझे स्मरण रखना। नमस्कार और—

तुम्हारा

चन्द्रिका

अब तो जीवन की बाजी हैं। इस समय यह शान्त निस्तब्धता, यह अर्द्ध-चन्द्र की ज्योत्सना से शोभित तारकाओं से जटित रात्रि की विस्तृत ओढ़नी कैसी प्रिय लग रही है। भला इस सौन्दर्य और माधुर्य्य के आच्छादन के नीचे क्या लीओ के सामान राक्षस का भी स्थान हो सकता है? क्या दूसरी रात्रि को भी मैं देख सकूँगा? कल्ह-कल्ह यह पृथ्वी कैसी दीख पड़ेगी? कितने कल्ह आये और चले गये किन्तु पृथ्वी वही रहने पर भी एक कल्ह दूसरा कल्ह कभी रहा ही नहीं।

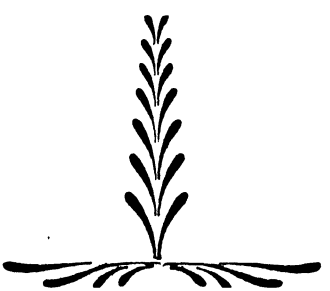

मैंने हँसकर कहा, "क्या मुझे भी चेतावनी देनी है ?"

सन्यासी कुछ हँसकर बोले, "चेतावनी तो नहीं किन्तु सहायता अवश्य देनी है।" इतना कहकर वे मिस्टर वेस्ट की ओर घूमकर बोले, "आपलोगों के लिये दो कमरे ठीक करा दिये गये हैं कृपाकर आइये। वहीं स्थिरता पूर्व्वक बातें की जांय।"

हमलोग चुपचाप उनके पीछे चले और सन्यासी हमे दूसरे तल्ले पर एक कमरे के सामने पहुँचाकर बोले, "आपलोग अभी विश्राम करें, मैं थोड़ी देर में आता हूँ।" इतना कहकर वे चले भी गये।

हमलोगों ने कमरों को देखा तो चारपाई, टेबिल और दो कुर्सियों से सजा पाया। मिस्टर वेस्ट ने एक कमरे पर अधिकार किया और मैंने दूसरे पर। अपने सामानों को यथा स्थान रखकर, वेस्ट ने साहब पूछा, "गोपाल! क्या मैं आ सकता हूँ ? मुझे बहुत कुतूहल है।" मैंने आने की आज्ञा दे दी और वे आकर एक कुर्सी पर बैठ गये।

उन्होंने कहा, "क्षमा करना, उस साधु के बारे में मुझे कुतूहल हो रहा है। वह तुम से परिचित सा मालूम होता है!"

मैंने कहा, "यह पाँच वर्ष की बात है। उसी दिन की जिस दिन इन्दु और चन्द्रिका का प्रथम मिलन हुआ था। उस दिन हम दोनों कुछ साथियों के साथ, उत्सव देखने निकले, तो इसी साधु को बोर्डिंग हौस के फाटक पर देखा। इसने चन्द्रिका को बाहर जाने से निषेध किया था।"

"इसका कारण क्या ?"

"कारण तो कुछ कहा नहीं—केवल यही कहा कि यदि भलाई चाहते हो, तो बाहर न जाओ।"

"आश्चर्य्य ! अब इसवार क्या कहने आया है ?"

इसी समय किसी ने द्वार खटखटाया, और मैंने अन्दर आने की आज्ञा दे दी। द्वार खोलते हुये सन्यासी जी अन्दर आये। अपनी कुर्सी उन्हें देकर मैं टेबिल पर बैठ गया। सन्यासी जी बैठ गये। क्षणेक बाद वह बोले—

"आपलोगों को आश्चर्य्य होता होगा कि मैं यहां कैसे आ गया। जिन कारणों से मेरा शारीरिक जीवन चन्द्रिका के जीवन से संबद्ध हो गया है उसे स्पष्ट करने का अभी समय नहीं किन्तु यही कहना काफी है कि इस समय चन्द्रिका का जीवन संशयमय हो गया है। उससे भी संशयमय आपकी (वेस्ट साहब की ओर संकेत कर के) पुत्री का भविष्य है। आजकल के युवक और युवतियों में अनुभव से बनाये हुये नियन्त्रणों को उल्लङ्घन करने की तो तीव्र इच्छा होती है किन्तु अपने में वह क्षमता पैदा कर नहीं पाते जिससे अनियन्त्रित जीवन के संघर्षणों से अपने को ऊपर उठाये रहें। ऐसी हालत में दुःख के सिवाय और क्या हो सकता है। मुझे मालूम था कि चन्द्रिका के हेतु इस शरीर को कष्ट उठाना पड़ेगा ही और इसीसे मैं आप दोनों की राह देखता खड़ा था। अब अधिक वार्तालाप का समय नहीं है। मैंने कुलियों को ठीक कर दिया है। यदि आप शीघ्र चलने को तैयार हो जाँय तो कुछ राह तो हम निश्चय पार हो जांये।"

इतना कहकर सन्यासी बाहर चले गये और चार-पांच कुली आये। मैंने वेस्ट साहब से पूछा,

"क्या आपकी राय अभी चलने की है ? सन्यासी ने तो हमारी राय पूछने की भी कृपा न की।"

वेस्ट साहब ने कहा, "विचित्र मनुष्य है ! किन्तु हमें यहां

बैठने की आवश्यकता भी तो नहीं है।" फिर उन्होने घूमकर एक कुली से पूछा, "क्या रावटी साथ में लिया है ?"

उसने कहा, "जी, हां।"

हमलोग तो चाय पी ही चुके थे, इसलिये तुरत रवाना होने में कोई अपत्ति नहीं थी। बस हम उठ खड़े हुये और सामान को कुलियों के हवाले कर, बाहर निकले। देखा सन्यासी चुपचाप खड़े दूरस्थ, हिमाच्छादित हिमालय के शिखरों को देख रहे थे। हमारी आहट पाकर वे फिरे और बोले—

"आपलोग आ गये ? चलिये, चलें, क्योंकि एक क्षण भी खोने से भारी बिपत्ति आ जा सकती है। यह आपका पत्र है।" यह कहकर उन्होंने मुझे एक पत्र थमा दिया।

हमलोग चुपचाप उनके पीछे हो गये। मुझे इस सन्यासी के अनोखेपन पर परम आश्चर्य्य और कौतूहल हो रहा था। मैंने निश्चय किया कि जिस तरह होगा, शीघ्र ही उनसे उनका रहस्य जान लूंगा।

मैं प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन का प्रयत्न नहीं करूंगा क्योंकि चन्द्रिका ने कवि की दृष्टि से यह काम किया है। मुझे तो शीघ्रता से इस कथा को कह सुनाना है।

अन्धकार हो रहा था कि हमलोग लक्ष्मण झूला के पास की चट्टी पर पहुँचे। जब तक कुलियों ने रावटी खड़ी की, हम और वेस्ट साहब झूला पर जाकर गङ्गा की शोभा देखने लगे।

वेस्ट साहब ने कहा, "गोपाल, क्या तुम इस साधु की बातों पर विश्वास करते हो ? क्या होप और चन्द्रिका सचमुच प्राण भय में हैं ?"

मैंने उत्तर दिया, "मेरी बुद्धि तो काम नहीं करती ! इस ने कैसे जाना की हम इसी समय यहां पहुचेंगे ?"

वेस्ट साहब ने कहा, "फिर हमलोग बिना जांच किये, जहां यह ले जा रहा है वहीं जा रहे हैं। न मालूम कहां ले जायगा।"

अब मुझे उस पत्र की सुधि आई जिसे सन्यासी ने मुझे चलते समय दिया था। मैंने उसे जेब से निकाला किन्तु रोशनी न होने के कारण पढ़ न सका। तब मैंने कहा

"चलिये देखें पत्र में क्या लिखा है।"

जब हमलोग चट्टी पर फिरे तो रावटियों को यथा स्थान खड़ा पाया और एक ओर खाना पक रहा था। सन्यासी एक ओर कुछ हटकर मृगछाला पर बैठे थे। मैंने दीपक के सामने पत्र खोला तो देखा कि यह भी चन्द्रिका ही का पत्र है। लिखा था—

"प्रिय गोपाल! यह पत्र मैं धर्म्मशाला के मैनेजर के पास छोड़े जाता हूँ। मेरी धारणा यहां और दृढ़ हो गई कि लीओ इन्दु को लिये भागा जाता है। उसका एक बङ्गला यहां से १५ दिन की दूरी पर है। यहां के सब कुली उसे जानते भी हैं। मैं वहीं जा रहा हूँ, और अब जो कुछ होगा वहीं होगा।

तुम्हारा,

चन्द्रिका"

मैंने इस पत्र को पढ़ कर वेस्ट साहब को सुना दिया। वे कुछ भी न बोले। जब तक खाना न बना हमलोग अपने २ विचारों में मग्न रहे। उसके बाद खाना खाकर सो गये। सन्यासी ने कुछ न खाया और उसी तरह मृगछाला पर बैठे रहे। उस रात को भयानक स्वप्नों से मैं बार २ जगता रहा। ज्योंही उषा की ज्योति पूर्व्व में दृष्टहुई कूचकी तैयारियां होने लगीं। शीघ्रता से नित्यः क्रियायें की गईं और चाय पीकर हम रवाना हो गये।

सन्यासी सब से आगे हुये। उनकी चाल तेज होते हुये भी, स्थिर थी, न कोई उतावलापन था, न शिथिलता थी। कुछ दूर चलने पर मैं उनके पास पहुंचा और अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिये वार्तालाप शुरू किया।

मैंने कहा, "स्वामीजी" आप तो त्रिकालज्ञ; ज्ञानसिद्ध महापुरुष हैं। जब आप के समान लोग भी संसार के सुख-दुःख में खिचआते हैं तो हम संसारी क्या कर सकते हैं?"

सन्यासी मेरी ओर देखकर हँस पड़े। उन्हो ने धीरे २ स्पष्ट आवाज में कहा, "गोपाल? तुम मेरे विषय में अनेक प्रश्नों से व्याकुल हो रहे हो। मैंने कह दिया है कि उन बातों के प्रगट करने का अभी समय नही आया है। तब तक अपने कुतूहल को किसी तरह रोक रखो। मैं जो कहता हूं उसे ध्यान देकर सुनो। मेरा और तुम्हारा यह जीवन निराधार, अनाश्रित नहीं है। ऐसे जीवनों की अनन्त परम्परा अनादि से चली आती है। मैं उन्हें देख और समझ सकता हूं; तुम उन्हें देख और समझ नहीं सकते। सभी संकल्प अनन्त में ही तो कल्पित हैं—यदि तुम अपने और अनन्त के बीच पड़े हुये अहङ्कार का परदा उठा सको, उससे अभेद हो जाओ, तो तुम भी देखने और समझने लगो। किन्तु इस समय तो वह करना है जो आती हुई विपत्ति को दूर कर सके इसलिये मुझे समय बचाने का प्रयत्न करना है। क्या तुम्हारे साहब कठिन राह से चल सकते हैं?"

मैं—मैं ठीक नहीं कह सकता क्योंकि वेस्ट साहब बूढ़े नहीं हैं तो जवान भी नहीं रहे।

इतना कह कर मैंने वेस्ट साहब को संकेत किया और वे हमारे पास आ गये। मैंने स्वामी के प्रश्न को दुहराया। उन्होने कहा—

"यदि आवश्यकता होगी तो निश्चय चल सकूँगा। मैं अपने समय में अनेक ऊंचे पहाड़ों पर चढा हूँ।"

मुझे आश्चर्य हुआ कि स्वामी उनकी अंग्रेजी में कहे बात को समझ गये और बोले,

"तब ठीक है। मेरी भावना है कि जहाँ हमें जाना है वहां के लिये कोई चलता मार्ग नहीं है। इसके अलावा तीन चार दिनों की देर को घटाना है।"

इसके बाद और कोई खास बात न हुई जिसका उल्लेख किया जाय। छठे दिन स्वामी ने कुलियों को चलती राह से जाने को कहा और स्वयं दो शिष्ठ कुलियों को और हम दोनों को अपने साथ आने को कहा। कुछ हल्का सामान इन दोनों कुलियों को दिया गया और हम लोग चलती राह छोड़ कर पगडंडी से चलने लगे। लियों के मूल जत्थे को कहा गया कि वे कार्टर साहब के बंगले पर हमलोगों से मिले और चेतावनी दे दी गई कि देर न करें।

अब हम लोग पगडंडियों पर ही चलने लगे। कहीं २ मुझे पगडंडी भी नहीं दीख पड़ती, केवल घने वृक्ष और झाड़ियों से ही जाना होता था। किन्तु आश्चर्य की बात थी कि स्वामी को एकबार भी हिचक न हुई, और वे बराबर आगे २ अनघरत चले ही जाते थे। ऊपर चढ़ना या नीचे उतरना अत्यन्त कठिन होने पर भी मानों उनके लिये कुछ भी नहीं था। न उन्हें थकावट मालूम होती, न भूख प्यास। सन्ध्या को हमलोग किसी पेड़ के नीचे ठहर जाते और प्रभात होते ही चल पड़ते।

अट्ठारहवां अध्याय

सर्दार की कथा

आपके सामने मैं क्या कहूं ? आप जानते ही है कि हम जङ्गली है, पहाड़ों का खच्चर कहने में भी कोई हर्ज नहीं। फिर भी मैं मेम साहब की बात कैसे उठा सकता हूँ ! इसलिये मैं अपनी टूटी फूटी बोली में उस रात की बातें, और उसके पहले और पीछे की बातें भी कहता हूँ, आप लिखें। मेरे लिये तो काला अच्छर भैंस बराबर ही है। हां, लेकिन देखिये, जैसा मैं बोलता हूं, वैसा ही ठीक २ न लिख डालिये नहीं तो कोई समझेगा भी नहीं— या, जैसा कहता हूँ, वैसा ही लिखिये, जिसमें पढ़ने वालों को कुछ तो श्रम उठाना पड़े ! क्यों कि आप जानते ही हैं कि हमलोगों को कैसी २ विपत्तियां उठानी पड़ी थीं— तो क्या हमारी कथा पढ़ने के लिये कुछ भी परिश्रम करना न पड़ेगा ?

विपत्ति की बात सोचते ही अब भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हम जङ्गली लोगों ने न कभी ऐसी बातों को सुना न देखा हां, जादू टोना की बात सुनते आये हैं, वह भी किसी को करते देखा नहीं। केवल एकबार मेरे गांव के भगेलू के बच्चे को ज्वर आ गया था, तो उसने गांव के ओझा को बुलाया और जब वह आया तो जन्तर-मन्तर करके बोला कि इसे थापर की मां (जो एक सुन्दरी बेवा थी) ने कुछ कर दिया है। तब तक तो कोई जानता नहीं था कि थापर की मां, मन्तर टोना जानती है, और ओझा की बात से सभी हक्के-बक्के हो गये, लेकिन अब होता हीं क्या ? ओझा की आज्ञा से वह पकड़ लाई गई, और उसके रो २ कर इनकार करने का कुछ भी

ख्याल न करके ओझा ने उसे पीटना शुरू किया। जब वह "अब नहीं, अब नहीं" चिल्लाने लगी, तब ओझा ने अपनी झोली में से एक शीशी निकाली और कोई रस एक ग्लास में उडेल कर, उसे दिया और कहा, "अपने हाथों इस बच्चे को पिला, और इसे छोड़ कर चली जा, नहीं तो तुझे जला दूँगा।" "जाती हूँ, जाती हूँ," चिल्लाती वह थापर की मां, बच्चे को रस पिला कर, भाग चली। आप मानिये या न मानिये, दूसरे ही दिन वह बच्चा चङ्गा हो गया।

क्षमा कीजिये, मैंने इधर उधर की बातों में ही आपका बहुत समय नष्ट कर दिया। अब मैं उस दिन की बात शुरू करता हूँ। साहब की आज्ञा के मुताबिक, हम दोनों सूर्य्यास्त के पहले ही लीओ साहब की कोठी की ओर रवाना हो गये। जो कुछ खाना पक सका था, वही खाकर सन्तोष किया। मैंने अपने साथी कुलियों को, यह कह कर कि हमलोग कल्ह किसी समय आजायेंगे, और उन्हे एक दिन का खोराकी देकर, शान्त कर दिया था। सूर्य्यास्त के बाद, जब जङ्गलों में अन्धकार तेजी से गाढ़ा होता जाता था, हमलोग, उस बङ्गले के अहाते के बाहर पहुंच गये। चूंकि यह राय हुई थी, कि जबतक पूरा अन्धेरा न हो जाय, छिप कर ही बङ्गले की देख रेख की जाय, हमलोग दो भिन्न झाड़ियों में छिप गये और यह देखने लगे कि बंगले में कौन आता और कौन जाता है। हमलोगों में यह भी निश्चय हो गया था कि यदि हममें कोई भी दूसरे को बुलाना चाहे तो उल्लू की बोली का अनुकरण करके संकेत करेगा।

कुछ देर में बंगले में लालटेनों की रोशनी हुई और इधर उधर नौकरों के आने जाने की आहट मिलने लगी। मैं जिस झाड़ी में छिपा था वह बंगले के उस किनारे थी जिधर शायद नौकर ही रहते

थे और रसोई घर था। इससे मैं कुछ देख नहीं पाता था। एक बार "Boy" कह के किसी का पुकारना और उसके उत्तर में कहा हुआ "जी हजूर" भी सुन पड़ा। शायद २ घण्टे बीते होंगे जब छुरी, कांटे और बर्तनों के किसी कमरे में रखे जाने की आवाज सुन पड़ी। मैं यही सोच रहा था की यह कौन सा कमरा है, कि किसी का हाथ मेरे कन्धे पर पड़ा और मैं सर्द हो उठा। तब मालूम हो गया की यह मेरे साहब हैं। उन्होने मेरे कान में मुंह लगा कर धीरे २ कहा—

"सर्दार, उस कमरे में कुछ गोलमाल हो रहा है। मैं देखने जाता हूँ, तुम पीछे से आना।"

इतना कह कर साहब निःशब्द पैरों से चले गये। कुछ देर के बाद मैं भी चला, और सावधानी से अपने को झाड़ियों की ओट में करता हुआ उस कमरे के जङ्गले के पास पहुंच। शीशे की किवाड़ियां बन्द थीं किन्तु अन्दर में तेज रोशनी जल रही थी और मैंने देखा कि एक गोल मेज पर एक अङ्गरेज और एक जवान सुन्दरी मेम आमने सामने बैठे हैं। मेज के एक ओर एक खानसामा खड़ा था। प्रतीत होता था कि खाना अभी खत्म हुआ है और काफी की बारी थी। इसी समय साहब ने कुछ कहा, और मेम ने उसकी ओर देख कर शिर हिला दिया। मैं उस औरत को देखकर ही समझ गया था कि वह बीमार है किन्तु जब उसकी आखें उठीं तो मैंने देखा की वे उन्माद और भय से भरी हैं। काफी के बाद खानसामा बर्तनों को लेकर चला गया और कुछ देर उस घर में सन्नाटा छाया रहा। इसके बाद वह मनुष्य उठा और धीरे २ उस स्त्री की कुर्सी की ओर जाने लगा। मैंने देखा की उस स्त्री की आंखें उस पुरुष के उपर टंग गईं; उसके मुख पर भय और घृणा के लक्षण व्यक्त थे और उसका शरीर आपे में सिमटा जा रहा था।

किन्तु इतना होते हुये भी वह क्यों उठ कर भाग नहीं गई, मेरी समझ में न आया। पीछे मुझे मालूम हुआ कि वह अङ्गरेज जादू जानता था। खैर, वह साहब धीरे २ उस सुन्दरी के पास आकर, उसके मुख पर अपनी तीव्र दृष्टि को गड़ाकर, कुछ बोला, जिसमें का मैंने एक शब्द समझा "मिस होप"। पीछे मुझे साहब से मालुम हुआ की वह बात ऐसे हुई—

साहब लीओ— "तुम मिस होप हो"

उत्तर— 'हां'

लीओ— तुम्हारा दूसरा कोई नाम नहीं

उत्तर— नहीं

लीओ— तुम चन्द्रिका को नहीं जानती

उत्तर— नही जानती

लीओ— तुम मुझे प्यार करती हो

उत्तर— करती हूं

लीओ— तुम मुझसे विवाह करोगी

उत्तर— करूंगी।

इसी समय कमरे का द्वार खुला, और मेरे साहब कमरे में दाखिल हुये। उन्हे देखकर, लीओ क्षणेक घबराया, किन्तु फिर उसका मुख क्रोध से विकृत हो गया। फिर सम्भल कर वह पैशाचिक हँसी हँसकर बोला,

'ओहो, चन्द्रिका सिंह? खूब आये। हमलोगो के प्रेमालाप को तो सुन ही लिया होगा। अच्छा ही हुआ। अब क्या इच्छा है।'

अब मिस होप ने मेरे साहब को देखा। देखते ही उसका शरीर कांप गया, और उसकी आकृति में अनेक परिवर्तन बड़ी तेजी से दीष्ट हो गये, जो आश्चर्य, भय, प्रेम, आनन्द, दुःख सभी के सम्मिश्रण

प्रतीत हुये, और वह कुर्सी से लुढ़क कर फर्श पर ढेर हो गई। यह देख कर मेरे साहब मानो आपे से बाहर हो गये, और यह कहते कि "रे शैतान का बच्चा! तूने मेरी इन्दु को क्या कर दिया? अभी तेरा कलेजा निकाले लेता हूँ" वे लीओ पर झपटे। लीओ टेबिल पर हाथ रख कर कुछ खिसक गया। मैंने बावर्ची खाने में एक घण्टी का बजना सुना। इधर लीओ कुछ खसक कर, धीर शब्दों में बोला लेकिन उसकी आंखें शैतानी क्रूरता से जल रही थीं।

"मेरे चन्द्रिका! देखो, पाशवता ठीक नहीं। माना तुम बड़े बली हो, किन्तु क्या तुम मिस होप को बलपूर्व्वक पाना चाहते हो?"

"मैं तेरे शिर को फोड़ना चाहता हूँ"

"क्यों? तुम भी मिस होप को चाहते हो; मैं भी चाहता हूँ। यदि मिस होप मुझ से विवाह करना चाहे, तो उन्हे रोकने वाले तुम कौन?"

"तुमने अगर इन्दु का नाम तक लिया, तो तेरी बोटी २ काट डालूंगा।"

"तुमने तो कानों सुन लिया की मिस होप ने मुझसे विवाह करना स्वीकार कर लिया हैं।"

यह मेरे साहब सुन न सके और कूद कर लीओ से गुथ गये। इसी समय कमरे का द्वार धीरे से खुला और एक मोटा तगड़ा पहाड़ी एक मोटा डन्डा लिये घुसा और धीरे २ बढ़ने लगा। मैंने मामला बिगड़ते देख कर जङ्गला खोलने का प्रयत्न किया, किन्तु वह खुल न सका। तब मैंने निश्चय किया की अब यहां ठहरने से काम न चलेगा और वहां से बंगला के सामने की ओर चला। इसी समय मैंने देखा की वह लीओ का सहायक अपने डण्डे का एक

पूरा वार मेरे साहब के शिर पर लगा दिया। और वह वहीं पर ढेर हो गये। जब मैं शीघ्रता से वहां से चला तो लीओ को कहते सुना

"शाबाश! अब इसे बान्धो"

इसी गुत्थम गुत्थी में हम सभी मिस होप को भूल गये थे। जाते २ मैंने देखा की वह एक छाया की तरह द्वार के पास पहुंच गई थीं और उसे खोलकर बाहर हो गईं। मैं और देखने सुनने के लिये रुका नहीं। तेजी से घर के अगले हिस्से की ओर आया। वहां अन्धेरा और सन्नाटा छाया हुआ था। मैं पैर दबाता धीरे २ उस द्वार की ओर बढ़ा जिसकी ओट में शायद ये दुष्ट मेरे साहब पर अत्याचार कर रहे थे। किन्तु मैं ज्योंहि दूसरा कदम उठा रहा था कि द्वार खटखटाया और मैं तत्क्षण ही एक स्तम्भ की साये में छिपक गया। देखता क्या हूँ को मेरे साहब को कन्धों पर सम्भाले लीओ साहब और उसका सर्दार निकले। लीओ ने कहा,

"तुम इसे लेकर उस गङ्गा के किनारे वाले द्वीप पर चलो मैं अभी मेम साहब को लेकर आता हूँ।"

वह सर्दार मेरे साहब को लेकर चलता बना। मैं सोचने लगा कि अब मैं क्या करूं—किसकी पीछा करूं। मैं जानता था की मेरा साहब उस मेम साहब को अपने प्राण से भी अधिक प्यार करता है और जब भेंट होगी तो वह मुझ से निश्चय पूछेगा की मेम साहब का क्या हुआ? और तब मैं क्या कहूंगा? ये बातें मेरे मन में क्षण भर में गुज़र गईं और मैंने निश्चय कर लिया कि मुझे लीओ का ही पीछा करना आवश्यक था। इसलिये मैं उसी का कार्य्य-क्रम देखने लगा। वह बारी २ बंगले के सभी कमरे में गया और बाहर निकला। आखिरी कमरे के बाहर आने पर वह

कुछ बड़बड़ाता क्षणेक खड़ा रहा और तब वह "मिस होप, मिस होप" कह कर दो चार बार चिल्लाया। इसके बाद मैंने "डैम" सुना और तब वह तेजी से बंगले से उतरा और एक ओर चला। मैं भी शान्ति से और अपने को झाड़ियों की छाया में छिपाता उसके पीछे २ चला। कुछ दूर चलने पर एक टीला ऐसा दीख परा जिस पर एक धुंधली मूर्ति खड़ी मालूम हुई। मैं जहां तक निकट सम्भव था चला गया। लीओ ने आते ही पूछा,

"सर्दार, कूया उस दुष्ट को होश आया?"

वह मूर्त्ति झुकी मानो पृथ्वी पर पड़ी किसी चीज को देख रही हो। फिर उसने कहा,

"मालूम तो होता है साहब! शायद दो एक मिनट में ठीक हो जायगा। अब इसे कूया करूं?

लीओ ने कहा, "इसे तो एक लात लगा कर नीचे गङ्गा में भेज देना होगा। किन्तु इससे मुझे मिस होप के सामने कुछ बातें करनीं हैं—और मिस होप का पता नहीं।"

सर्दार— "कुछ पता नहीं?"

लीओ— "तुमने देखा नहीं?"

सर्दार— "नहीं",

लीओ— तो इसे यहीं छोड़ कर चलो, पहले मिस बावा को खोजें। कहां गई होंगीं इस समय? इसके बन्धन तो ठीक हैं न।

सर्दार— हां।

लीओ— यदि तेन्दुआ इसे खा जाय, तो अच्छा ही हो। तुम एक ओर ढूंढ़ो, मैं दूसरी ओर ढूंढता हूं। बत्ती है न?

सर्दार— जी हां।

इसके बाद दोनों दो ओर जाने लगे। कुछ देर मैं उनके पैरों के चापों को सुनता रहा, और टौर्च की रोशनी को इधर उधर

दौड़ते देखा। पहले तो मुझे यह भय था की कहीं मेरी झाड़ी पर ही टौर्च की रोशनी न पड़े किन्तु जब भाग्यवश ऐसा न हुआ और वे दूर चले गये, तो मैं स्वस्थ होकर, धीरे २ उस टीले की ओर बढ़ने लगा। इसी समय, मैंने देखा की एक धुंधली रेखा, बहुत सम्भल २ कर उसी टीले की ओर बढ़ रही है। अब तो मेरा बदन काटो तो खून नहीं। यह तो प्रेत-मूर्ति थी! जी आया की चीख कर, भागूं! किन्तु मैंने कहा क्या क्षत्रिय होकर भाग जाऊं, और कैदी साहब को छोड़ दूं? इसी उधेड़बुन में वह छाया टीले पर पहुंच गई। जमीन पर से आवाज हुई,

"कौन! इन्दु?"

"नहीं, मै तो मिस होप हूं।"

"प्रियतमा इन्दु! क्या मुझे पहचानती हो?"

'नहीं"

"प्यारी! क्या कहती हो? क्या इस दुष्ट ने.....क्या मुझे मारनी आई हो?"

मैंने घबड़ाकर देखा की उस स्त्री ने अपना हाथ उठाया है, और उसमें एक चमकती छुरी है। मैं अत्यन्त फेर में पड़ा की अब क्या करूं—यदि दौड़ा, तो वह स्त्री निश्चय ही शिघ्रता से उस छुरी को साहब के हृदय में घोंप देगी; यदि धीरे २ चला, तब भी शायद पहुँचना बहुत देर से हो और सब मामला ही समाप्त हो जावे। मैं इसी विचार में था, की साहब की आवाज सुन पड़ी। उन्होने कहा

"प्यारी इन्दु, क्या तुम हो?"

उत्तर—"नहीं; मैं मिस होप हूँ।"

"प्रियतमा! तुम्हे क्या हो गया है? क्या मुझे पहचानती नहीं?"

"नहीं।"

"हाय! इस दुष्ट ने क्या कर दिया! अब मैं जीकर क्या करूंगा! इसी छुरी से मुझे मार दो।"

मैंने देखा वह स्त्री झुकी। मेरे तो होश उड़ गये—श्वांस लेना तक बन्द हो गया। वह छुरी उसके हाथ में चमकी और हाथ नीचे गिरा। वह फिर सीधी होकर खड़ी हुई और बोली "चले जाओ।"

साहब उठकर बैठ गया और अङ्गों को ऐंठता हुआ, बोला, "मिस होप! आपके पिता माता अत्यन्त दुखी हैं। आपको वहां पहुँचा कर, मैं चला जाऊंगा।"

वह विचित्र विवशता में हाथों को फैला कर, और पागलों की तरह हँसहर, "भागो, भागो" बोलती हुई, कूद कर स्वयं एक ओर भाग चली। अब मेरा बन्धन मानो छूटा और मैं भी कूद कर दौड़ा। साहब खड़े हो गये थे और उस मेम के पीछे दौड़ने वाले ही थे, की मेरी आहट पाकर रुक गये और देखने लगे। मैं अपना नाम कहता दौड़ता ही गया। तब उन्होने भागती मेम की ओर हाथ उठा कर कहा, "उनके साथ जाओ" मै भी घूम कर उधर ही ही दौड़ा जिधर वह मेम साहब भागी थी। लेकिन उस अन्धेरी रात में अब उनका पता नहीं चलता था। एक धुन्धली रेख कभी २ उग सो जाती थी। इसी समय एक ओर, "मिस होप, मिस होप" की पुकार सुन पड़ी। यह आवाज जस ओर हो जारहा था उसी ओर सुन पड़ी; किन्तु साथ ही साथ एक भयानक चीख मेरी दाहिनी ओर सुन पड़ी। यह निश्चय मिस होप की चीख थी किन्तु यह अनुमान करना असम्भव था की वह क्यों चीख रही थीं। मैं हवा की तेजी से चीख की ओर दौड़ा। उस अन्धेरे में कई बार गिरते २ बचा। किन्तु मैं दौड़ता ही गया उस चीख के

अनुमानित स्थान की ओर। मैं इतनी तेजी से दौड़ा जाता था, की अचानक अपने सामने एक सफेद ढेर को देख कर, मैं अपने को हठात् नहीं रोक सका और कूद कर उसके पार हो गया। मैं इसके लिये आपलोगों से क्षमा मांगता हूँ क्योंकि वह तो बेहोश मेम साहब ही थीं। यह मैंने घूम कर निश्चय कर लिया। इसी समय किसी के दौड़ते आने की आवाज सुन पड़ी। मैं तुरत एक झाड़ी में छिप गया और अपने हाथ में कुकरी को सम्भाला। सम्भवतः वह तो लीओ या उसका सर्दार था। यदि मैंने अपने साहब के अभिप्राय को ठीक समझा था, तो मुझे किसी हालत में मेम साहब को उनके वश में जाने देना नहीं चाहिये। जितनी देर में मैंने अपने कर्त्तव्य को निश्चय कर लिया, उतनी ही देर में वह मनुष्य वहां पहुँच गया और हांफता हुआ, मेम साहब के शरीर के सामने रुका। वह झुक कर मेम साहब को देखने लगा। यही मेरा अवसर था। मैं कूद कर अपनी कुकरी के भारी मुठ से उसके शिर पर एक गम्भीर वार किया और वह तलमला कर दूर चला गया। किन्तु मैंने उसे सम्हलने का समय नहीं दिया। कूद कर उससे गुथ गया। देखा, वह पूरा हृष्ट पुष्ट कसरती शरीर का मनुष्य था। यदि मैं पहला वार न किया होता, तो उसे आसानी से पछाड़ न सकता। किन्तु उस चोट ने उसके मष्तिष्क को मूर्च्छित प्राय कर दिया था। इससे मैंने थोड़े ही परिश्रम में उसे दे मारा और उसकी छाती पर बैठ कर उसके गर्दन को दवाना शुरू किया जिसमें वह चिल्ला न सके। थोड़ी देर में वह पूरा बेहोश हो गया। फिर मैंने उसके कपड़ों को ही खोलकर उसके हाथों और पैरों को बान्धा और अपनी जेब से अपनी रस्सी निकाल कर उसके बन्धनों को पक्का किया। तब मैं सोचने लगा की अब क्या करना चाहिये। यह तो निश्चित था की अभी लीओ कहीं घूम ही रहा था, और वह

फिर कर मेरे साहब के पास ही आने वाला था। किन्तु क्या मेरे साहब वहीं खड़े रहेंगे? यह तो मेरे लिये एक बड़ा गोरख धन्धा हो गया। क्या करूं? मेम साहब को यहां छोड़ना ठीक नहीं था। लेकिन लेकर जाऊंगा कहां? कहीं बंगले के और नौकर आ गये तब क्या करूंगा? कहीं लीओ ही आ गया, तो मामला बेढब हो जायगा। मैंने सब सोच विचार कर यही निश्चय किया की मिस बाबा को लेकर मैं वहीं चलूं जहां वह साहब को मुक्त करने के लिये स्वयं छिपी थीं। मैंने देखा की वह अभी तक बेहोश पड़ी हैं और यह अच्छा ही था क्योंकि होश रहता तो न जाने क्या रोक थाम करतीं इसलिये मैंने उन्हें आदर पूर्वक उठाकर अपनी पीठ पर लाद लिया। मुझे आश्चर्य्य हुआ की वह इतनी हल्की कैसे हैं और यह सोच कर की शायद लीओ इन्हें उपवास कराता है मुझे उस पर क्रोध हो आया। यदि वह उस समय मिल जाता तो अपनी कुकरी के एक ही वार में उसका काम तमाम कर देता और सरकार मुझे पकड़ भी नहीं सकती क्योंकि मैं पहाड़ों का रहने वाला हूँ, मुझे पुलीस कहां पा सकती है?

खैर, तो मैं मेम साहब को लेकर जिधर से आया था उधर ही चला। आप पूछ सकते हैं कि रात में मैंने कैसे राह पाई, किन्तु यह बात हम पहाड़ियों के लिये आश्चर्य्य की नहीं। मैं थोड़ी ही देर में उन झाड़ियों के पास पहुंच गया जो उस टीले के पास थीं जिस पर मेरे साहब डाल दिये गये थे। किन्तु मैंने आश्चर्य्य से देखा कि इस समय वह टीला एक दम खाली है। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा। अब मुझे क्या करना चाहिये? मेम साहब को कहां ले जाऊं? यह तो साफ था की मैं उन्हें पीठ पर लिये रात भर घूमता नहीं रह सकता; तब अब करूं क्या? क्या बङ्गले पर जाना ठीक होगा? कौन कह सकता था कि वहां अब और कोई नहीं होगा। और मेम साहब को पीठ पर लेकर मैं कैसे किसी

आघात का सामना कर सकता था ! सब बातों को सोचकर मैंने यही निश्चय किया कि मेम साहब को उसी टीले पर रख कर कुछ काम किया जाय। ऐसा ही मैंने किया भी उन्हे धीरे से घास पर लिटा कर, मैंने चारो ओर अन्धकार चीरने का प्रयत्न किया; कान लगा कर आवाजों को सुनने की कोशिश की, किन्तु कुछ भी पता न चला—केवल अदृष्ट गङ्गा की अविरत कलरव सैकड़ों फुट नीचे में सुन पड़ता था ! दूर के वृक्षों की तो रेखा भी दृष्ट नहीं होती थी। मेम साहब अभी तक ज्यों को त्यों थीं—और मुझे शङ्का होने लगी कि कहीं मर तो नहीं गईं। मैंने झुक कर उनके हाथ पैर छुये—उन्हे गरम पाया—किन्तु हृदय का स्पन्दन कैसे 'देखूं ! मैंने अपना हाथ उनके नाक के पास किया। श्वांस धीरे २ चलते पाया तब कुछ स्वस्थ होकर फिर से सोचने लगा की क्या करूं। इसी समय मैं देखा कि पूर्व्व दिशा में कुछ उजियाला होने लगा और मैं समझ गया कि अब चन्द्रमा निकलेगा। अभी तक तो अंधियारे में छिपने की सुभीता थी लेकिन चाँदनी में कैसे छिपा जायगा ? तब यह बात थी कि जैसे मैं नहीं छिप सकता था वैसे ही शत्रु भी नहीं छिप सकता था। एकबात स्पष्ट थी—मुझे मेम साहब को इस हालत में छोड़कर कहीं भी जाना न चाहिये—कहीं लीओ आ जाय, और साहब न पहुँचें तो भारी खतरा हो। मुझे एक बार वह उल्लू के बोल वाले संकेत की बात याद आई, और मैं अपने को कोसने वाला ही था की मुझे यह इतनी देर तक क्यों न सूझी। किन्तु मैंने तुरत देखा की इसमें अनेक अड़चनें थीं। पहले तो, साहब के पास यह संकेत पहुँचे वा न पहुँचे। यदि यह किसी शत्रु के कान में पड़ गया तो उसे मेरा स्थान मालूम हो जायगा और यह एक विपत्ति ही होगी। तब मैने सोचा कि कुछ दूर खसक कर बोलूं। पहले तो मैंने मेम साहब को उठाकर एक झाड़ी की ओट में रखा और तब

उस झाड़ी को अपने दृष्टि पथ में रखते हुये, मैं कुछ दुर हट गया, और एक बार, दो बार, तीन बार संकेत किया। किन्तु कोई भी प्रत्युत्तर नहीं मिला। केवल वह निबिड़ भूकता भङ्ग होकर फिर सघन हो गई। मै निराश होकर मेम साहब के पास चला आया और इस रात की सभी बातों पर आश्चर्य्य करने लगा। मैं गहरे विचार में था की अहाते के फाटक पर कुछ आहट सी हुई, और मैं चौंक कर उसी ओर देखने लगा। इस समय चन्द्रमा काफी ऊपर उठ आया था और प्रकाश काफी हो गया था, किन्तु जहां मैं झाड़ी की छाया में छिपा था वहां से वह फाटक दीख नहीं पड़ता था। फिर भी वहां की आवाजों से प्रतीत हुआ जैसे फाटक खुला और कुछ लोग इहाते में दाखिल होकर फिर फाटक को बन्द कर रहे हों; इसके अनन्तर चार पांच मनुष्यों के चलने और कुछ बोलने की आवाजें सुन पड़ी और मेरे भय और आश्चर्य्य का ठिकाना न रहा। भला इस रात्रि के समय इस तरह निधड़क होकर कौन आये? हम पहाड़ी जो रात दिन इन्ही पहाड़ों और जंगलों पर बिताते हैं, रात्रि में इन पहाड़ों पर चलने का साहस कभी नहीं करते—फिर ये कौन, कैसे और कहां से आयें? मैं उसी ओर दृष्टि गड़ाये और हाथ में कुकरी संभाले बैठा रहा। कहीं लीओ मदद लाने बाहर तो नहीं गया था? क्या ये इधर ही आयेंगे? तो मुझे क्या करना चहिये! अब मुझे पश्चात्ताप होने लगा कि क्यों मैंने बङ्गले के एक कमरे पर अधिकार करने का प्रयत्न नहीं किया क्यों कि यदि मैं एक कमरे में होता तो मेम साहब की पूरी रक्षा कर सकता। क्या अभी बङ्गले पर अधिकार करने का प्रयत्न करूं? मै यही सोच रहा था, कि वे लोग बङ्गले की ओर ही जाते चटक चाँदनी में दृष्ट हुये। यद्यपि वे क्षण भर ही दृष्ट हुये, मैंने देख लिया की वे पांच छः थे, और धीरे २ बातें करते और कुछ ढोते बंगले की ही ओर

दृष्टि किये, सावधानी से जा रहे थे। मेरे मन में ऐसा हुआ कि ये लीओ के मित्र नहीं हो सकते; तो क्या मैं भी उनके पीछे २ बङ्गले पर ही चलूं? थोड़ी देर सोचने पर यह साफ हो गया कि मुझे ऐसा ही करना चाहिये, क्यों कि शत्रु मेम साहब को खोज सभी जगह करता किन्तु बङ्गले के पास शायद न करता। इसलिये मैंने मेम साहब को पीठ पर उठाया। देखा उनकी हालत में कुछ भी अन्तर नहीं है। मैं झाड़ियों की ओट देता हुआ शीघ्रता से चला ओर अग्रभाग को बचाता, बङ्गले के पीछे एक झाड़ी की छाया में मेम साहब को छिपा दिया। तब मैं धीरे २ बङ्गले के अग्रभाग की ओर चला। जब मैं एक अच्छे स्थान पर पहुंच गया, तो देखा की पांच व्यक्ति द्वार के सामने खड़े कुछ बातें कर रहें है। उस म दो तो अंगरेजी ढंग के कपड़े पहने थें, एक सन्यासी सा प्रतीत हुआ। और दो मेरे ही समान पहाड़ी मालुम हुए। मैंने सुना

एक साहब—यहां तो किसी का पता नहीं है।

दूसरा साहब—अब क्या किया जाय? स्वामी जी! आपने कहा था यहीं मेरी बेटी से भेंट होगी।

सन्यासी गम्भीर शब्दों में बोला— घबराओ नहीं, तुम्हारी बेटी यहीं हैं—भेंट होगी।

इस पर साहब ने उन पहाड़ियो को कहा कि तुम लोग सावधानी से चारो तरफ खोजा, मैं पहले बङ्गले को तलाशी लेलूं तो तुम्हारे साथ शामिल हो जाऊंगा। मैंने इतनी देर में निश्चय कर लिया था कि ये लीओ के साथी नहीं हैं और लीओ भी यहां नहीं है। इसी निश्चय के आधार पर मैंने सोच लिया कि अब मेरा और मेम साहब का प्रकट होना ही ठीक है, शायद ये वे ही लोग हों जिनका सकेत मेरे साहब ने पहले हीं किया था। जो हो, इनसे

शत्रुता का भय नहीं हो सकता था, सहायता की आशा की जा सकती थी, और भगवान जानता था, मुझे कितनी आवश्यकता थी सहायता की। रह रह कर मेरा मन अपने साहब के लिये उद्विग्न हो रहा था। मालूम नहीं वे किस विपत्ति के शिकार हो गये। उन्हें ढूंढ़ निकालना मेरा कर्तव्य था। इस लिये मैंने ज्योंही साहबों को सीढ़ियों पर पैर रखते देखा उनकी ओर दोड़ा।

साहबों, अब मुझे छुट्टी दीजिये। यदि मैं मेम साहब के हुक्म को सर्व्वोपरि नहीं समझता, तो यह कथा कहने का भार कदापि नहीं उठाता। लेकिन अब तो मैंने आज्ञा पालन कर दिया; इतनी बातों को कोई दूसरा अपनी आंखों नही देख पाया था, जिससे मजबूरी थी नहीं तो, जिसके न बाप ने, न दादा ने कथा कहने का स्वप्न भी देखा, वह भला कैसे ऐसा साहस करता? और अब कहना है, साहबों का मेम साहब से मिलने की बात! वह तो न मैं, न मेरे पुरुषा ही, इस जन्म में क्या, सौ जन्मों में भी, वर्णन कर सकते।

उन्नीसवां अध्याय

गोपाल की कथा

मैंने कहा है कि सन्यासी जी की सहनशीलता पर चकित होते थे। किन्तु इतनी ही बात नहीं थी। यों तो दुखी वेस्ट साहब के अदम्य साहस की जितनी सराहना की जाय वह भी यथेष्ट नहीं ही होगी क्यों कि उन्होने भी इस कठिन मार्ग के पार करते समय एकबार भी उन कठिनाइयों का जिक्र तक नहीं किया यद्यपि उनके मुख के देखने से ही उनके शरीर की थकावट, क्लेश और असुख व्यक्त होते थे। आश्चर्य्य तो यह था कि उस मार्ग रहित प्रदेश में भी सन्यासी जी प्रति दिन हमलगों को किसी न किसी झरने अथवा पहाड़ी नदी के किनारे पर निश्चय पहुंचाते थे—एकबार नहीं, दोबार—मध्याह्न के समय, और सन्ध्या के समय। ऐसा प्रतीत होता था कि उन्होंने इस प्रदेश में अपना सारा जीवन ही व्यतीत किया हो। हमारा खाना उन्होने एकबार भी नहीं खाया। कभी तो वह अपनी झोली से कोई जड़ी निकाल कर जल से पीसते और फिर जल में मिलाकार उसे शर्बत की तरह पी जाते, कभी जङ्गलों के फल तोड़कर, कुछ हमें देते, और कुछ स्वयं खाते। मुझे उस शर्बत के विषय में बड़ा कुतूहल हुआ। मैंने थोड़ा प्रसाद के रूप में मांगा। वे हंसकर बोले

"यह सन्यासी के लिये है, गृहस्त के लिये नहीं।"

चार दिन इस तरह चलकर, स्वामी ने एक पेड़ के नीचे बैठते हुये कहा।

"गोपाल! आज कुछ देर यहीं विश्राम कर लेना ठीक है

क्योंकि आज रात की यात्रा करनी है और वह भी अत्यन्त कठिन राह से। हमको जहां पहुंच कर चन्द्रिका की सहायता करनी है, वह है तो थोड़ी ही दूर किन्तु वहां पहुंचने में चार पांच घण्टे तो निश्चय लग जायेंगे। और हमको वहां मध्य रात्रि में पहुंचना है।"

मैंने कहा, "स्वामी जी! इन जङ्गलों में रात्रि की यात्रा तो ठीक नहीं जंचती! हिंस्र पशुओं से—"

स्वामी ने कहा, "इसका भय क्यों गोपाल! क्या कोई क्षणभर भी होनी से बच सकता है? किन्तु तुम विश्वास रखो, तुमलोगों पर कोई विपत्ति नहीं आयगी।"

मैंने इन बातों को वेस्ट साहब से, जो एक ओर बैठे बेसुध की तरह अपना पाइप पी रहे थे कहा। उनके उत्तर से मैं चकित हुआ। उन्होंने कहा,

"गोपाल, सर पर हाथ रखकर बैठना मुझे पसन्द नहीं। ये चार दिन चार युग की तरह बीते हैं। मुझे कर्म्म में प्रवृत्त होना प्रिय है, अन्तिम परिणाम शीघ्र जानना आवश्यक है; किन्तु चुपचाप दैव की राह देखना पसन्द नहीं। इसलिये लेट जाओ। मैं भी लेट हूँ।"

इतना कहकर वे एक कम्बल जमीन पर डालकर लेट गये। मैंने भी वैसा ही किया। थोड़ी देर में सभी सो गये केवल वह सन्यासी एक ओर अकेले बैठे ही रहे। रात के नव बजे हमलोग रवाना हुये। हमारी यात्रा का यह भाग अवर्णनीय है। हमलोग दो मशाल जलाकर और बिजली बत्तियों के सहारे चले। कहीं झाड़ियों में क्षत विक्षत होते, कहीं पेड़ों से टकराते कहीं सर्पों से बाल २ बचते, कभी गिरते उठते, क्षीण पगडन्डी पर आंख बांधे पथरीले नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे जानेवाले मार्ग से चले जा

रहे थे। दो तीन घण्टे के बाद पूर्व्व दिशा में उगते हुये चन्द्र का प्रथम किरण दृष्ट हुई और अन्धकार का परदा मानों उठने लगा। अस्पष्ट वस्तु धीरे २ स्पष्ट दीखने लगीं। अब मैंने देखा कि हमलोग एक उच्च पर्व्वत के कटि प्रदेश में स्थित एक विचित्र चार पांच हाथ चौड़ी रेखा पर चल रहे थे। एक ओर चट्टानों की आकाशचुम्बी, प्रायः खड़ी दीवार और दूसरी ओर एक पाताल गामी खोह और उसके बाद उसी तरह का आकाश-चुम्बी पर्व्वत। दोनों पर्व्वतों में अन्तर यही था कि जिसकी दीवार पर हम चल रहे थे उसमें केवल चट्टान ही चट्टान दृष्ट होता था और हजारों फीट के विस्तार में दो ही चार छोटे, कुबड़े वृक्ष और झाड़ियां थीं, किन्तु वह दूसरा पर्व्वत हरा भरा था। थोड़ी दूरच लने पर गङ्गा के प्रपातों का कलरव सुनाई देने लगा और तदनन्तर पृथ्वी के उदर में एक क्षीण रेखा के रूप में उसके दर्शन भी हुये। स्वामी गङ्गा तट पर जाकर कुछ ठहरे और आंखें चारो ओर दौड़ाई। चन्द्रमा पूर्व्व पर्व्वत के शिखर पर झांक रहा था। अन्धकार में छिपी हुई गङ्गा, और पर्वत पार्श्वों पर तेजी से बढ़ती हुई चन्द्रज्योति, मिलजुल कर एक विचित्र स्वप्नलोक की सृष्टि कर रही थी। जिस जगह हमलोग अब पहुँच गये थे वहां पर्व्वत की दीवार कुछ तिर्य्यग हो गई थी और वृक्षादि पहले से अधिक देखने में आते थे। इसी समय उस पर्व्वत शिखर पर एक चीख की आवाज हुई जो पहाड़ों में टकरा २ कर कुछ देर तक गूंजती रही। सब उस आवाज की ओर देखने लगे। मालूम हुआ कि दो चीजें ऊपर से लुढ़क रही हैं, और चट्टानों, वृक्षों, झाड़ियों से टकराती तेजी से गिर रही हैं। इस भयानक दृश्य से सभी के खून सूख गये, और सब अनिमेष दृष्टि से उधर ही देखते रह गये। थोड़ी देर में गिरने की गति शीघ्रतर होती गई, लेकिन सहसा एक तो एक वृक्ष के डालों में अंटक कर लटक रहा

और दूसरा लुढ़कता २ ठीक स्वामी के सामने गिरा। इस समय स्वामी के धैर्य्य, चातुरी और कार्य्य कुशलता को देखकर मैं अपनी उंगलियों को दांतों काटने लगा। देखा कि एक फांस जो उनके हाथों में था उस मनुष्य—क्योंकि अब प्रत्यक्ष हो गया कि वह मनुष्य ही था—के शरीर में बन्ध गई है और वह अपने पूर्ण बल से उसके अधःपतन को रोक रहे हैं। पहले कुलियों ने उनकी सहायता की। अपने गठ्ठरों को रखकर फांस की डोर थाम्ह ली। तब मैंने और वेस्ट साहब ने भी स्तम्भन हटाकर सहायता की। जब हमलोगों ने सफल होकर उस शरीर को रास्ते पर डाल दिया, तो बिजली के प्रकाश में साफ हो गया कि यह तो लीओ था। मैंने स्वामी को बड़बड़ाते सुना, "वही तो" और वे उसके हृदय और नाड़ियों की परीक्षा करने लगे। जब वह उठे तो—आश्चर्य्य पर आश्चर्य्य—वे शुद्ध अङ्गरेजी में वेस्ट साहब से बोले—

"अफसोस है वेस्ट साहब, मैं इन्हें बचा न सका।"

इतना कहकर उन्होंने कुलियों से उनकी बोली में कुछ बातें की, और अपनी झोली में से और मजबूत रस्सियो को निकाला। उन कुलियों की सहायता से, वे उन रस्सियों को उस पर्व्वत के पार्श्व में गाड़ने में समर्थ हुये। उसके बाद स्वामी और एक कुली अपने नोकदार डंडों को लेकर उस कठिन राह पर, जो उस मनुष्य के पास ले जाता, जो पेड़ में लटक रहा था, अग्रसर हुये। मैं और वेस्ट साहब अवाक होकर इनकी कारवाई देखते रहे; वेस्ट साहब एकवार उनके साथ जाने के इच्छुक की तरह आगे बढ़े, किन्तु फिर रुक गये। संन्यासी ने एक रस्सी अपने कमर से कुली के कमर में बन्धवाई और आगे २ चढ़ने लगे कुली रस्सी को पूरे तनाव पर पीछे २ चला। हमलोग मुग्ध उनकी यात्रा की कठिनाइयों को, ठहरना, और आगे बढ़ना देखते रहे। प्रतीत हुआ कि युगों के

बीतने पर स्वामी जी सकुशल उस वृक्ष के पास पहुंचे जिस पर वह मनुष्य—सम्भवतः चन्द्रिका लटक रहा था। उनका पहला काम हुआ कि उन्होंने एक रस्सी निकाल कर उसकी कमर में दृढ़ करके बान्धा और एक शिरा वृक्ष के मूल में कस दिया। इसके बाद उन्होंने उस कुली को कुछ संकेत किया और वह कुछ नीचे के एक वृक्ष में एक रस्सी बान्ध कर एक छोर स्वामी के पास फेक दिया। स्वामी ने उसे भी उस मनुष्य की कमर में बान्ध दिया। तब वे रोमाञ्चकारी बातें होने लगीं जिन्हें देख दर्शकों के हृदय मुंह पर आ गये। मैं अभी तक समझ न सका कि कैसे प्रिय चन्द्रिका का बेसुध शरीर, एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर खिंचा २कर अन्त में हमारे फैलाये हाथों के बीच पहुंचा दिया गया। शरीर क्षत विक्षत था; शिर में गहरी चोट लगी थी; और बेसुधी में आंखें बन्द थीं। जगह २ से खून जारी था। वेस्ट साहब जमीन पर शरीर रखते ही उसकी जांच करने लगे। नाड़ी हृदय श्वांस सब की परीक्षा करके उन्होंने गहरी भावुकता से कहा।

"ईश्वर को धन्यवाद है कि अभी प्राण हैं।"

मुझे लज्जा आती है कि इस समय, इस अनुग्रह के करनेवाले संन्यासी को भूलकर, हम दोनो चन्द्रिका में ही दत्तचित्त हो रहे परन्तु हमारा मोह उनके गम्भीर मधुर आवाज से टूटा। वे पीछे से बोले,

"गोपाल! आसक्ति से श्रेष्ठ कर्म्म नहीं बनते। तुम लोगों ने जल तक का प्रबन्ध नहीं किया। लो, यह औषध उसके मुख में डाल दो। एक कुली जाकर गङ्गाजल लाये।"

इस पर एक कुली बड़ी कठिनाई से गङ्गा में उतरा और एक बर्तन में शीतल जल भर लाया। उसे लेकर संन्यासी जी ने चन्द्रिका

के समस्त क्षत विक्षत शरीर को बड़ी सावधानी से धो डाला। इसके बाद प्रत्येक क्षत को फिर से धो २ कर, उन पर एक लेप लगाया। फिर चन्द्रिका को उठाकर अपने कन्धे पर लटकाते हुये बोले,

"मैं इन्हें ले चलता हूँ! दोनों कुली उस शव को ले चले आप दोनों सामान सम्हाल लीजिये। चन्द्रिका को होश आने में कुछ घण्टों की देर है, तब तक हम लीओ के बङ्गले पर पहुंच कर मिस वेस्ट की खबर लें।"

वेस्ट साहब कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से संन्यासी जी को देखकर उनके पीछे हो गये। मैं कुलियों के पीछे हो गया। हम करीब २ घण्टे भर बेराह के मार्ग से चलते रहे। तब मैंने देखा कि हम उसी पर्व्वत के ऊपरी भाग पर पहुंचे, जिस पर से चन्द्रिका और लीओ लुढ़क पड़े थे। ऊपर में चाँदनी पूरी तौर से फैल गई थी। सामने में ही एक बङ्गले का फाटक दृष्ट हुआ। मैंने समझ लिया कि यही लीओ का बङ्गला है, जहां आज की घटनायें घटी हैं। बङ्गले के एक भाग में रोशनी हो रही थी किन्तु वहां घना सुन-सान छाया हुआ था। हमलोगों ने फाटक खोलकर भीतर पदार्पण किया और सीधे बङ्गले पर पहुंचे। चन्द्रिका को एक कमरे में लिटा दिया गया, और लीओ का शव दूसरे कमरे में रख दिया गया।

हम बरामदे में खड़े होकर परामर्श करने लगे कि अब क्या किया जाय। हमने एक कार्य्य-क्रम ठीक किया मिस होप को ढूंढ़ने के लिये और बङ्गले से बाहर होने लगे। इसी समय कुलियों सा कपड़ा पहने मनुष्य दौड़ा आया और बोला,

"साहबो! क्या आप लोग मेरे साहब को खोज रहे हैं?"

बेस्ट ने कहा, "तुम्हारे साहब का क्या नाम है ?"

उसने कहा, "चन्द्रिका सिंह ।"

"तुम्हारा लीओ साहब से क्या सम्बन्ध है ?"

"कुछ नहीं"

"यहा क्या करते हो ?"

"साहब को ढूंढ़ रहा हूँ और मेम साहब की रक्षा कर रहा हूँ ।"

"कौन मेम साहब ?"

"वही जिसके लिये मेरे साहब पागल हो रहे हैं ।"

"वह हैं कहां ?"

"आइये", कहता हुआ वह मनुष्य एक ओर चला हम उसके पीछे हो गये। वह बंगले के पीछे एक झाड़ी के पास रुका और हमलोगों ने मिस होप को बेहोश, पृथ्वी पर पड़ी पाया। उनका मुख कुम्हला गया था और उनकी सहज कान्ति नष्ट हो गई थी। बेस्ट की आंसें आसुओं से भर आईं और वह बच्चों की तरह फूट कर रो पड़े। फिर सम्हल कर, अत्यन्त प्रेम और कोमलता से मिस होप को उठाया और बंगले पर चले। वहां पहुँच कर एक कमरे में, जिसमें उनका बिछावन मिला उनको लिटा दिया। सन्यासी ने तब इनकी ओर देख प्रसन्न-वदन हो, बेस्ट साहब से कहा—

"मिस्टर बेस्ट ! खुश होइये ! आप की पुत्री का शरीर स्वस्थ है— किन्तु हां, जो चोटें लीओ ने इसकी आत्मा पर लगाई है उनका आराम होना समय लेगा और तब भी कुछ आघात चिन्ह रह ही जायेंगे। उनके मिटाने के लिये चन्द्रिका के पूर्ण आत्म-समर्पण की आवश्यकता है ।"

इतना कह कर सन्यासी वहीं बैठ गये और शायद मन्त्रों को धीरे २ कहते अपने हाथों को मिस होप के शरीर के ऊपर ही ऊपर

शिर से पैर तक लगे फेरने। इस कार्य्य में उन्हे प्रायः १० मिनट लगे होंगे। तब वह बोले,

"अब चन्द्रिका को देखना चाहिये। मेरे औषधियों का प्रभाव तो अब मालूम होना चाहिये।"

इसलिये मिस्टर वेस्ट को वहीं छोड़ कर, मैं, सन्यासी और सर्दार के साथ कमरे से बाहर निकला और चन्द्रिका के कमरे में गया। द्वार पर पहुँचते ही कुछ धीरे २ बड़बड़ाने की आवाज सुन पड़ी और हमलोग पैर सम्भाल २ कर अन्दर गये। चन्द्रिका कह रहा था—

"प्यारी! क्या कह रही हो? मैंने क्या अपराध किया है?—यदि तुम्हारा प्रेम खो बैठा, तो जी कर क्या करूंगा? आज ही मेरा और लीओ का अन्त होगा—हां हां आज ही।.....अरे दुष्ट तू आया? तब तू इस पृथ्वी को देख ले.....क्यों अब हम दोनों ही मरने वाले हैं।....."

इतना कह कर उसने हाथ का मुक्का उठाया और आंखें खोलीं किन्तु फिर बन्द कर लिया और कुछ समय तक कराहता रहा। इसके बाद उसकी आंखें फिर खुलीं और इस बार मुझ पर आ टिकीं। धीरे २ उनमें आश्चर्य्य, अविश्वास और पहिचान क्रम से प्रकट हुये, और उसने क्षीन स्वर में कहा,

"यह क्या? क्या तुम गोपाल हो?"

मैंने आगे बढकर सस्नेह उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर दबाया और कहा,

"भइया! कैसी तबीयत है? क्या मुझे पहिचानते नहीं?"

उसने क्षण भर कुछ नहीं कहा, केवल मुझे देखता रहा। तब कहा, "मैं कहा हूं गोपाल? क्या बोर्डिङ्ग ही में मैं दुःस्वप्न देख रहा था?"

मैंने कहा, "मैं सब बताये देता हूँ। कुछ खा पी लो। देखो तो ये कौन आये हैं!" मैंने स्वामी की ओर संकेत किया।

चन्द्रिका ने स्वामी को देख कर उठना चाहा, किन्तु "आह" करके रह गया। तब उसने प्रणाम किया और कहा

"स्वामी जी बहुत दिनों पर कृपा की।"

स्वामी ने जहा, "भगवान भला करें। जब बच्चे बड़ों की बात नहीं मानते तो अपने दुखों में उन्हे भी खींच लाते हैं। बताओ तो सही, तुम्हारी चोटें क्या बहुत जलती और दुखती हैं?"

चन्द्रिका—दुखती तो है किन्तु असह्य नहीं हैं। जलन तो नहीं मालूम होती।

इस पर स्वामी ने अपनी झोली में से एक लेप निकाला और मुझे देते हुये कहा, "इसे समूचे शरीर में खूब मल दो। और यह एक गोली है—इसे खिला दो। इस बार जब इसकी नीन्द खुलेगी तो चंगा हो जायगा।"

इतना कह कर स्वामी बाहर चले गये और मैं उस गोली को खिला कर, लेप मलने लगा। कुछ और बातों का समय न मिला क्यों कि गोली खाते ही चन्द्रिका शिथिल पड़ गया।

बारहवाँ अध्याय

मेरी आत्म कथा

पाठक सर्दार की कथा से जान ही चुके हैं की मैं सर्दार का ध्यान लीओ के खाने के कमरे की ओर खींच कर उस बंगले में घुसा। जब मैंने इतने दिनों के बाद अपनी प्रेयसी के कुम्हिलाये मुख, उद्भ्रान्त नयनों और शिथिल शरीर को देखा तो मुझ में कैसे भाव उठे मैं कैसे वर्णन करूं ? हृदय के अतल तल से एक महान क्रन्दन उठा, और मन चाहा कि उड़कर उसके पास पहुंचूं, उसे अपने हृदय से लगाकर, प्राणों का बलि देकर उसके दुखों का अन्त कर दूं। किन्तु आप जानते हैं कि इसी समय लीओ और इन्दु में वह बातें हुईं जिन्हें सुनकर मैं आपे में न रहा और मरने और मारने के लिए मैं उस घर में घुस गया। इसका परिणाम क्या हुआ सो सर्दार ने कह सुनाया है।

आगे की कथा कह देने के पहले मुझे एक बात कह देनी आवश्यक है। जब मैं उस दिन अपनी आत्मकथा का अन्तिम पृष्ठ लिख रहा था, तो मुझे इसकी आशा नहीं थी कि मैं फिर भी अपनी लेखनी को उठा सकूंगा। किन्तु भगवान और स्वामी जी की असीम कृपा से अनहोनी होकर रही, और आज मैं न केवल जीता जागता हूं, बल्कि मेरी सभी इच्छायें पूर्ण हो गईं, और आनन्द की नदी उमर पड़ी इसलिये यदि मेरी लेखनी की गति बदली प्रतीत हो, तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं।

जब मुझे होश हुआ तो मैंने अपने को खुले मैदान में, चमकते तारों के नीचे पाया, और कुछ देर तक तो मैं समझ न

सका कि मैं वहां कैसे आया। फिर जब सब बातें याद आ गईं तो मेरे शरीर में मानो आग लग गई। मैं उठना चाहा तो देखा कि हाथ पैर कस कर बन्धे हैं, रस्सियों से चमड़ा तक कट रहा है, और मैं कर तक बदल नहीं सकता। मैंने हाथों और पैरों को घुमाने का प्रयत्न किया जिसमें रस्सियां ढीली हों, किन्तु कुछ भी फल न निकला। मेरी समझ में न आया कि मुझे वहां डाल कर लीओ कहां और क्यों चला गया। क्या उसने मुझे जंगली जानवरों का आहार बनाने के लिये वहाँ छोड़ दिया है? इन्दु कहां है? क्या वह जानती है कि मैं जंगली जानवरों का आहार बनाया जा रहा हूं? क्या मेरा प्रेम उसके हृदय से एक दम निकल गया, और वह सब प्रकार से लीओ की हो गई? इस विचार पर जो अन्तर्दाह हुआ उससे मैं छटपटाने लगा और बन्धन तोड़ने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु परिणाम यही हुआ कि मेरा सारा शरीर क्षत विक्षत हो गया। इसी समय एक छाया-सी मेरे ऊपर उस अन्धकार में भी पड़ी। मैंने शिथिल होकर देखा कि यह तो इन्दु है। मेरे मन में फिर उथल पुथल हो गया और मेरे और इन्दु के बीच वे बातें हुईं जिसे सर्दार ने बर्णन किया है। उसके उत्तरों से मेरा जीवन शून्यागारय की तरह भयावह, शुष्क सरसी की तरह निरानन्द और लहकते दावानल की तरह सर्वनाश रूप हो गया। जब वह मेरे बन्धनों को काट कर भाग गई, तो मैं एक नया जीव होकर उठा। यदि उस समय मुझे पैशाचिकी प्रवृत्तियों का अवतार; अथवा प्रतिक्रिया का जीता जागता चित्र कहा जाता, तो यह वर्णन ठीक होता। मुझे अपना कर्त्तव्य निश्चय करने में कुछ भी झिझक, कुछ भी देर न लगी। लीओ वध्य था; इन्दु को उसके अङ्क में देखने के पहले, उसकी बोटी २ काट डालनी होगी। और अस्थिर, चंचल, पतित (क्षमा करना प्रिये) इन्दु को यह कर्म्म देखना होगा। तब इस मेरे

अन्धकारमय जीवन का भी वही अन्त होगा जो ऐसे "निजबञ्चक" जीवों का होना चाहिये। और ठगिनी इन्दु—एक क्रूर, भयानक चित्र उस अन्तिम दृश्य का उठा जिसे मैंने उसके लिये निश्चित कर लिया था। कुछ देर तक मैं शरीर में खून दौड़ाने के लिये सर्दार के चले जाने के बाद घूमता रहा और निर्दय दृश्यों को गढ़ २ कर अपनी प्रतिहिंसा को जगाता रहा। तब मैं झाड़ियों की छाया में छिपता लीओ की खोज में चला। एकबार किसी के दौड़ने की आहट मिली और सहसा वह शब्द लुप्त हो गया। मैं घूमता एहाते के उस छोर पर पहुँचा जहां घना जङ्गल प्रारम्भ होता था। चन्द्रमा की ज्योति फैलने लग गई थी, फिर भी वृक्षों में घना अन्धकार था। कहीं २ जङ्गली जानवरों की चमकती आंखें क्षण भर दृष्ट होतीं और निःशब्द लुप्त हो जातीं। एकबएक झुरमुटों में खरखराहट हुई और एक मनुष्य उजाले में निकला और एक बिजली बत्ती जलाकर इधर उधर रोशनी दौड़ाने लगा। उसे पहचानने में मुझे देर न लगी। यही लीओ था, और निश्चय वह इन्दु को ढूंढ़ रहा था। मेरा सारा क्रोध भभक उठा और मैं चुपके २ उसके पास निःशब्द पैरों से पहुँचा। और उसी तरह निःशब्द उसके ऊपर कूद कर उसके गर्दन को दृढता से पकड़ा। पहले तो वह घबराया लेकिन शीघ्र ही अपने बत्ती का भरपूर वार मेरे शिर पर किया। किन्तु मेरे क्रोध और हिंसा के भावों से उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा, यद्यपि शिर से रक्त बहने लगा। मेरी उङ्गलियां उसके गर्दन को उसी निर्दयता से चीपती रहीं। वह मुझसे लिपट गया और मेरी उङ्गलियों को ढीली करने का प्रयत्न करने लगा। मैंने उसके कान में फुसफुसाया—रे दुष्ट! मरने की तैयारी कर, अब तू बच नहीं सकता। वह बोल तो सकता नहीं था, किन्तु वह पूरी ताकत लगाकर मुझे गङ्गा की ओर ठेलने का प्रयत्न करने लगा। मैंने यह बात

समझ ली और शक्ति लगाकर उसे घुमाकर आगे कर दिया। किन्तु क्षण भर के लिये भी अपनी उङ्गलियों को शिथिल न होने दिया। एकवार एक पत्थर से टकराकर मैं उसे लिये दिये गिरा भी किन्तु मेरी उङ्गलियां उसके प्राणों को हरती ज्यों की त्यों बनी रहीं—मालूम होता था कि वे लोहे की हो गई हों और उनमें शिथिल होने की शक्ति ही न रही हो। मैं देख रहा था की लीओ शिथिल पड़ता जाता था, और क्षण २ में गङ्गा के गर्त के किनारे पहुँचा जाता था। शायद उसे भी यह भास गया और अपनी समूची शक्ति लगा कर उसने अचानक आक्रमण कर दिया। मैं इसके लिये तैयार नहीं था और मेरी उङ्गली उसके गर्दन से झिटक गई; और उसने मुझे घुमा कर आगे करने का प्रयत्न किया। किन्तु मैं सम्भल गया, और उसे दोनों हाथों से पकड़ कर दे मारा पर उसने अपने साथ ही मुझे भी भूतलशायी किया। तब वह खींचा तानी शुरू हुई जिसने दोनों को ही उस अतल-तल गर्त के मुह पर पहुँचा दिया। एक व एक हमलोग लुढुक गये। मुझे याद है कि उस समय हम दोनों एक दूसरे से गुथे थे। मेरा अन्तिम स्मरण यही है कि मैं अनन्त अकाश में गिरता, गिरता, गिरता चला जा रहा हूँ कभी किसी झाड़ी से टकराता हूँ, कभी वृक्ष की शाखा से, कभी पत्थर से। एक वार शून्य शब्दायमान हुआ, एक विचित्र ज्योति छिटक पड़ी, और मेरी सुन्दर, सरल, प्रेममयी इन्दु हंस-गति से चलती, लीला-ललित आंखों को इधर उधर दौड़ाती मेरी ही ओर आतीं दृष्ट हुई। मैंने कहा—दयावती! क्या मुझ अभागे पर दया दरसाने आई हो? किन्तु मेरी बातें उस तक पहुँचीं नहीं और वह अठखेलियां भरती दूसरी ओर जाकर विलीन हो गई। उसके अन्तर्धान होते ही वह आकाश घोर अन्धकार से छिप गया और पता नहीं, मैं क्या देखता या करता रहा। कुछ देर बाद वह अन्धकार फिर छिन्न भिन्न होने

लगा और मुझे प्रतीत हुआ की मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग में वेदना होने पर भी मेरे हृदय में विचित्र उमङ्ग भरा है। मैंने शोचा—क्या मेरी इन्दु ने मुझपर कृपा की है ? मैं उस छिन्न भिन्न होते अन्धकार में आंखें फाड़ २ कर देखने लगा। देखता क्या हूँ कि वह तो मेरे शिर को अपने गोद में लिये, अश्रुपूर्ण नयनों से मेरे घाव को देखती बैठी है। मैं बोलना चाहा किन्तु बोल न सका और वह अन्धकार फिर सघन हो गया। जब दूसरी बार वह अन्धकार हटा, और मेरी आंखें खुलीं तो मुझे प्रतीत हुआ कि गोपाल मेरे सामने खड़ा है। मैंने इसे भी एक स्वप्न समझ कर अपनी आंखें बन्द कर के, फिर खोली, तो उसे जहां का तहाँ पाया। कुछ देर में मैंने अपने पूर्व्व-परिचित सन्यासी जी को भी वहीं पाया। इतनी कमजोरी मालूम होती थी कि परिश्रम करने पर भी मेरी बोली फुसफुसाहट से अधिक नहीं होती थी। स्वामी ने मुझे कोई दवा खिलाई और गोपाल एक मरहम मलने लगा और मैं गहरी नीन्द में पड़ गया।

जब फिर नीन्द खुली, तो मेरे शरीर में कुछ बल और स्फूर्ति मालूम होने लगे। मैंने शिर घुमाने की चेष्टा की, और कैसा आनन्द हुआ जब बिना कष्ट के उसे घुमा सका। मैंने देखा की एक कुर्सी पर बैठा गोपाल शीशी में से कुछ ढ़ाल रहा है। मैंने पूरी शक्ति लगाकर पुकारा किन्तु एक क्षीण "गोपाल" निकला।

इक्कीसवाँ अध्याय

गोपाल की कथा

मिस्टर वेस्ट जब से मिस होप के कमरे में बैठे, वहीं बैठे रहे खाने के समय आग्रह करने पर भी वह न हटे इससे उनका खाना वहीं भेज दिया गया। रह २ कर मैं वहां जाता और इशारे से या बहुत धीरे २ पूछ लेता की मिस वेस्ट की हालत में परिवर्तन है या नहीं। मध्याह्न के समय यह परिवर्तन मालूम हुआ कि सांसें गहरी हो गईं, और अङ्गों का कुछ सञ्चालन होने लगा। स्वामी जी सुबह से ही लापता थे—हां, हमारे कुली सामानों के साथ सकुशल बंगले पर पहुँच गये थे। लीओ का वह विश्वस्त नोकर, जिसके हाथ पैर चन्द्रिका के सर्दार ने बान्धे थे, बंगले पर लाकर मुक्त कर दिया गया था, और लीओ का शव उसकी देख रेख में छोड़ दिया गया था। तीसरे पहर स्वामी जी एक पादरी और एक डाक्टर और कुछ मज़दूर लिये आ पहुँचे और वेस्ट साहब को परामर्श के लिये बुला भेजा। वेस्ट के आने पर, उन्हों ने कहा—

"मिस्टर वेस्ट! आप ने लीओ की मृत्यु देखी है। आप इन महाशयों से उस वृत्तान्त का पूरा वर्णन करें क्यों कि आपकी पुत्री के स्वास्थ्य की दृष्टि से यह अत्यन्त आवश्यक है की उसका शव शीघ्र ही दफन कर दिया जाय।"

मिस्टर वेस्ट उन आगन्तुकों की ओर कौतूहल से देख रहे थे। अब वे स्वामी जी से "अच्छा" कह कर रात की यात्रा का पूरा वर्णन कह सुनाये। इनके बयान को दोनों सज्जन लिखते गये। अन्त में उनलोगों ने स्वामीजी को धन्यवाद दिया कि यह आपकी दूरदर्शिता का फल है कि कम से कम एक मनुष्य तो बच गया।

इसके बाद वे शव के पास गये और उसकी परीक्षा कर; मृत्यु के कारण का सार्टिफिकेट लिख, शव दफन करने का प्रबन्ध करने लगे। सन्ध्या होने के पहले ही इस काम को समाप्त कर, चाय पी, दोनों ने अपनी राह ली। इस अन्तर में हमलोग बारी २ दोनों मरीजों को देखते रहे। सन्ध्या होनें पर स्वामी जी ने दोनों मरीजों की फिर से जांच की। चन्द्रिका को देख कर उन्होने कहा कि वह आज रात्रि में किसी समय उठेगा; उस समय इसे कुछ सादा स्वादिष्ट खाना देना चाहिये और साथ २ यह गोली। यदि मिस वेस्ट की बात पूछे तो स्वास्थ्य की बात कह देनी चाहिये और यह की कल्ह भेंट होगी। इस बार सोने पर यह स्वस्थ होकर कल्ह दोपहर तक जग उठेगा।" मिस होप को देख कर उन्होंने फिर मन्त्रों का व्यवहार करते हुये अपने हाथों को उसके शरीर पर फेरा। कुछ समय तक ऐसा करने पर उन्होने कहा,

"तुम मिस होप हो"

उत्तर— "हां"

"तुम्हे इन्दु भी कहते हैं"

"हां, इन्दु भी"

"लीओ राक्षस था"

"राक्षस था"

"वह भाग गया"

"वह भाग गया"

"तुम चन्द्रिका को तन मन से प्यार करती हो"

"प्यार करती हूँ"

"तुम्हारे जगने पर भेंट होगी।"

"भेंट होगी।"

"अब सो जाओ"

इसके अनन्तर मिस बेस्ट सो गईं। स्वामी जी ने कहा

"आशा है की यह कल्ह स्वस्थ होकर जगेंगी। यह आवश्यक है कि उस समय चन्द्रिका इनके सामने रहे।"

इतना कह कर स्वामी चले गये। हमलोगों ने मरीजों की देख रेख में वह रात और दूसरा दिन बिताया। जब मैं चन्द्रिका के चारपाई के पास बैठा एक पुस्तक पढ़ रहा था, तो उसके रह २ कर कराहने, करवटें बदलने, और कभी २ कुछ २ बोलने बड़बड़ाने का सिलसिला जारी रहा। यह ठीक था कि जैसे २ समय बीतता गया ये बाते कम होती गईं और तीसरी पहर रात से तो उसकी निद्रा गहरी होती गई और वह एक लकड़ी के कुन्दे की तरह पड़ा रहा। दूसरे दिन मैं मध्याह्न की इन्तजारी करने लगा। स्वामी जी ने एक औषधि दी थी जो कुछ दूध, पानी और मधु में शर्बत की तरह बना कर जगते ही पिलाना था। मैं उसी को एक सड़े टेबिल पर वहीं बैठा २ मिला रहा था कि चारपाई पर से एक क्षीण-स्वर में पुकारा "गोपाल" सुन कर उछल पड़ा। शर्बत गीरते २ बचा। मैंने घूम कर देखा तो चन्द्रिका मुझी पर दृष्टि लगाये देख रहा है। मैंने कहा, "भगवान को धन्यवाद! आप जगे तो! किन्तु भई, अभी २ शर्बत गिर जाता आपकी पुकार से! लीजिये इसे पी जाइये।"

चन्द्रिका ने नाक सिकोड़ली और क्षीन स्वर में कहा, "खाना"

मैं, "पहले पीलो, फिर खाना आता है।"

अब कुछ गहरे स्वर में, चन्द्रिका बोले, "मैं उठूंगा।"

मैं :—अभी नहीं। इसे पीलो!

चन्द्रिका—इन्दु कहां है, जानते हो?

मैं—हां, किन्तु पहले यह पीलो।

"और लीओ?"

"यह पीलो तो बातें होंगीं।"

"क्यों"

"स्वामी जी की आज्ञा है।"

इस पर चन्द्रिका चुप रहा और मैंने उस शर्बत को उसे पिला दिया।

तब चन्द्रिका बोला, "बताओ इन्दु कहां है? उसकी कैसी हालत है? यह किसका घर है और हम यहां कैसे आये।"

मैं: मिस होप इसी घर में हैं।

इतना सुनते ही वह कुछ कठिनाई से उठ बैठा। मैं मना करता ही गया, वह माना नहीं। उसने कहा

"मै अभी उसके पास जाऊंगा"

मैंने कहा. "भले आदमी! बिना हाथ मुंह धोये, इसी फटे चिटे कपड़े में कैसे जाओगे?"

अब उसने अपनी हालत देखी तो कहने लगा, अब याद आई। हम लोग दोनों ही पर्व्वत से नीचे लुढक गये थे। तो यहां कैसे आये?"

मैं: पहले स्नानादि करके खाना खालो तो सब बातें सुनाता हूं। यही स्वामी जी की आज्ञा है"

इसी समय बङ्गले का बेहरा खाना लेकर आया और टेबिल पर रख दिया। मैंने कहा की साहब को उस औषधि वाले पानी से स्नान करा दो जो तैयार रखा गया है। उसने चन्द्रिका को सहारा देकर उठाना चाहा, किन्तु वह हठ कर स्वयं उठ खड़ा हुआ और गिरते २ बचा। मैंने उसे थाम कर बुरा भला कहता, उसे गोसल-खाने में पहुँचाया। १५ मिनट के बाद बेहरा उसे स्नान करा, कपड़े बदलवा, बाहर लाया। इन १५ मिनटों में ही वह एक दूसरा मनुष्य मालूम होने लगा। उसके पैर अब लड़खड़ाते न थे; और उसके शरीर में स्फूर्ति व्यक्त होने लगी। वह टेबिल पर आकर बैठ

गया और इत्मीनान से खाना खाने लगा। क्षणेक के बाद बोला,

"अब कहो"

मैंने सारी कथा आद्योपान्त सुनादी और कहा, तुम खाना खालो और आराम कर लो, तो इन्दु के कमरे में ले चलूँ। स्वामी जी का कहना है कि आज तीसरे पहर उनकी बेहोशी दूर होगी और उस समय तुम्हें वहां रहना आवश्यक है।"

चन्द्रिका ने खाना समाप्त करते हुए कहा, मैं वहीं आराम करूंगा। मुझे वहीं पहुंचादो।"

इसी समय चन्द्रिका के जगने की खबर सुन कर, मि० वेस्ट उससे मिलने आ गये। वे हाथ मिलाते बोले

"प्रिय बच्चे! तुम्हारे इस विपत्ति से सकुशल निकल आने पर मैं हृदय से अभिनन्दन करता हूं।

चन्द्रिका, पूज्यवर! यह आपलोगों के आशिर्वाद का फल है। अब मैं इन्दु को जल्दी देखना चाहता हूँ।"

वेस्टः कुछ आराम तो कर लो!

चन्द्रिकाः मुझे वहीं आराम मिलेगा।

वेस्ट ने मेरी ओर देखा। मैंने कहा, "वहां एक आराम कुर्सी डाल दी जाय और इन्हें उस पर लिटा दिया जाय।"

ऐसा ही किया गया। और चन्द्रिका को उस कमरे में पहुंचा कर, मैं और वेस्ट साहब खाना कमरे में गये।

बाइसवाँ अध्याय

मेरी आत्मकथा

जब मैं इन्दु के कमरे के लिये उठा तो वेस्ट साहब और चन्द्रिका मेरे दोनों बगल में आ गये और मुझे लगे सहारा देने। किन्तु इस समय न जाने कैसे मेरे शरीर में ऐसी स्फूर्ति मालूम होने लगी की मैंने सहारा का निषेध कर दिया और आगे बढ़ा। पहले तो कुछ तिलमिलाया परन्तु दो चार डेगों के बाद स्थिरता आ गई, किन्तु जैसे २ मैं अपनी प्रेयसी की ओर बढता गया, मेरे हृदय की गति बढ़ती गई, अङ्गों में कंप-कंपी आती गई। द्वार पर आते २ मैं आगे बढ़ने में अशक्त सा हो गया। वेस्ट साहब और गोपाल ने मुझे पकड़ लिया और फुस फुसाकर पूछे

"क्या थक गये? इस कुर्सी पर बैठ जाओ।"

उनलोगों ने मुझे कुर्सी पर बैठा दिया; किन्तु मैं अपनी कमजोरी पर लज्जित होकर फिर उठ पड़ा और आवेश को रोकने में होठों को चबाकर, कहा, "नहीं, नहीं, यह तो योंही....."

गोपाल ने कहा, मैं समझता हूँ—किन्तु धीरे २ चलो।"

मैंने द्वार के भीतर पद रखा और वे लोग मुझ पर एक संशय-मय दृष्टि डाल कर चले गये। मैंने वहीं से अपनी दृष्टि उस पलङ्ग पर दौड़ाई जिस पर एक चादर से ढका मेरे प्रेयसी का शरीर पड़ा था! हाय, कैसा म्लान, कैसा निर्जीव, कैसा श्रीहत जीव पड़ा! वह चन्द्रमुख, जो कभी सहज मुसकान की रेखाओं से खाली नहीं रहता था, इस समय निर्जीव स्फटिक की तरह मालूम होता था; वे आंखें, जो लीलाललित होती हुई हृदय के नैसर्गक भोलेपन से सदा

रंजित रहती थीं, इस समय गाढ़ बेहोशी में बन्द थीं। एक सुन्दर, छोटा, लाल कमल सदृश तलवे वाला हाथ, जिसकी लम्बी २ हृदय-ग्राही उङ्गलियों में जादू सा भरा रहता था, आज कैसे बेबसी में खुला पड़ा था! वह स्वर्ण-मय केशपाश, जिसे उसने मेरी प्रीति के लिये इतना बढ़ा दिया था की वह घुटने तक ढक लेता था, और जिसे मैंने एकबार उसको अपने अद्वितीय ज्योति-मय आवरण में छिपाते देखा था, इस समय आदर और सेवा को न पा, कैसा हतप्रभ, एक में एक उलझ, हृदय विदारक रीति से पड़ा था! मेरे शिर में चक्कर आने लगा, और यदि मैं जल्दी से आराम कुर्सी पर न बैठ जाता तो गिर ही पड़ता। मैंने स्वस्थ होने का पूरा प्रयत्न किया किन्तु जब तक आंखों से अश्रु न बहे, मेरी वेदना कम न हुई। तब उस भीषण रात की सब घटनाओं के चित्र मानस पट पर लगातार आने लगे। खाना-खाने के घर की बातें, मुझ पर वार, अन्धियारे में इन्दु का आना, मेरा और लीओ का युद्ध। आज के ज्ञान की दृष्टि से, उस रात्रि का मेरा इन्दु के प्रति सन्देह, क्रूर संकल्प, और ऊटपटांग विचार कैसे घृणित प्रतीत होने लगे! मैंने अपने को बार २ धिक्कारा और पश्चाताप की अग्नि मुझे बार २ जलाने लगी। हाय! जिस भोले हृदय ने अपनी असहायता की हालत में भी अपने दृढ़ प्रेम के ढाल से ही लीओ की पैशाचिक शक्तियों का न केवल सामना ही किया बल्कि परिणाम में उन पर विजय भी पाया, उसे मैं, अपने अधूरे प्रेम के अहंकार में दूषित और कलुषित समझने की ढिठाई की! उस प्रथम दिन का मिलन, शैशव का मेल मिलाप, प्रेम का अङ्कुरित होना और बढ़ना, हृदयों का आकर्षण, शरीरों में बिजुलियों का दौड़ना, अन्त में आत्मसमर्पण, पुष्प का प्रस्फूटित होना,—याद आते ही मेरी क्रूरता की ऐसी भयानक मूर्ति आ खड़ी हुई की मैं अपने आवेश को रोक न सका और निःशब्द

उठ कर मैं उस निर्जीव सी मूर्ति के पैरों पर शिर रख कर उन्हें अश्रुओं से भिगोने लगा। प्रथम आवेश के शिथिल पड़ने पर, मैंने शङ्कित होकर इन्दु के मुख की ओर देखा तो ऐसा प्रतीत हुआ की उसके मुख की मुर्दनी भागी जा रही है, और उस पर जैसे जीवन-ज्योति दौड़ने लग गई है। मैं सरक कर उसके मुख के पास चला गया और उसके गाल से गाल सटाकर फुस फुसाने लगा—

"प्रिय—इन्दु ! मेरी इन्दु—मेरा जीवन·····"

इस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानों उस शरीर में शिर से पैर तक एक कम्पन-सा फैल गया और वह एक दीर्घश्वांस छोडती हुई कुछ बड़बड़ा कर मेरी ओर फिर गई। किन्तु आँखें बन्द ही रहीं। यह शोच कर की शायद स्वामी जी का कहा हुआ समय आ गया, और मेरी इन्दु जगेगी मेरे हृदय में एक अकथनीय हर्ष जगह करने लगा।

वह धीरे २ बड़बड़ाई—पूषण ! मेरे पूषण ! कब से····· कहां हो।·····इस दुष्ट से मेरी रक्षा क्यों नहीं करते ?····· हाय मैं क्या करूं ?·····यह तो, यह तो मेरे हृदय को संकुचित कर रहा है—मन को बान्ध रहा है·····रे दुष्ट····· तुझे प्रेम करूं·····कुत्ता·····तुझे ?·····कितने जन्म बीत गये·····पूषण ·····इसका·····अन्त हो··· ·····हां ! पूषण·····पूषण····· विश्वास नहीं करते ?····· कितनी बार·····प्राण दूं·····पूषण ! देवता·····"

इन टूटी फूटी बातों से मैं इतना ही समझ सका की इन्दु के शुद्ध हृदय ने मेरे अविश्वास को ताड़ लिया था और उसी का उसे कष्ट हो रहा था। क्या लीओ का प्रभाव जाता रहा !

इसी समय इन्दु कुछ अधिक पुष्ट स्वर में बोली—"पूषण— मेरे पूषण·····" और अपने हाथों को उठाकर बढ़ाया। मैंने

अपना गर्दन नीचा कर लिया और वह बाहुपाश चिपट गया। साथ ही साथ उसकी आँखें खुलीं, फिर बन्द हो गईं परन्तु वह बाहुपाश और भी दृढ़ होकर मेरे मुखको छाती पर जकड़ दिया। उसका हृदय तीव्र गति से धड़क रहा था।

मैंने फुसफुसाया, "मेरी प्रिय इन्दु, मैं यहीं हूँ।"

वह आंख बन्द किये ही बोली, "क्या सच कहते हो? क्या यह भी उन्ही स्वप्नों में नहीं है जो मुझे सन्तप्त कर रहे हैं? प्रिय पति! अब तो तुम्हें छोड़ती नहीं।"

मैने शिर पर हाथ फेरते कहा, "प्रिय! आखें खोलो—देखो मैं सत्य ही तुम्हारे पास हूँ। अब जब तक जीऊंगा अलग न हूंगा।"

तब उसके वे कमल नयन, कुछ अविश्वास, कुछ आश्चर्य्य कुछ हर्ष लिये खुले—आँखें चार हुईं—और उसके बिम्बाधर मेरे ललाट पर आ जुटे।

× × × × × ×

उसके बाद के समय मेरे लिये पवित्र है, अमूल्य है—इसलिये उस पर परदा ही डाल देना उचित है। समय का हमदोनों को ज्ञान ही न रहा, बीती सुनाने की फुरसत न थी। एक आत्मा दूसरी आत्मा से मिल कर एक हो गई—तीसरे, संसार की गुञ्जाइश न थी। जब सूर्य्य की किरणें ऊंचे शिखरों के नीचे जाने लगीं और अन्धकार अपने आगमन की सूचना देने लगा, तो किसी ने द्वार खटखटाया। तब हमारा वह सुख-स्वप्न भङ्ग हुआ, और इन्दु ने एक सन्तुष्टि की आह लेकर अपने को मुझसे अलग कर लिया और कहा, "पूषण! मैं भूख को भूल गई थी—अब उसकी तकाजा है।"

मैं अपने को भला बुरा कहता उठा और द्वार पर जाकर देखा कि वेस्ट साहब मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं।

मैंने कहा, "भगवान की असीम कृपा है। इन्दु स्वस्थ है। खाना मांगती है। कृपाकर मंगवाइये—तब तक मैं उसे आपके लिये तैयार करता हूँ।"

वे चले गये और मैं इन्दु के पास आकर उसे गोद में लिटा कर कहा, "इन्दु! मैं एक बात भूल गया था। मिस्टर वेस्ट भी यहीं हैं। तुम से मिलने आ रहे हैं।"

इन्दु चकित होकर बोली, "डैडी? मेरे राजा! जल्दी बुलाओ —नहीं-नहीं, तुम मेरी आंखों से ओझल न हो। बेरा को आवाज दो। वे अभी तक क्यों न आये?"

"यों तो वे बराबर तुम्हारी सेवा में ही थे; हमारे मिलन में बाधक न होने के लिये चले गये। और, ऐ मेरी रानी! जानती हो, एक विचित्र सन्यासी आये हैं, जिन्ही की कृपा से हमारा यह समागम हो सका है।"

इसी समय द्वार पर फिर खटखटाहट हुई, और मैं, इन्दु को चूम कर धीरे से लिटा दिया और अलग होकर कहा, "आइये।"

वेस्ट साहब दबे पांव अन्दर आये। इन्दु उन्हे देखते ही हाथों को पसार कर बोल उठी, "डैडी! ओ डाडी!" और उसक आंखों में आंसू भर गये। वेस्ट साहब तेजी से आ, उसके पलङ्ग के पास घुटने टेक कर बैठ गये, और इन्दु उनके बाहु-पाश में सिमट गई। वे उसके ललाट को चुम्बन करते और कहते थे "मेरी बच्ची! मेरी पुत्री!" इस मिलन के चित्र से मेरी आंखें भी भर आईं। जब वे दोनों कुछ शान्त हुये, तो वेस्ट साहब एक कुर्सी पर बैठे और मुझे भी बैठाया। तब इन्दु का खाना आया और यह भी मालुम हुआ की खाना के बाद खाने के लिये, स्वामी जी ने एक

औषधि भी भेजी है। वेस्ट साहब कैसी प्रीति, तत्परता, और चाव से इन्दु को खिलाने लगे देखते ही बन पड़ा। मेरी आंखें तो उस प्रिय मुखड़े पर ही अड़ी रहीं; और उसकी मुर्दनी पर रक्त का दौड़ना बढ़ते, और नयनों में लालित्य को फिर से आते देखकर, मेरा हृदय गद्-गद् हो उठा। जब २ हमारी चार आंखें होतीं तो उसकी सदा की वह मन्द मुसकान, और वही लज्जावश दौड़ा हुआ रक्त प्रवाह, उसके चिबुक, दोनों कपोलों और पलको तक को रंजित कर देते। खाना समाप्त होने पर इन्दु सन्तुष्ट होकर लेट गई और पूछी—

"डैडी! वह सन्यासी कहां हैं जिन्होंने यह दिन दिखाया है?"

मि० वे०, "हमलोग उन्हे तो भूल ही गये। मैं जाता हूँ और अभी लिवाये आता हूँ।"

इतना कह कर वे बाहर चले गये। कुछ ही क्षणों के बाद वे और गोपाल साथ २ आये और उन्होंने ने कहा,

"प्रिय बच्ची! खेद है, कि एक पत्र नौकरों को दे कर, सन्यासी चले गये।"

इतना कहकर उन्होंने एक पत्र मेरे हाथ में रख दिया। मैंने देखा उसके ऊपर "चन्द्रिका और गोपाल" लिखा है। गोपाल ने इन्दु से कहा,

"बहन! तुम्हे फिर स्वस्थ देख कर भगवान को धन्यवाद और तुम्हे बधाई देता हूँ।"

इन्दु बोली, "भइया! तुम्ही लोगों के आशीर्वाद से यह दिन आया है"; और उसने अपना हाथ बढ़ा दिया।

गोपाल ने उस हाथ को अपने दोनों हाथों में श्रद्धा से ले लिया, और मैंने देखा की इन्दु की आंखें फिर अश्रु पूर्ण हो गईं।

मैंने बात बदलने के लिये, कहा,

"गोपाल ! यह सन्यासी जी का पत्र हम दोनों के नाम का है। इसे पढ़ो।"

गोपाल ने पत्र ले लिया।

इन्दु ने कहा, "भइया ! क्या मैं भी सुन सकती हूँ ?"

गोपाल ने कहा, "क्यों नहीं !" और वह पत्र खोल कर सुनाने लगे।

तेईसवां अध्याय

सन्यासी का पत्र

चन्द्रिका और गोपाल,

मैं समझता हूँ की तुम दोनों के हृदय में यह कौतूहल होता होगा कि यह सन्यासी कौन हैं और क्यों हमारे जीवन में इतनी दिलचस्पी रखते हैं। इस प्रश्न का उठना भी स्वाभाविक है कि कैसे तुम्हारे विपत्तियों की मुझे पूर्व्व सूचना मिल जाती है। गोपाल अपने कौतूहल को छिपा नहीं सके थे और मैंने उन्हे वचन दे दिया था कि समय आने पर सब विदित होगा। अब वह समय आ गया। इस शरीर का अन्तिम कर्म्म समाप्त हो गया और समय आ गया की यह निज तत्त्व में विलीन हो जाय। इससे जो तुम्हारी दृष्टि से छिपा है, उसे स्पष्ट कर देना चाहता हूँ।

हमारे तुम्हारे कितने जन्म व्यतीत हो गये, इसकी गणना करना तो आज असम्भव सा प्रतीत होता है, क्यों कि न तो मुझे समय है, और न इस अनन्त कहानी की ऐसी उपयोगिता ही देखता हूँ, जिससे तुम दोनों का या संसार का ही कल्याण हो। यह प्रतीति में अधिष्ठित संसार तो अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर दिन २ युग २ उठा चला जाता है, पीछे झांकने की न तो आवश्यकता है, न ऐसा करने से कोई लाभ ही। व्यक्तियों का उत्थान और पतन पतन और उत्थान भले ही होता रहे, किन्तु सर्व भूतमय प्रकृति तो अपने स्वामी के पास ही चलती जा रही है। हमारे तुम्हारे जीवन की सफलता इसी में है, कि उसके रूप और उद्देश्य के सत्य स्वरूप को समझ कर, तन्मय हो जांय और उस लक्ष्य की प्राप्ति करने में

सहायक बने। जिस आवरण से प्रकृति ने अतीत को संसार-मुग्ध प्राणियों के हित के लिये, ढक रखा है, उसे लड़कों-के-से कौतुक के लिये हटाना कदापि प्रशंसनीय नहीं हो सकता। अतः मैं इतना ही कहना चाहता हूँ की मेरा, चन्द्रिका, लीओ और इन्दु के साथ अनन्त जन्मों से सम्बन्ध चला आता है, किन्तु आज मुझे आशा है कि यह सांसारिक सम्बन्ध शीघ्र ही सदा के लिये छूटने वाला है।

मैं बहुत दिनों की बात लिख रहा हूँ। उस समय से अनेक शताब्दियां बीत गई, जब चुल्लनी ब्रह्मदत्त कांपिल्य के सिंहासन को अलंकृत करते थे। उस सम्राट का यश समस्त आर्य्यावर्त में फैल चुका था। उसके अतुल्य पराक्रम के सामने न तो कोई आर्य्य, न दस्यु, न असुर, न राक्षस अपना मस्तक उन्नत रख सकता था। आर्य्यावर्त के एक छोर से दुसरी छोर तक उसके रथ की गति अप्रतिहत थी। उसके अप्रतिम तेज को देख कर ही तो कुशबंशी कुशनाभ ने अपनी वायु-ग्रस्त सौ पुत्रियों का बिवाह उसी के साथ कर दिया था! काशी के राजा तो पहले ही हार चुके थे, और जिस समय की बात मैं लिख रहा हूँ, उस समय वे ब्रह्मदत्त के सामन्त हो चुके थे। चुल्लानी ब्रह्मदत्त तो कुरुबंशी थे, किन्तु काशी में ब्रह्मदत्त बंश के राजा राज कर रहे थे।

उनदिनों के भारत की दशा को तुम्हारे सामने प्रत्यक्ष कर देना अत्यन्त कठिन काम है; क्यों कि तुम्हारे मस्तिष्क में तो आज की अनुभूतियां भरी हैं—आजकी निर्धनता, गन्दकी, फूट, स्वार्थ, निर्बलता, उच्छृङ्खलता और अधर्म। यदि तुम मेरी और अपनी पूर्व्व कथा समझना चाहते हो तो इस समय के भारत को भूल जाओ। इस समय के जल, वायु, सड़क, गली, गृह, खेत, स्त्री, पुरुष, बच्चे, सभी के चित्र अपने मन से हटादो, और तब आगे की बातों पर ध्यान दो। उस समय की काशी बारह योजनों में बसी

थी। मुझे भिन्न २ जन्मों में काशी के भिन्न भिन्न नाम सुनने में आये थे—रम्भ, सुदर्शन, सोनन्द, पुष्पावति आदि। कहा जाता था कि काशी इन्द्रप्रस्थ से भी बड़ी थी क्यों कि इन्द्रप्रस्थ तो सातही योजन का माना जाता था। यहा का राजवंश अत्यन्त प्राचीन था, और उनके शताब्दियों से एकत्रित किये धन का कोई ठिकाना नहीं था। यद्यपि उस समय चुल्लानी ब्रह्मदत्त से हारकर काशिराज सामन्त हो गये थे किन्तु इससे न उनके धन का नाश हुआ था, न उनके राष्ट्र ही का। आर्य्यनीति मानव रक्त पीने वाली नहीं थी। प्रजा के जीवन और सुख शान्ति में कोई अन्तर नहीं हुआ था। वे चौड़े राजपथ आज भी हँसते, उद्यम और उमङ्ग से भरे जन समूह से खचा खच दृष्ट होते थे। बाजार बेचने वाले और खरीदने वालों, विद्यालय शिक्षकों और छात्रों, घाटें स्नान करने वाले और पुजारियों, मदिरा गृह पियक्कड़ों और जुआरियों, अतिथिशालायें विदेशी यात्रियों और कर्म्मचारियों, और दानशालायें ब्राह्मणों और भिखमंगों से वैसाही भरा, वैसाही स्फीत, वैसाही प्राणमय और सुन्दर दीखते थे जैसा उस पराजय के पहले। नगर के चार मुख्य द्वारों के बाहर बसीं निकृष्ट-व्यवसायियों की वस्तियां आज भी उसी शान्त रूप से अपने काम धन्धों को चला रही थी। यदि तुम उस काशी के अगणित सप्त-तलवाले प्रासादों में से किसी के भी ऊपर खड़े हो जाते और घडो भर उस मानव प्रवाह का निरीक्षण करते, तो उस समय के ज्ञात जगत के सभी निवासियों का उसमें सम्मिश्रण पाते—दूर मिश्र और इथियोपिया, अरब, बैबिलन और असुर, पारस, गान्धार, केकय, कश्मीर और सिन्ध के निवासी, इस विशाल नगर के जन प्रवाह में मिलकर एक विचित्र इन्द्र धनुष का निर्माण करते थे। उस भीड़ में यदि तुम बूढ़ों को देखते तो जवानों को भी देखते; यदि उस नगर के सुहास की तरह स्त्रियों को देखते तो उनकी

सुहास की तरह बच्चों को भी देखते; घोड़ा, हाथी, ऊंट, खच्चर, बैल, गाय, जो तुम आज भी देखते हो, तब भी देखते, किन्तु कैसा अन्तर पाते ! आज जो मुर्दनी मुख २ पर पाते हो, जो आलस्य, भय, अन्यमनस्कता, अङ्ग प्रत्यङ्ग के सञ्चालन में, जो हृदय की शून्यता, चञ्चलता, कलुषता, नयनों के प्रति स्पन्दन में पाते हो, उनका अत्यल्प अभाव पाते। इसके विपरीत तुम अङ्ग २ से जीवन में आनन्द फूटते, नयनों से लोक-विजयी ज्योति को फैलते, और उन्नत मस्तकों पर सच्ची निर्भीकता की छाप अभिव्यक्त होते पाते।

उनदिनों काशीराज्य के धर्म्मपाल नामक गांव में एक साधारण गृहस्थ रहते थे। उनका नाम था चण्ड। उनकी तीन चार हलों की खेती होती थी। उनके परिवार में एक धर्म्म-पत्नि देवदत्ता, एक पुत्री, सुजता, और एक विक्रीत जोड़ी दास-दासी, थे। उस समय के भारत के दास दासी पश्चिमीय दास दासियों की तरह नहीं रखे जाते थे; वे तो अपने स्वामियों से बहुमानित आत्मीयों की तरह रहते थे। घर में यथेष्ट धन के होते भी, चण्ड प्रसिद्ध श्रेष्ठियों की तरह धनपति नहीं थे। उस गांव में सभी वर्णों के लोग बसे थे, किन्तु बहुतायता वैश्यो की ही थी। चण्ड का स्वभाव अत्यन्त कोमल, उदार और उद्योगी था। उनकी पत्नी सुन्दरी सुशीला और बुद्धिमती थी। जिस समय की बात लिख रहा हूं, उस समय चण्ड और देवदत्ता बुढ़ापे की ओर ढल चले थे; किन्तु देवदत्ता का सौन्दर्य्य सुजता में पूर्णतया प्रतिबिम्बित हो उठा था। उसका वयस १६ बर्ष का था और वह यौवन के प्रथम सीढियो पर चल रही थी। उसकी मरालगति, उसके पतले होठ, उसके स्निग्ध गम्भीर, बड़े २ नयन, उच्च ललाट पर तने सुन्दर भ्रू-युगल को देखकर किस पवित्र हृदय में सुख और सन्तोष का सञ्चार नही होता था ? किन्तु शारीरिक सोन्दर्य्य से भी अधिक उसके निष्कपट,

तरल, कोमल स्वभाव और व्यवहार, सभी हृदयों को मोहित कर लेते थे। माता, पिता, दास, दासी की तो बात ही क्या थी— वे तो, उसके सौजन्य की शीतलता में समय ही बिताते थे; जो कोई, अपना वा पराया, अतिथि वा परिव्राजक भी, एक बार उसके मृदु मुसकान का अनुभव कर पाता, उसे कभी नहीं भूलता। पिता की अकेली सन्तति, किस प्रेम और ममता से पाली गई थी, कहने की आवश्यकता नहीं। उसे देख कर माता पिता सुत के अभाव को भूल जाते थे। जब अपनी छोटी कलसी में, पास में बहती वरुणा नदी का जल भर कर, वह अपनी छोटी फुलवारी के पौधों को सींचती और उनके पुष्पित यौवन को निरख, कोई मधुर गीत गुन-गुना देती, तो वे आनन्द से पुलकित हो उठते। चण्ड स्वयं सज्जन और विद्वान थे, इससे उन्होंने सुजता के पढ़ाने और पढ़वाने में कोई कसर नहीं किया था।

देवदत्ता की एक बहन थी सर्व्वदत्ता, जिसका विवाह काशी के एक श्रेष्ठी, वसिष्ठक से हुआ था। वसिष्ठक एक विख्यात व्यापारी था और मुख्य राजमार्ग पर स्थित उसका प्रासाद उसके धन वैभव का सूचक था। उसीके पड़ोस में उसके मित्र उदयभद्र श्रेष्ठीका उससे भी उन्नत, सुन्दर और विशाल प्रासाद था। दोनो ही मित्रों का व्यापार भारतवर्ष के सभी प्रदेशों में चलता था और दोनों ही का सामुद्रिक-व्यापार केन्द्रों जैसे सुरपारक, भारुकच्छ, ताम्रलिप्ति आदि नगरों से घना सम्बन्ध था। इतना होने पर भी, उदयभद्र वसिष्ठक से धन, मान और बुद्धि में श्रेष्ठ समझे जाते थे। वे काशी नरेश के विश्वास-भाजन थे और कोषाध्यक्ष के पद पर नियुक्त हो, उनके मन्त्रि-परिषद के सदस्य थे। उदयभद्र को सम्बर नामक पुत्र था और वसिष्ठक के पुत्र का नाम यज्ञदत्त था। यज्ञदत्त सम्बर से कुछ बड़ा था। दोनों घरों में मैत्री होने के

कारण दोनों लड़के बच्चेपन से ही साथी बन गये थे और दोनों सहपाठी भी थे। उनदिनों तक्षशिला के शिक्षित अनेक आचार्य्य काशी के निकट स्थानों में आश्रमों को बना कर रहते थे, और आस पास के प्रदेशों के छात्रों को शिक्षा देते थे। उस समय की प्रथा के अनुसार अधिकांश छात्र अपने गुरु के घर पर रहकर ही शिक्षा पाते थे। तुम्हें आज की एकाङ्गी शिक्षा के विकृत रूप से उस समय की शिक्षा की तुलना नहीं करनी चाहिये। वह तो ऐसे पुरुष की सृष्टि करना चाहती थी जिसमें "धर्म्मार्थ-काम-मोक्ष" के उच्च से उच्च आदर्शों की अभिव्यक्ति हो। यद्यपि काशी के आचार्य्य तक्षशिला के ही उत्तीर्ण थे, और उनकी शिक्षा में कोर कसर नहीं रहता, तथापि जिन्हें तक्षशिला जाने और वहां की गुरुदक्षिणा और खर्च सहने की क्षमता होती, वे काशी से उत्तीर्ण हो कर एक बार तक्षशिला अवश्य जाते और अपनी योग्यता पर मानों वहां का मुहर लगवा आते। यज्ञदत्त और सम्बर भी १६ वर्ष की अवस्था होने पर तक्षशिला गये।

जैसे वसिष्ठक और उदयभद्र में गुणों की समता नहीं थी, उसी तरह यज्ञदत्त और सम्बर में भी गुणों की समता नहीं थी। जब सम्बर, लांबे गठन चौड़ी छाती, लांबे भुजा, उन्नत, ललाट घुंघराले केश और बड़े २ नयनोंवाला था, तो यज्ञदत्त अपने पिता की तरह, छोटे कद, पतले गठन और छोटी आंखें वाला था। दोनों के स्वभाव भी भिन्न २ थे। यज्ञदत्त बचेपन से ही स्वार्थी झगड़ालू, ईर्ष्यावान और आलसी था, सम्बर, उदार हृदय, हस-मुख, और शिष्ट आचरण वाला था। बुद्धि दोनों की ही तीक्ष्ण थी, किन्तु यज्ञदत्त की अधोगामिनी और सम्बर की ऊर्द्धगामिनी थी।

बचेपन में ही सम्बर से सुजता का परिचय हो गया था।

जब कभी देवदत्ता सर्व्वदत्ता से मिलने आती, तो सुजता साथ में आती ही थी और तब यज्ञदत्त और सम्बर के साथ खेलने का उसे अवसर मिलता था। यज्ञदत्त तो अपनी मां के साथ अपनी मां-सी के घर पर भी जाया करता था, किन्तु सम्बर को यह मौका नहीं मिलता। जब कभी सुजता काशी आजाती, तो सम्बर और यज्ञदत्त दोनो ही उसे अपनाने का अपने २ स्वभावानुकूल प्रयत्न करते। इस प्रयत्न में दोनोंमें कभी २ झगड़ा, खींचातानी, और वैमनस्य भी हो जाता। यज्ञदत्त अपने भ्रातृत्व का अधिकार स्थापित करना चाहता, सुजता को सम्बर के साथ खेलने से रोकता, और वह कितनी बार इन दोनों के झगड़ों से रो दो देती। ऐसे समयों पर इसका सम्बर पर यह प्रभाव पड़ता, कि यज्ञदत्त से बलवान होने पर भी, वह झगड़े से हटकर सुजता को चुप कराने में व्यस्त हो जाता और सुजता आंखें पोंछ कर हँस पड़ती और कहती, "भइया! तुमतो बड़े अच्छे हो!" यज्ञदत्त इन बातों पर कुढ़ता और हृदय को द्वेष से भर कर, बदला लेने की शोचता।

जैसे २ समय व्यतीत होता गया, वह ईर्ष्या, जो यज्ञदत्त के हृदय में सम्बर के प्रति शैशव में अङ्कुरित हुई, बढ़ती ही गई, क्योंकि चाहे आचार्य्य के घर हो, अथवा तक्षशिला के विश्वविद्यालय में हो, सभी जगह सम्बर बहख्याति और आदर पाता रहा जो यज्ञदत्त को कभी न मिले। इसलिये तक्षशिला से बिदा होते जब सम्बर ने देशाटन करने का विचार प्रकट किया, तो यज्ञदत्त उससे अलग हो गया और काशी का सीधा मार्ग पकड़ा। सम्बर इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर काम्पिल्य, श्रावस्ति आदि नगरों से होता, अपने ज्ञान को पुष्ट करता काशी फिरा। यज्ञदत्त के हृदय में एक और बात थी जिससे प्रेरित हो, वह इधर उधर भटकना नहीं चाहता था। उसका दृढ़ निश्चय था कि वह सुजता से विवाह करेगा; किन्तु

उसे भय था कि यदि सम्बर भी ऐसाही चाहे, तो सफलता उसीको होगी और वह देखता ही रह जायगा। ऐसे विवाह उस समय प्रचलित थे—जैसे, राम-सीता, अर्ज्जुन-सुभद्रा विवाह—इससे इस पर आश्चर्य्य न करना।

जब यज्ञदत्त धर्म्मपाल गांव में पहुंचा तो वहां कुछ दिनों के लिये ठहर गया और चण्ड, अपनी मां-सी, और सुजता को प्रसन्न करने का पूरा प्रयत्न करने लगा। फूलवारी के सींचने में वह सुजता की, दत्तचित्त होकर, सहायता करता और मीठी और हृदय-ग्राहक बातों से उसका ध्यान अपनी ओर खीचने का प्रयत्न करता। सुजता ने इस परिबर्तन को आश्चर्य्य और सन्तोष से देखती; किन्तु नियन्त्रण से स्वभाव तो बदलता नहीं। सुजता की मृदुलता से वह समझने लगा कि काम हो गया और जब उसके बिदा होने का दिन आ गया, तो एक दिन उसने सुजता से कहा—

सुजते ! कल्ह तो मैं घर जा रहा हूँ। तुम मेरे घर कब चलोगी ?"

सुजता बोली, "तुम्हारे घर ? पिता माता का काम कैसे चलेगा ?"

उसने कहा, "क्या मैं ही आकर रहूं ?"

सुजता : "क्यों ? क्या तुम्हे घर पर कुछ काम नहीं है ?"

यज्ञदत्त : "तुम्हारे साथ रहने में बड़ा सुख मिलता है !"

भोले हृदय की सुजता इसका छिपा अर्थ न समझ सकी। कुछ दिल्लगी के ढंग से बोली

"भाभी को लाओ तो तुम्हारे सुख का अन्त न होगा।" और उसकी मधुर हँसी गूंज गई।

इस हँसी ने मानो उसके भ्रम को पुष्ट कर, उसके नव-निश्च-

न्त्रण को तोड़ दिया और वह अत्यन्त ऊत्तेजित होकर, सुजता की ओर हाथ फैलाता, बोला,

"सुन्दरी सुजता ! तुम नहीं जानती कि मैं तुम्हे कितना प्यार करता हूँ। मेरे लिये अब और कौन है ?"

यह सुन कर, और यज्ञदत्त के भाव भङ्गी को देख कर, सुजता लज्जित और भयभीत हुई और वहां से चली जाने को फिरी किन्तु अब तो यज्ञदत्त का स्वेच्छाचारी मन इतने दिनों के नियन्त्रणों से मुक्त हो, फिर नियन्त्रित होने वाला नहीं था। उसने सुजता के कपड़े का छोर पकड़ लिया और कहा,

"भागो नहीं सुजता ! भाग कर कहां जाओगी ? यदि तुम इन्द्रपुरी भी चली जाओ, तो मैं पहुंचूंगा। और तुम मेरी होकर ही, रहोगी।"

सुजता इन बातों को सुन कर, ठिठक गई और उसे बड़ा क्रोध हुआ। उसने कहा, मूर्ख हो तुम ! छोड़ो मुझे, नहीं, पिता को पुकारतीं हूँ ! ऐसे अशिष्ट आचरण पर तुम्हे लज्जा नहीं आती ?"

यज्ञदत्त इस फटकार के लिये तैयार नहीं था। आश्चर्य्य और क्रोध से कपड़ा तो छूट गया, किन्तु वह बोला, "मैंने जरा कपड़ा छू लिया, तो गालियां देती हो; जब सम्बर गोद में उठाता था, तो बड़ा अच्छा लगता था ? किन्तु याद रखो—"

सुजता सुनने के लिये ठहरी न रहीं; वह तेजी से घर में चली गई और यज्ञदत्त कुछ देर, जलता भुनता फुलवारी में ही बैठा रहा। एकबार उसका विचार हुआ कि मा-सी से कह कर वादा करालूं, किन्तु आजकी परिस्थिति देख कर, अभी चुप रहना ही ठीक समझा। यदि उसकी मां देवदत्ता से प्रार्थना करे तो यह विवाह अवश्य हो जाय—ऐसी भी उसे आशा हुई, किन्तु उसे अपनी

नीचता पर कुछ भी पश्चात्ताप नहीं हुआ। जब वह काशी पहुंचा तो उसके पिता नहीं थें। वह ५०० गाड़ियो पर रकम लेकर सुरपारक चले गये थे, किन्तु अब उनके फिरने का समय हो गया था। इससे जब यज्ञदत्त ने सर्व्वदत्ता से अपनी इच्छा प्रकट की, तो उसने कहा, "यह तो मैं भी चाहती हूं किन्तु तुम्हारे पिता जब तक नहीं आते मैं कैसे जाऊं? हां, दीदी के पास पत्र भेज देती हूं कि सुजता को मैं चाहती हूं, उसका सम्बन्ध दूसरे जगह न हो। तुम्हारे पिता के आने पर मैं स्वयं जाऊंगी।" किन्तु दिन पर दिन व्यतीत होते गये और वसिष्ठक न फिरे, न उनका पत्र ही आया। यद्यपि उनदिनों डाक का कोई राष्ट्रीय प्रबन्ध न था, पत्र, व्यापारियों के हाथ आया जाया करते थे। वसिष्ठक के आने में देर होने से, सर्व्वदत्ता तो अत्यन्त भयभीत थी, क्योंकि सुरपारक की राह विख्यात महा-कान्तार होकर जाती थी जिसमें हजारों व्यापारी प्रति वर्ष मर मिटते थे, इससे विवाह की बात वह क्या सोचे? यज्ञदत्त छटपट करता रहा—किन्तु कर्म्म-विपाक को कौन रोक सकता है!

इसी बीच, सम्बर भी घूमता फिरता, धर्म्मपाल गांव में पहुंचा। उसे सुजता की सुधि आई और शैशव के चित्र जाग उठे। उसने सोचा, चलो सुजता को देखता चलूं। उस समय सन्ध्या होने में देर थी और सम्बर ने सोचा कि क्षनेक के विलम्ब से कोई हानि नहीं। जब वह चण्ड के घर से कुछ ही दूर था, तो उसने सुजता को दो कलसियों में नदी से जल लेकर फुलवारी की ओर जाते देखा। पहले तो वह भौंचक में पड़ गया क्यों कि उसके मन के सामने तो बचपन के ही चित्र थे; किन्तु उसे पहिचानने में देर न लगी और तब सुजता के सुगठित शरीर की अङ्ग भङ्गी से, उसकी मरालगति से, उसके चढ़ते यौवन की दीप्ति से मण्डित निर्दोष चन्द्रमुख से मानो विद्युत निकली और सम्बर के हृदय को बेध गई।

उसका शरीर रोमांञ्चित हो उठा और वह क्षण भर कांपता ठिठका खड़ा रहा। फिर अपने को सम्हाल कर वह धीरे २ फुलवारी में घुसा किन्तु सुजता को पौधों को सींचते देख, उसकी जिह्वा मानो तालू से सटने लगी। जब कलसियां खाली हो गईं और सुजता कपड़े को सम्हालती फिर पानी लाने को फिरी और दोनों की आंखें चार हुईं, तो मानो हृदय मुंह पर आ गया और वह बोल उठा—

"शुभे ! बसन्त-सुषमे ! क्या सम्बर को भूल गई ?"

परिचित स्वर से सुजता, चकित और आनन्दित हुई। सम्बर को पहचानने में देर न लगी।

उसने कहा, "नहीं सम्बर ! क्या शैशव के साथियों को भी भूला जाता है ? तुम क्षण भर ठहर जाओ, इन बाकी पौधों को सींच कर घर लिवा चलती हूं।"

सम्बर ने कहा, "सुजते ! मैं शैशव के साथी होने के नाते, तुम्हारे परिश्रम में भाग लेना चाहता हूं। तुम्हारे सींचने की बारी हो गई, अब मेरी है !" इतना कह कर उसने कलसियों को उठा लिया और सुजता के मना करने पर भी, पानी ला २ कर पोधों को सींच डाला।

सुजता ने कहा, अब चलो घर। न जाने कहां से थके आये हो—तुम्हारा आतिथ्य क्या करूंगी, तुमसे मिहनत करवा ली।" सम्बर, अपने सदा की हृदय ग्राहकता के साथ, हाथ जोड़ कर बोला—

"भद्रे ! व्यतीत दिनों का शपथ ! इसका विचार न करो ! क्या भूल गईं कि हम बराबर ही ऐसा ही करते आये हैं ? चलो, तुम्हारे माता पिता के दर्शन तो कर लूं—किन्तु मुझे रुकने को न कहना ! तुम्हारे दर्शन ही से आंखें तृप्त हो गईं। मैं अनेक वर्षों

पर तक्षशिला से फिरा हूं और पिता माता के दर्शन के लिये उत्सुक हूँ !"

सुजता का हृदय, जो सम्बर को देख कर, न जाने कैसा करने लगा था, इन बातों को सुनकर, धक् करके रह गया। उ में एक शून्यता घर करने लगी, एक क्रदन उठने लगा किन्तु वह बिना कुछ कहे, घर की ओर चल पड़ी। जी चाहता था कि कहें "अभी न जाओ", किन्तु अब तो कहते लज्जा लगती थी। घर पर चण्ड और देवदत्ता ने सम्बर का पूरा सत्कार किया और जब वह वहीं रात बिताना नहीं चाहा तो सा-शीर्वाद विदा कर दिया। चलने को तो सम्बर चल दिया किन्तु उसने अपने हृदय की शान्ति खो दी। घर पहुंचने पर उसे स्पष्ट हो गया कि बिना सुजता को अपनाये उसका जीवन निरर्थक थां। एक दो दिन में जब यह स्पष्ट हो गया तो उसने अपनी माता को सब बातें समझा दी। उसने उदयभद्र से कहा। उदयभद्र की तो इच्छा थी कि किसी धनी श्रेष्ठी के घर सम्बन्ध करूं, किन्तु वह बुद्धिमान था; इससे उसने स्वयं जाकर सब ठीक ठाक कर देने का वचन दे दिया। ज्योतिषी बुलाये गये; शुभ दिन ठीक हुआ, और उस दिन वह चण्ड से सम्बन्ध का वचन ले आया। उस समय देवदत्ता ने सर्व्वदत्ता के प्रस्ताव का स्मरण दिलाया, किन्तु जब पति-पत्नि ने यज्ञदत्त और सम्बर के गुण-दोषों का मिलान किया, तो देवदत्ता को हार माननी पड़ी। साथ ही साथ उसके हृदय में ऐसी भी भावना उठने लगी कि सुजता यज्ञदत्त को पसन्द नहीं करती।

जब यज्ञदत्त को यह समाचार मिला तो वह जल भुन कर रह गया। उसने अपनी परीशान मां को कोसा, अपने अनुपस्थित पिता की निन्दा की और अपने आचरण से समस्त परिवार को दुखी बना

दिया। किन्तु, अब होता क्या ? यज्ञदत्त का कलुषित हृदय, सज्जन का सा व्यवहार तो कर नहीं सकता था। उसने उसे षड्यन्त्रों की ओर प्रेरित किया। एकबार उसने सुजता को पकड़ ले जाने की आयोजना की किन्तु धर्म्मपाल के गोपादि ग्राम-कर्मचारियों की सतर्कता से, उसके गुण्डों की एक न चली, और वह अपना सा मुह लेकर फिरा। भाग्यवश भंडाफोड़ न हो सका। इस रीति से निश्चित दिन को विवाह सम्पन्न ही हो गया।

जब सुजता ससुराल आई तो कितने सुख-स्वप्नों को साथ लेती आई. उसके हृदय को भी स्पष्ट नहीं मालुम था। किन्तु वे प्रारम्भिक दिन, प्रेम और सुख मे लद कर भी. स्वप्न की तेजी मे व्यतीत होने लगे। उसे सास-ससुर के उदार हृदयों में जगह करने में कुछ देर न लगी; सम्बर तो मानो भ्रमर बन कर उसी पर मंडराया ही करता था; किन्तु यज्ञदत्त का जीवन, इस उल्लास-लहरी को देख २ कर, स्वयं भस्म होने लगा। उसके मन में नित्य नये षड्यन्त्रों के अङ्कुर उठते और उसके जीवन का यही लक्ष्य हो गया कि कैसे पति-पत्नि में भेद डाला जाय। पहले तो वह सुजता के भाई होने के बल पर सम्बर के घर आना जाना बढ़ाने लगा। इसके अनन्तर वह इधर उधर इस किम्बदन्ती को फैलाने लगा कि सुजता का विवाह तो पहले से ही उसी के साथ निश्चित था और वह उसे लड़कपन मे ही चाहती थी किन्तु सम्बर ने वशिष्ठक के लौटने में देर होने के कारण चण्ड को धन देकर, विवाह का वचन ले लिया। जब यह बात सम्बर के कानों में पड़ गई, तब वह अत्यन्त धूर्तता से, इङ्गितों, संकेतों, और किंवदन्तियों से अपने में सुजता की प्रीति की गढन्त कथाओं को फैलाने लगा। जब से सुन्दरी सुजता उसके घर आई, सम्बर का उस पर प्रेम दृढ होता ही गया

किन्तु उसके अप्रतिम सौन्दर्य्य के कारण, उसका हृदय सशङ्क रहता था। इसमें आश्चर्य्य की बात नहीं क्यों कि इस समय तक न तो आज का रामायण ही बना था, न महाभारत, जिसमें पतिव्रता को एक नारी-धर्म्म सिखाया गया है। उस समय स्त्रियां घर में बन्द भी नहीं रखीं जाती थीं, और स्त्रियों की स्वेच्छा चारिता की अनेक कथायें देश भर में प्रचलित थी। इसलिये इन बातों को सुन कर, सम्बर के हृदय में अशान्ति का होना स्वाभाविक था। उसने एक दिन सुजता से कहा—

"प्रिय ! क्या यज्ञदत्त को घर पर कुछ काम नहीं रहता कि रात दिन यहीं बैठा रहता है ?"

सुजता कुछ चकित होकर बोली, "आर्य्य पुत्र ! कैसी बात है ? कौन कहता है कि वह रात दिन घर में ही बैठे रहते हैं ! क्या वे स्त्री हैं ?"

सुजता की आवाज कुछ तेज थी, जिसके कारण सम्बर का चित्त शान्त होने के बदले अधीर होता गया। उसने कुछ रूखेपन से कहा,

"जो कुछ हो, उसे काम धन्धा करना चाहिये। कह दो, यहां अधिक आने की आवश्यकता नहीं।"

ये बातें सुजता को खटकीं। उसने कहा, "मा-सी का पुत्र है; मैं कैसे कहूं ? आपही कह न दीजिये।" सम्बर तो कुछ बोला नहीं—किन्तु उसी समय से दोनों के हृदय में कुछ तनाव सा हो गया। जब सम्बर ने यज्ञदत्त को मना किया और दोनो में कुछ कठोर बातें हो गई, तो यह तनाव कुछ और बढ़ गया। जो यज्ञदत्त कभी भी सुजता का कृपा-पात्र न हो सका था, आज सम्बर के अनावश्यक कठोरता से उसकी दया का पात्र हो गया। यज्ञदत्त

अपनी मनोरथ सिद्धि को पास आते देख, अपने षड्यन्त्रों को द्विगुणित करने लगा। अब उसने सम्बर की अनुपस्थिति में आना प्रारम्भ किया और सुजता के मना करने पर, उसको सहानुभूति और स्नेह की बातें सुना कर, और सम्बर के आचरण पर कटु आलोचना करके शान्त कर देता। क्यों कि अब सम्बर के व्यवहार और प्रेम-प्रदर्शन में बड़ा अन्तर हो गया था, और सुजता इससे सूखी जा रही थी। किन्तु अपने निर्दोषिता का अभिमान किसी प्रकार झुक कर बातों का निपटारा करने नहीं देता। उधर यज्ञदत्त ने इसका प्रबन्ध किया कि उसके छिप कर सुजता से मिलने की बात भी सम्बर को विदित हो जाय। इसका परिणाम हुआ कि सम्बर ने सुजता को अशिष्ट बातें कहीं और सुजता के सभी विनयों को अस्वीकार कर दिया। द्वार-रक्षक को आज्ञा दे दी कि यदि यज्ञदत्त फिर आये, तो उसे पीट कर भगा देना।

इन सब बातों से सुजता का हृदय टूट गया। जिस पर अपने को तन मन से न्यछावर किया था, उसकी निष्ठुरता, ना समझी, और अविश्वास उसे सता रहे थे। अपने निरादर से उसका जीवन भार सा हो गया क्योंकि सम्बर उसकी एक नहीं सुनता तब सुजता का दुखी हृदय यह निश्चय किया कि ऐसा जीवन व्यतीत करना निरर्थक है; उसे अपने माता-पिता का एकबार दर्शन करके इसे त्याग ही देना चाहिये। इस निश्चय के अनुसार उसने अपनी सास से धर्म्मपाल जाने की आज्ञा मांगी। सास ने आज्ञा सहर्ष दे दिया क्यों कि कुछ दिनों से वह इसके स्वास्थ्य को बिगड़ते देख स्वयं चिंतित हो रही थी। सम्बर को आज्ञा मिली कि तुम बहू को धर्म्मपाल पहुंचा आवो। सम्बर को जाने की इच्छा न होते हुये भी जाना ही पड़ा।

एक दिन सन्ध्या के समय शुभ मूहूर्त में सम्बर का रथ सु-

सज्जित हुआ और सुजता अपने नयन जलसे अपने सास के चरणों को सींचकर, चली। वह बेचारी बूढ़ी चकित हुई, और सुजता को छाती से लगाकर बोली, बहू! शीघ्र अच्छी होकर चली आना, हां ?" सुजता अपने ध्येय को स्मरण कर "हां, मां" कहती रथ पर बैठी। सम्बर आगे आगे घोड़े पर चला और रथ के साथ एक रक्षक और एक नौकरानी चले। विशाल काशी नगर को पार होते होते सूर्य्यास्त हो गया। धर्म्मपाल काशी के पास ही तो था किन्तु बीच में काफी घना जंगल था। जब ये करीब करीब आधीराह पार हो गये और अन्धेरा हो गया, तो राजपथ के दोनों ओर के झुरमुटों से ८, १० शस्त्रधारी डाकुओं ने रथ पर आक्रमण कर दिया। एक ने सारथी को घायल कर नीचे गिरा दिया, दूसरे ने रक्षक को गिराया, और एक रथ पर चढ़ गया और रास को अपने हाथ में लेलिया सम्बर उस समय अपने ही दुखी विचारों में कुछ आगे बढ़ गया था। सुजता इस घटना पर जोर से चिल्लाई जिससे सम्बर का ध्यान उधर गया और वह ललकारता घोड़ा को दौड़ाया। उसने आतेही अपने तलवार का भरपूर वार रथ पर बैठ डाकूपर लगाया जिससे घायल हो वह गिर पड़ा। तब वह और डाकुओं पर वार करने लगा। वे उस शिक्षित घोड़े के सामने टिक न सके और भाग चले। इसी समय एक डाकू रथ में से सुजता को बलपूर्व्वक खींचना चाहा, किन्तु वह झटका दे कर, दूसरी ओर कूदकर भागी। सम्बर जब शत्रुओं को भगाकर इधर फिरा, तोउसने देखा कि एक डाकू सुजता का पीछा कर रहा है। उसने घोड़ा उधरही दौड़ाया। वह डाकू सम्बर को अपनी ओर आते देख, सावधान हो, अपने। तेज बरछे का निशाना कर, सम्बर के ऊपर जोरों से फेका। सुजता सम्बर को आते देख कर रुक गई थी; उसने उस अन्धेरे में भी उस बरछे को उठते देखा और तेजी से आते सम्बर के जीवन को संकट

में जान, सहसा बीच में कूद गई। वह बरछा उसकी छाती के आरपार हो गया। वह गिरी। सुजता के बलिदान के लिये न सम्बर ही, न वह डाकू ही तैयार था। क्षणभर के लिये दोनो ही किं-कर्तव्य विमूढ़ हो कर, पत्थर की मूर्ति की तरह खड़े रहे। तब सम्बर के हृदय में, आश्चर्य्य, पश्चात्ताप, और भयानक क्रोध जग उठे और वह घोड़ेसे कूद उस दुष्ट से भिड़ गया। भाग्यवश उसका हाथ उस डाकू के गर्दन पर जा पड़ा और उसके अनन्तर वह कितना भी प्रयत्न करता रहा, छटपटाता रहा, सम्बर की लौह-रूप अङ्गुलियां वहां से फिर न हटीं। वह डाकू क्षण दो क्षण में ही निर्जीव होकर सड़क पर लोट गया। सम्बर दौड़ा सुजता के पास पहुंचा। झुक कर देखा कि उसके मुख से रक्त निकल गया है और वह हाफ रही है, किन्तु आंखें खुली हुई हैं। वह वहीं बैठ गया, और उसके शिरको गोद में रखते हुये कहा,

"सुजते! यह क्या कर दिया?"

सुजता कुछ कठिनता से ठहर २ कर बोली, "आर्य्य पुत्र! ठीक ही तो किया! आर्य्य पुत्र की गोद में लेट कर बिदा होती हूँ इससे बढ़कर और क्या सौभाग्य हो सकता है? तुमने कुछ प्रेम दरसाया—"

सम्बर बोला, "मैं मूर्ख हूँ सुजता! तुम्हारे अयोग्य हूँ! रत्न को पाकर भी मैंने उसे खो दिया!"

सुजता की आंखें तनचली थीं; उसके होंठ हिले, किन्तु सुन न पड़ा। सम्बर अपना कान उसके पास ले गया। सुना—"आशीर्वाद दो कि फिर तुम्हारी दासी होऊँ, किन्तु ऐसा वियोग नहो।"

सम्बर की आंखों से आंसू बहने लगे। उसने कहा,

"देवी! मेरा यही दृढ़ व्रत हुआ।"

फिर सुजता ने कहा, "इस बर्छे को निकाल दो—कष्ट होता है।"

सम्बर जानता था कि बर्छे के निकलते ही प्राण निकल जायेंगे; किन्तु उस कातर दृष्टि की मूक प्रार्थना को वह निरादर कर न सका। जैसे ही वह बरछा निकला, सुजता के मुख से रक्त की धारा बह निकली और उसके प्राण पखेरू उड़गये। सम्बर, कितनी देर सुध-बुध खोये, सुजता के रक्त से लथ-पथ, उस निर्जीव शरीर को छाती से लगाये बैठा रहा, उसे पता न चला किन्तु एकबार "भट्टा? भट्टा? का पुकार उसके अन्तः करण तक पहुंचा तब उसे ज्ञान हुआ और उसे स्मरण आया कि मानो घोर निद्रा में उसे कोई बहुत देर से योंही पुकार रहा था। उस स्वर को उसने अब पहिचान लिया—यह तो उसके रक्षक का था। वह सुजता के शव को बड़े ही सावधानी स उठाकर ले गया और रथ में रख दिया। देखा, रक्षक रक्त से लथपथ वहीं खड़ा है। उसने कहा,

"अट्ठक! वहां एक मनुष्य पड़ा है। देखो तो कौन है?'

अट्ठक ने रथ से मशाल निकाला और पत्थर से अग्नि पैदा करके जलाया। देखा यज्ञदत्त मरा पड़ा है।

× × × ×

इस भीषण घटना का समाचार सुनकर, सुजता की माता अपार दुःख में पड़ी और कुछ ही दिनों में वह भी चल बसी। चण्ड ने अपनी सब सम्पत्ति का दान कर दिया और जंगल में जाकर मोक्ष के लिये प्रयत्नशील हुआ। सम्बर घर द्वार छोड़ कर इधर ऊधर मारा फिरा, किन्तु एक योगी का शरण पाकर, सुजता को फिर प्राप्त करने के लिये, शेष जीवन तप में बिता दिया।

× × × ×

तुम समझ गये होगे कि वही सुजता, मिस होप के रूप में

और सम्बर चन्द्रिका के रूप में, फिर संसार में अपने स्थिर निश्चयों को फलीभूत करने आये हैं। यज्ञदत्त ही लीओ था। इस जीवन में चन्द्रिका इन्दु का परस्पर प्रेम सांसारिक पूर्णता और निष्कलङ्कता को प्राप्त कर गया और आशा करता हूँ कि अब यज्ञदत्त लीओ रूपी तमोमय बाधा सदा के लिये शान्त हो गई। मैं, सुजता का पिता, उसके प्रेम-बन्धन को काटने में असमर्थ होकर, इस जीवन में भी तुम्हारे सुख-दुःख का साथी बना। किन्तु अब मेरे सभी बन्धन कट चुके और मेरे अन्तिम बिदाई का दिन आ रहा है। इससे मैं तुम्हे आशीर्वाद देता हुआ, तुमसे विदा होता हूँ। आशा है, तुम भी उस पुरुषोत्तम से, जिसकी कृपा के बिना कोई भी उनके दरबार में नहीं पहुंचता, मेरे लिये प्रार्थना करोगे कि यह मेरी यात्रा सफल हो!

मानव प्रेम तो उन्ही के असीम, अकथनीय प्रेम की झलक है। मनुष्य को इससे शिक्षा पाकर, ऊपर उठने का, इसका पूर्ण विकास करने का, प्रयत्न करना चाहिये जिसमें सब में अपने को और अपने में सबको देखे।

ॐ शान्तिः शान्तिः

× × × ×

जब तक गोपाल पत्र को सुनाते रहे, कमरे में निःस्तब्धता छाई रही; ऐसा प्रतीत होता था कि किसी को श्वांस लेने की भी फुरसत न थी। जब अन्तिम शब्दों की प्रतिध्वनि आकाश में विलीन हो गई तब सबों ने एक दीर्घ निःश्वास लिया और इन्दु की आंखें मुझ पर एक नई आत्मीयता, एक नये अपनापन से आ ठिकीं और मैं आर्द्र हृदय से बोल उठा—

"प्रियतमा! इस मूर्ख की मूर्खता से तुमने कितने कष्ट झेले!"

× × × ×

यहीं पर मेरी कथा समाप्त होती है। कहने की आवश्यकता

नहीं कि कैसी उत्सुकता से हम इन्दु को प्रति दिन स्वास्थ्य और बल प्राप्त करते देखते रहे और कैसे गोपाल, मिस्टर वेस्ट, और सभी दलवाले उसकी सेवा करने में अपना अहो भाग्य समझते थे। एक दिन आया जब हम बनारस फिर सके और हम दोनों के पाणि-ग्रहण का दिन निश्चित हो गया। कैसे मैंने पहले हिन्दु धर्म्म के अनुसार, और पीछे सिविल मैरेज ऐक्ट के अनुसार उसका पाणि-ग्रहण किया, यह बताना मेरा अभीष्ट नहीं है। मुझे तो यही दिखान था कि कैसे मुझ सा अयोग्य मूढ़ भी इन्दु के समान स्त्री-रत्न के अगाध प्रेम को अकारण ही पाकर, अपनी मूर्खता से उसे वार २ प्रायः खो बैठा, किन्तु दुःखों की चपेट में पड़ कर और उसी के अनुग्रह से कुछ बुद्धि पाई; उसकी अलौकिक आत्म-विसर्ज्जन में धुल कर, आत्म शुद्धि की; और जिस शान्ति और आनन्द प्रवाह को ऊसने बहाया, उसमें देश और काल का भी ज्ञान बहा दिया।